मेकसरिया अध्ययन माला—दशम् पुष्प

जी० पी० श्रीवास्तव की कृतियों में हास्य-विनोद

प्रधान सम्पादक

डॉ० दीनदयालु गुप्त

एम० ए०, एल् एल्० बी०, डी० लिट्०

सम्पादक

पं० हरि कृष्ण अवस्थी

लेखक

श्याम मुरारी जैसवाल

प्रकाशक

लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रकाशक—

लखनऊ विश्वविद्यालय

मूल्य—६ रु०

मुद्रक—

विश्व मोहन

प्नार मुद्रक,

११७, नजीराबाद,

लखनऊ।

—नन्हे ध्रुव की चिर स्मृति में ।

वक्तव्य

हिन्दी विभाग द्वारा किये गये साहित्यिक और सांस्कृतिक खोज सम्बन्धी कार्य को हम 'लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन' के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में 'सेठ भोलाराम सेकसरिया ग्रंथमाला' के कई पुष्पों से विद्वान् पहले से परिचित हैं। इसके अन्तर्गत उच्चकोटि के गवेषणात्मक ग्रंथों का प्रकाशन किया जा रहा है। ये ग्रंथ प्रायः हिन्दी-विभाग के अध्यापकों अथवा विद्यार्थियों के द्वारा पी एच० डी० डिग्री के लिए प्रस्तुत किये गये प्रबन्ध हैं। हमारे यहाँ एम्० ए० की परीक्षा के अन्तर्गत लिखे गए छोटे प्रबन्ध भी एक बड़ी संख्या में हैं और प्रकाशन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन छोटे प्रबन्धों को भी प्रकाशित कराने के लिए विश्वविद्यालय में एक 'सेकसरिया अध्ययन माला' का सूत्रपात किया गया है। हम श्री शुभकरण जी सेकसरिया के परम आभारी हैं, जो अपने स्वर्गीय पिता श्री भोलाराम सेकसरिया के नाम पर इन दोनों ग्रन्थमालाओं का सूत्र-संचालन कर रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'सेकसरिया अध्ययन माला' का दशम् पुष्प है। इसे श्री श्याम मुरारी जैसवाल ने सन् १९५६ ई० में एम्० ए० (फ़ाइनल) के लिए एक प्रश्नपत्र के स्थान पर शोध-प्रबंध-रूप में लिखा था। श्री जी० पी० श्रीवास्तव के हास्य-साहित्य

का मूल्यांकन करने वाली पुस्तकें हिंदी में एक-दो ही हैं; अतएव प्रस्तुत पुस्तक का महत्व और उपयोगिता निर्विवाद है।

मुझे विश्वास है कि श्री जैसवाल अपने लेखन-कार्य को आगे बढ़ाने में निरंतर यत्नशील रहेंगे। मेरी शुभकामनाएँ उनके साथ हैं।

—दीनदयालु गुप्त

१ मार्च, १९६३

डॉ० दीनदयालु गुप्त,
एम्० ए०, एल्० एल्० बी०, डी० लिट्०,
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय-भाषा विभाग,
तथा
अधिष्ठाता, कला संकाय
लखनऊ विश्वविद्यालय।

आमुख

सृष्टि के अज्ञात उत्पत्ति काल में मनुष्य सुख-दुख की अनुभूति युग्म को लेकर इस पृथ्वी पर उतरा। जीवन के ऊषाकाल में इन्हीं अनुभूतियों के परिणाम हँसने और रोने के रूप में दिखाई पड़े। आगे चलकर अनेक विषयों और प्रसंगों के सम्पर्क से यही भौतिक अनुभूतियां प्रेम, हास, उत्साह, आश्चर्य आदि मनोविकारों में परिणत हो जाती हैं। मनोविज्ञान आज इस बात का साक्षी है कि हमारी मनोभावनाओं के विकास के साथ साथ यह मनोविकार संवर्द्धित, विकसित और परिष्कृत होते रहते हैं। इन मनोविकारों में हास्य का आदिम रूप सभ्यता के अरुणोदय के पूर्व पराभूत शत्रु के पतन पर विजयोल्लास का यह पाशविक अट्ठहास धीरे धीरे वास्तविक अनिष्ट के स्थान पर प्रातिभासिक अनिष्ट तक ही सीमित रह गया। मार्ग में केले के छिलके पर फिसल कर एक अधेड़ व्यक्ति को गिरते देखकर हंसना इसी प्रातिभासिक अनिष्ट के स्वरूप पर ही होगा। इसी प्रकार बैठते हुए व्यक्ति के नीचे से कुर्सी सरका लेना या सोये हुए व्यक्ति की मूंछ कतर देना आदि कार्य भी व्यावहारिक हास के अन्तर्गत आवेंगे। असहृदयता और कठोरता के निकट होने के कारण ऐसे व्यावहारिक हास सभ्य समाज में धीरे धीरे निन्दित और अप्रचलित होते गये।

अतएव इसमें अब सन्देह का अवकाश नहीं रह जाता कि मनुष्य की भावनाओं के परिष्कार के साथ भाषा के विकास से भी हमारी हास्य भावना का उत्कर्ष हुआ। भाषा के विकास से एकान्त अभिन्न होने के कारण हास्य भावना ने साहित्य क्षेत्र में स्थान पाया और उस स्थान का अपना महान महत्व है। साहित्य की बात करते ही हमें सबसे पहले भारतीय साहित्य की ओर आकृष्ट होना पड़ता है। संस्कृत में नाट्यशास्त्र प्रणेता भरत से लेकर रसगंगाधरकार जगन्नाथ तक साहित्य शास्त्रियों की परम्परा द्वारा इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है उसे बहुत संक्षेप में यहां कह देना शायद उचित ही होगा। संस्कृत साहित्याचार्यों के मत से अपनी अथवा पराई विकृत आकृति अथवा वाणी की विशेषता से जो हास उत्पन्न होता है उसके परिपुष्ट

रूप को हास्य कहते हैं । उत्तम, मध्यम और अधम के भेद से यह तीन प्रकार का माना गया है । इन तीनों में भी प्रत्येक के दो दो उपभेद आचार्यों ने गिनाये हैं । उत्तम के स्मित और हसित, मध्यम के विहसित और उपहसित, तथा अपहसित एवं अतिहसित अधम के उपभेद हैं । बिना दांत दिखाई पड़े कपोलों के ईषत् विकास को स्मित कहते हैं । दन्तावली की थोड़ी झलक के साथ कपोलों के प्रफुल्लित हो जाने को आचार्यों ने हसित माना है । अवसरानुकूल कुछ मधुर ध्वनि के साथ मुखभंगिमा में अरुणता का आभास विहसित कहा जायगा । श्वास के अवरोध के कारण नाक फूलने तथा दृष्टि वक्रिमा एवं ग्रीवा भंगिमा के साथ शब्द भरे हास को उपहसित कहा गया है । अपहसित शिर कम्पन और अश्रु प्रवाह युक्त उद्धत हास्य की संज्ञा है तथा अतिहसित हास्य का वह रूप है जिसमें शरीर के कांपने तथा अश्रुधारा के साथ उच्च स्वर से ताली बजाकर तथा ठट्ठा मारकर हसा जाता है ।

संस्कृत साहित्याचार्यों का यह वर्गीकरण आंतरिक मनोभाव को वाह्य शारीरिक प्रभाव की कसौटी पर कसता है। हास्य के इन भेदों की आधार वे शारीरिक क्रिया-चेष्टाएं हैं जिनमें मुख की अरुणिमा नेत्र तथा ग्रीवा की भंगिमा, अश्रु और कम्प तथा पेट में बल पड़ना और ताली बजाना आदि क्रिया कलाप सम्मिलित हैं । शास्त्रीय दृष्टि से विचार करने पर यह अनुभव परिस्थिति विशेष में आलम्बन के सम्पर्क में आश्रय को प्राप्त कर सहृदय क शरीर पर व्यक्त होते हैं । यहां यह कहने की कदाचित आवश्यकता नहीं है कि सभ्यता के उत्थान और प्रसार से ये सभी विकृतिया-असंगतियां और विपर्यय असामयिक माने जाने लगे जिनका प्रभाव सहृदय को अतिहसित, अपहसित अथवा उपहसित की दशाओं तक ले जाता है । शारीरिक व्यायाम की सी जिन दशाओं में सहृदय इनके द्वारा पहुंचता है, वे सभ्य समाज में समादृत नहीं हो सकीं । अतएव स्मित हसित अथवा अधिक से अधिक विहसित का ही समादर सभ्य समाज में श्लाध्य माना गया । अस्तु;

हिन्दी के रीति कवियों ने साहित्य शास्त्र के अन्य विषयों के समान हास्य सम्बन्धी संस्कृत साहित्याचार्यों के इस विचार-विवेचन को जहां का तहाँ ही छोड़ दिया । किसी ने उसका उत्थान किया और किसी ने उसके छायानुवाद से ही सन्तोष किया । उसके विवेचन-विश्लेषण अथवा व्याख्या परिभाषा की ओर उनकी रुचि तो नहीं ही थी, सम्भवत: उसके लिए अपेक्षित पर्याप्त बुद्धि वैभव का भी उनमें अभाव था । हिन्दी कवियों की यह दुर्बलता सुविदित है परन्तु इसके साथ साथ यह भी सर्वमान्य सत्य है कि काव्यागों के उदाहरण

रूप में जो छन्द इन हिन्दी कवियों ने जुटाये हैं वे वास्तव में बड़े सरस और समर्थ हैं। आगे उद्धृत कतिपय छन्द इस कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त होंगे।

प्रत्येक राष्ट्र और साहित्य में कुछ विशिष्ट पात्र हास्य के प्रतीक अथवा आधार रूप उद्दिष्ट रहते हैं। भारतीय साहित्य में पेटू ब्राह्मण, वामन अथवा विकृत अंग के विदूषक, भोलानाथ शंकर, भगवान् श्रीकृष्ण की तथाकथित प्रेयसी 'कुब्जा' तथा कृपण व्यक्ति इस रस के विशेष आलम्बन और आधार माने गये हैं। संस्कृत नाट्य साहित्य में प्रचुरता से प्राप्य पेटू ब्राह्मणों की परम्परा को प्रसाद जी ने अपने नाटकों में वसन्तक और मुद्गल के रूप में प्रचलित रखा है। परन्तु इन पात्रों के द्वारा उन्होंने कुछ तथ्य और महत्वपूर्ण बातों की ओर भी संकेत करवाया है। इनके विषय में रीतिकालीन हिन्दी कवियों की दो एक उक्तियां देखते चलना कदाचित् अप्रासंगिक न होगा। भगवान् शंकर के एक भक्त की उक्ति है—

बारबार बैल को निपट ऊंचो नाद सुनि,
हुंकरत बाघ दिरुझानों रस रेला में।
'भूधर' भनत, ताकी बास पाय सोर करि,
कुत्ता कोतवाल को बगानो बगमेला में।
फुंकरत मूषक को दूषक भुजंग तासों,
जंग करिबे को झुक्यो मोर हदहेला में।
आपुस में पारषद कहत पुकारि कछु,
रारि सी मची त्रिपुरारि के तबेला में।

एक कृपण पर 'बेनी कवि' का सुप्रसिद्ध भड़ौआ है—

**चींटी की चलावे को मसा के मुख आप जाय।
स्वास की समीर लागे कोसन भगत है।
ऐनक लगाये मरु मरु के निहारे जात
अणु परमाणु की समानता खगत है।
बेनी कवि कहै हाल कहां लौं बखान करौं
मेरी जान ब्रह्म को विचारिबो सुगत है।
ऐसे आम दीन्हे दयाराम मन मोद करि
जाके आगे सरसों सुमेरु सों लगत है।**

'कूबरी' पर ग्वाल कवि ने कटाक्ष इस प्रकार किया है—

ऊधो तेरे यार ऐसे हैं हैं रिझवार जाय जानती विचार तापै सूधो
हो न जायबो ।
करती विचार भांति भांति के सुभाय माय केती बड़ी बात हुती वाको
अटकायबो ।।
ग्वाल कवि पीठन में एक एक हांड़ी बांधि नीके मनमोहन को करती
रिझायबो ।
या तो कहूं कोई बहुरुपिया तलास करि सीख लेतीं हम सब कूबर बनायबो ।।

परन्तु, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, स्मित हसित आदि भेद सहृदय के अनुभावों के आधार पर आन्तरिक मनोभावों की वाह्य नाप-जोख का प्रयत्न सा ही है । वास्तविक अध्ययन तो माध्यम के आधार से हास्य के भेदों के समझने का होगा ।

हमारे सभी मनोविकारों के समान ही हास्य के विकास परिष्कार में भाषा के विकास और परिष्कार ने बड़ा महत्वपूर्ण योग दिया । तथ्य तो यह है कि हास्य का ग्रहण और आस्वादन भाषा की अभिव्यंजना शक्ति पर ही अवलबित है । भाषा के आधार पर विकृति अथवा असंगति शाब्दिक असंगति होती है । शाब्दिक असंगति का सबसे सरल और सीधा उदाहरण श्लेष अलंकार है । एक शब्द के दो भिन्न और प्राय: विरोधी अर्थो को लेकर जो भाषा विषयक असंगति उपस्थित होती है, इस प्रकार के हास्य का वही आधार है । 'चतुरानन' को श्लिष्ट करके कवि ने जिस चतुरता का परिचय दिया है निम्नोद्धृत छन्द में दृष्टव्य है—

गृहिन दरिद्र गृह त्यागिन विभूति दीन्हीं प्रेमिन वियोग पुण्यंतहू छलो गयो ।
गृहन गृहेश कियो शनी को सुचित लघु व्यालन अनंद शेष भारन दलो गयो ।
फेरन फिरावत गुणनि द्वार द्वार नीच गुणन बिहीन घर बैठे ही भलो भयो ।
कौन कौन बात कहौं तेरी एक आनन तें नाम चतुरानन पै चूकतो चलो गयो ।।

'अब' के 'दानी' और 'दान' विषयक एक उक्ति है—

दानी कोउ नाहिना गुलाबदानी गोंददानी पीकदानी घनी शोभा इनहीमें लहेहैं ।
मानत गुणी को गुण ही में प्रगटत देख्यो यातें गुणीजन मन सावधानी गहे हैं ।।
हयदान हेमदान गजदान भूमिदान सुकवि सुनाये औ पुरातन में कहे हैं ।
अब तो कलमदान जुजदान जामदान खानदान पानदान कहिबे को रहे हैं ।।

परन्तु इस चमत्कार का प्रभाव और अधिक बढ़ जाता है जब एक ही शब्द के दो विरोधी अर्थ निकलने लगते हैं । उदाहरण के लिए हम पन्ना नरेश छत्र-साल के दरबार में भगवत कवि के स्थान पर निवाज कवि के स्थानापन्न होने पर भगवत कथित यह दोहा ले सकते हैं:—

भली आजु कलि करत हौ छत्रसाल महराज।
जहं भगवत गीता पढ़ी, तहं कवि पढ़त निवाज।।

इसी प्रसंग में कविवर बिहारी लाल का सुप्रसिद्ध दोहा भी उद्धृत कर देना उचित होगा:—

चिरजीवी जोरी जुरै क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के बीर।।

शाब्दिक चमत्कार पर आधारित हास्य के ये भेद कुछ बहुत अधिक प्रसिद्धि और लोकप्रियता प्राप्त न कर सके। कालान्तर में इनका स्थान विचारों के विपर्यय और भावों की असंगति ने ले लिया। हास्य की इस कोटि में सारा पैरोडी साहित्य आ जाता है। पैरोडी का प्रारंभिक रूप वह माना गया है जहां कुछ ध्वनियों के स्थानान्तरण से एक अवस्थिति दूसरे में परिणत हो जाती है। उदाहरण के लिए इन पंक्तियों को ले सकते हैं:—

"हे जन, अर्जन से मुँह न मोड़,
मिल सके जहाँ जितना, न छोड़।
घर भर ले सब कुछ जोड़ जोड़,
पर यह तो कह, किस हेतु हाय!
'बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय।'" (मैथिली शरण गुप्त, 'कुणाल-गीत')

इसमें 'बहुजन' की ध्वनि को 'भोजन' में परिणत कर देने से सारी कविता ही हास्य का माध्यम बन जाती है। यहां उदात्त का पतन हास्यास्पद भावना में कर दिया गया है। और इस परिणति में आह्लाद प्राप्त किया गया है। इस प्रक्रिया को पूर्णरूप से उलटा भी जा सकता है जहां तुच्छ को उदात्त के पद पर प्रतिष्ठित किया जाता है। एक नगण्य घटना अथवा तथ्य को महान् उत्कर्ष पूर्ण बना देना ऐसी पैरोडी का उद्देश्य है। इसका एक रोचक उदाहरण 'छछूंदर वध महाकाव्य' है जो माइकेल मधुसूदन दत्त के 'मेघनाद वध' को लक्ष्य कर लिखा गया था। उसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं:—

"साधु, बिधि वाहन, सुपुच्छ कृपा करके
मुझको प्रदान करो, चित्रित करूं जो मैं,
हनन किया था किस कौशल या बल से
आशुगति युक्त आके भू पर गगन से,
वज्र नख, आमिषाशी दुर्जय शकुन्त ने
साध्वी, पंथ सौरभा, छछूंदर छबीली का।

कम्पित हुई थी वह कैसे नखाघात से।
नीर निधि तीर मानो तरल तरंगों से।
अर्कवर वृक्ष तले, विद्युत गमन से,
एकदा चतुष्पदी छछूंदर थी घूमती।
पत्ते खड़काती हुई। पीछे पुष्प गुच्छ सी
पुच्छ हिलती थी अहा। सुश्यामांगवंग में
विश्व प्रसू, विश्वम्भरा, दशभुजा देवी पै
ऋत्विकों की मण्डली ज्यों चामर डुलाती है
शोभन शरद में। या घटिका सुयन्त्र का
दिव्य दोल दण्ड डोलता है बारबार ज्यों।"

पैरोडी कभी कभी किसी व्यक्ति अथवा कार्य के खिलाफ न होकर किसी सम्प्रदाय अथवा शैली के विरोध में हुआ करती है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के छायावादी युग में रहस्यवाद और छायावाद के विरोध में ऐसी अनेक मनोरंजक और भद्दी दोनों प्रकार की रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

इस प्रकार के हास्य की उच्चता का मानदण्ड शाब्दिक चमत्कार से हटकर उसके मूल में सन्निहित विचारों की सांकेतिकता पर अवलम्बित रहता है।

पैरोडी साहित्य से उठकर हास्य की वे कोटियाँ आती हैं जिन्हें हम परिस्थिति विषयक हास्य और चारित्रिक हास्य कहेंगे। राम कथा में परशुराम लक्ष्मण सम्वाद में लक्ष्मण की व्यंगोक्तियाँ परिस्थिति विशेष का हास्य हैं। तुलसी दास जी की यह पंक्ति—

कहेउ लखन मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा॥

इसी का उदाहरण है।

नारद मोह के प्रसंग में भी गोस्वामी जी ने 'हरि' शब्द को श्लिष्ट करके एक पंक्ति में परिस्थिति जन्य हास्य भर दिया है। 'हरगन' की उक्ति है—

रीझिहिं राजकुंवरि छवि देखी। इन्हहिं वरहि हरि जानि विसेखी।

चारित्रिक हास्य वास्तव में बड़ी उच्च कोटि में परिगणित किया जाना चाहिए। निराला जी का बिल्लेसुर बकरिहा का चित्र बहुत कुछ इसी वर्ग में आयेगा।

परिस्थिति और चरित्र सम्बन्धी असंगतियों और विपर्ययों से भ उत्कृष्टतर हास्य वह है जो जीवन की विडम्बना में प्रवेश करता है

सामाजिक संगठन की असंगतियां और व्यवस्थात्मक विपर्ययों पर उद्दिष्ट हास्य सर्वोत्कृष्ट कहा जायगा। ऊपर रीतिकालीन हिन्दी कवियों की दुर्बलताओं की ओर संकेत किया जा चुका है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि उक्त कवियों के कटाक्ष से ऐसी व्यवस्थात्मक विकृतियाँ सर्वथा बच गई हैं। बेनी कवि का ही एक भड़ौआ यहां प्रस्तुत किया जाता है जिसमें कवि ने लखनऊ की नागरिक दुर्व्यवस्था पर कटाक्ष किया है:—

अड़िजात बाजी औ गयन्द गड़ि जात, सुतुर अकड़ि जात मुसकिल गऊ की।
दामन उठाय पाय धोखे जो धरत, हाते, आप गड़काय रहि जात पाग मऊकी।
बेनी कवि कहैं देख थर-थर कापै गात, रथन को पथ न विपति वरदऊ की।
बारबार कहत पुकारि करतार सो हौं, मीचु है कबूल पै न कीच लखनऊ की॥

आधुनिक युग में पाश्चात्य साहित्य से प्रमुख रूप से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण करके जिन अनेक हिन्दी लेखकों ने हास्य-रचना-क्षेत्र में पदार्पण कर प्रतिष्ठा प्राप्त की, उनमें जी० पी० श्रीवास्तव जी कालक्रम और कृति-परिमाण के साथ साथ बहुत कुछ उद्देश्य सिद्धि की दृष्टि से भी अग्रगण्य हैं। मेरे परम प्रिय छात्र श्री श्याम मुरारी जैसवाल ने जी० पी० की रचनाओं का अध्ययन-आलोचन १९५६ में अपनी एम्० ए० परीक्षा के लिए एक प्रबन्ध प्रस्तुत करने के निमित्त किया था। लखनऊ **विश्वविद्यालय** में एक प्रश्न पत्र के विकल्प रूप में प्रबन्ध प्रस्तुत करने का प्राविधान है। हिन्दी-विभाग से इन प्रबन्धों के प्रकाशन की व्यवस्था-योजना भी है। जिसके अन्तर्गत प्रबन्ध यथा समय प्रकाशित होते रहते हैं। यह प्रबन्ध भी प्राय: अपने मूलरूप में ही प्रकाशित हो रहा है।

परीक्षा के लए निर्दिष्ट सात-आठ मास के सीमित समय में भी उदृष्ट विषय पर इस ग्रन्थ के लेखक को कितनी सफलता मिली है यह कहना मेरे लिए उपयुक्त न होगा। श्री जैसवाल मेरे अपने हैं और आत्मीयता पक्षपात की जननी है। फिर भी इतना तो निर्विवाद कह सकता हूं कि प्रस्तुत लेखक ने निरपेक्ष और तटस्थ भाव से समीक्षा के इस कठिन कार्य को निभाया है। यह कार्य कठिन मैं इसलिए और मानता हूं कि किसी साहित्यकार के जीवन-काल में उसके कृतित्व और व्यक्तित्व पर सम्मति देना विपद्-संकुल मार्ग को अपनाना होता है और उस पर भी हास्य और व्यंग्य के लेखक या उसकी रचनाओं पर टीका-टिप्पणी करना तो और भी भयावह है। श्री जैसवाल ने इस कठिन कार्य का संपादन-निर्वहण जिस रूप में किया है वह सर्वथा श्रेयस्कर है।

किसी भी साहित्यिक अध्येता में कृति के आलोचन- अध्ययन के समय जहां विवेकशीलता अपेक्षित है वहाँ साहित्यकार के प्रति सहृदयता और आदर-शीलता भी अनिवार्य है। जी० पी० की रचनाओं, विचारों और विधाओं की आलोचना करते समय प्रस्तुत अध्येता रचनाकार के व्यक्तित्व के प्रति सतत् श्रद्धावान रहा है, यह मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं। और प्रस्तुत अध्येता क्या, समस्त हिन्दी संसार जी० पी० की साहित्यिक देन का चिरऋणी रहेगा और इसी हेतु उनके प्रति भी श्रद्धावनत। तथास्तु;

—हरिकृष्ण अवस्थी

पं० हरिकृष्ण अवस्थी
एम्० ए०, एम्० एल्० सी०
हिन्दी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

विनय

'हास्य' के नाम मात्र से जो मुस्कराने को सदैव उत्सुक रहते हैं, उनका मैं सत्कार करता हूँ। जो हास्य रस की चर्चा से मुँह बिचकाकर हँसते हैं, उन्हें स्मरण रहे कि हास्य की अवज्ञा में भी वे उसका आश्रय ग्रहण करते हैं। सीता जी की **'तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं'** वाली भेदभरी, आमोदपूर्ण मुस्कान भी हँसी थी और रंग-प्रासाद में, महाभारत-काण्ड की बीज रूप, दुर्योधन की नादानी से उद्‌भूत, द्रौपदी की उपेक्षापूर्ण अधर-भंगिमा भी। हास्य का एकक्षत्र आधिपत्य है; उसके निरादर में भी लोग हँसते ही हैं!

हास्य-रस विषयक जितनी व्याख्या पाश्चात्य देशों में हुई, अपने देश में उसकी चतुर्थांश भी नहीं। वैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी में हास्य के विश्लेषण का पूर्ण अभाव रहा है। फिर, जी० पी० एक पाश्चात्य लेखक से ही प्रेरणा लेकर बढ़े। इस कारण, उनकी कृतियों का अध्ययन बिना हास्य के पाश्चात्य सिद्धान्तों के धरातल पर की गई व्याख्या की पृष्ठभूमि के, सदैव अपूर्ण रहता। अस्तु, प्रथम दो अध्यायों में भारत के विद्वानों के साथ ही विदेशी मत-मतान्तरों का अधिक प्रश्रय लिया गया है।

व्यक्तिगत रूप से, एवं पत्र व्यवहार द्वारा विचार विनिमय में, जी० पी० ने अपना अमूल्य समय देकर, अपने सहज सौहार्द की छाप हृदय-पटल पर सदा के लिए अंकित कर दी है।

प्रस्तुत अध्ययन लखनऊ विश्वविद्यालय की सन १९५६ ई० की एम्० ए० परीक्षा के लिए स्वीकृत हो चुका है। इच्छा थी कि इधर के सात वर्षों के जी० पी० के साहित्य पर भी कुछ कहा जाये। किन्तु, निबन्ध की यथावत् अनुसन्धानात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री को प्रामाणिक थीसिस के रूप में सुरक्षित रखने के कारण न्यूनतम संशोधन ही सम्भव हो सके। तथापि, परिशिष्ट में कुछ नवीन संकेतों की अनुमति प्राप्त हुई है।

निस्सन्देह, शोध प्रबन्धों में भावना एवं आत्मीयता का बलिदान करना होता है। तटस्थ भाव से की गई आलोचनाओं में व्यक्तिगत अपनत्व के स्थान

पर, अप्रिय टिप्पणी का अपराधी मैं हो सकता हूं। विश्वास है, जी० पी० एवं साहित्य के विज्ञ अध्येता मेरी इन त्रुटियों को क्षमा करेंगे।

हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एवं कला संकाय के अधिष्ठाता, आदरणीय प्रो० दीनदयालु जी गुप्त के प्रति मौन रहना ही उचित होगा। परिवार के गुरुजनों के प्रति औपचारिक शिष्टाचार-प्रदर्शन कृत्रिमता के साथ-साथ अविनय का परिचायक होता है। अतः, उनके प्रति मूक प्रणति ही निवेदित करना अभीष्ट है।

श्रद्धेय गुरुवर श्री हरि कृष्ण अवस्थी जी का इस निबन्ध के विन्यास में निर्देशन मात्र स्वीकार कर उनके सहज स्नेह का अनादर नहीं कर सकता। प्रस्तुत प्रबन्ध उनसे प्राप्त प्रेरणा-प्रोत्साहन का ही प्रतिफल है।

विद्यालय के हिन्दी विभाग के सभी अध्यापकों ने यथावसर अपने महत्त्वपूर्ण सुझावों से बड़ी सहृदयता से सहयोग दिया। इनके शिष्यत्व का मुझे गर्व है।

अंग्रेजी विभाग के प्राध्यापक, गुरु, डा० श्री मुरारी सिनहा ने जब भी परामर्श की आवश्यकता हुई, निस्संकोच भाव से कृतार्थ किया। थाम्पसन कालेज, गोण्डा, के भूतपूर्व अध्यापक श्री देवकी नन्दन श्रीवास्तव जी ने जी० पी० से सम्बन्धित अनेक सूचनाओं के एकत्रीकरण की दिशा में सहयोग देते हुए अदम्य उत्साह का प्रदर्शन किया।

दो-चार स्थलों के अतिरिक्त, मुद्रण की जो त्रुटियाँ रह गई हैं, वे बहुधा प्रसंग से ही स्पष्ट हो जाती हैं। विद्वान पाठक, अपने देश में मुद्रण सम्बन्धी सुविधाओं की सीमाओं पर ध्यान रखते हुए, स्वयं ही अशुद्धियों का सुधार कर, हमें क्षमा करेंगे। सहपाठी श्री विश्व मोहन, उनके 'पृनार मुद्रक' के कार्य-कर्त्ता, तथा विशेष रूप से हिन्दी विभाग के 'विश्व विद्यालय प्रकाशन' के संचालक, डा० प्रेम नारायण टण्डन जी, का मैं कृतज्ञ हूं। इनके बहुमूल्य सहयोग से ही लेख का प्रकाशन हो सका।

हिन्दी एवं अंग्रेजी साहित्य के उन सभी विद्वानों का आभार स्वीकार करना मेरा कर्त्तव्य है, जिनकी रचनाओं का उल्लेख परिशिष्ट तथा निबन्ध में यथावसर कर दिया गया है। इनकी पुस्तकों का सम्यक् अथवा गूढ़ अध्ययन-आलोड़न कर उनमें मेरी कोई गहरी पैठ हो गई है, मेरा ऐसा दम्भपूर्ण दावा नहीं है। हाँ, उनकी स्थापनाओं निष्कर्षों से अपने विचारों को पल्लवित करने में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मुझे सहायता अवश्य मिली है।

उक्त निबन्ध एवं बाद के भी, शोध सम्बन्धी जीवन की स्मृतियों में प्रिय भ्रातृज ध्रुव की मुद्रा अनायास सजीव हो उठती है। अपनी विनोदी एवं उन्मुक्त हास्यपूर्ण आकृति से वह बरबस प्रेरणा का स्रोत बन बैठा था। किसे अनुमान था, यह हंसी शीघ्र ही अपनी अन्तिम सीमा को छू लेगी। आज उसके अविशेष ऊधम की स्मृति मात्र शेष है। अस्तु……।

हास्य एवं जी० पी० की कृतियों को समझने-परखने में यह ग्रंथ सहायक हो सकेगा, इसकी परीक्षा तो पाठक प्रवर ही करेंगे। हिन्दी साहित्य के भव्य मन्दिर में एक लघु कण के योगदान रूप में यदि इसे विद्वानों ने स्वीकार किया तो मेरा श्रम सार्थक होगा।

विनयावनत—

श्याम मुरारी जैसवाल

नव वर्षारम्भ, सन् १९६३ ई०।

श्याम मुरारी जैसवाल

एम्० ए०, बी० एड्०

९५१/बी, सेक्टर ए$_{३}$,

महानगर,

लखनऊ।

विषय तालिका

प्रथम खण्ड

हास्य

द्वितीय खण्ड

जी० पी० के साहित्य की पृष्ठभूमि

तृतीय खण्ड

जी० पी० श्रीवास्तव की हास्य रचनाएँ

प्रथम खण्ड

हास्य

१—हास्य का स्वरूप,
२—हास्य के प्रकार, तथा
३—हिन्दी साहित्य में हास्य रस ।

"यह शैशव का सरल हास है,
सहसा उर से है आ जाता ।"

—सुमित्रा नन्दन पंत ।

"Laughter is the tender, angelic daughter of religion, the jolly, radiant companion of art, and the tell-tale, sensitive sister of morality, leading man and society merrily to the true, the good and the beautiful."

—Dr. Radha Kamal Mukerjee

१

हास्य का स्वरूप

आह्लाद का प्रकाशन :

सुख दु:ख की युग्म अनुभूति जनित आह्लाद और विषाद का शारीरिक चेष्टाओं में प्रकटीकरण हास्य और रुदन रूप में मानव को अनादि वासना और अतृप्त क्षुधा की भाँति मूलभूत प्रकृति से ही प्राप्त हुए। सृष्टि के असंख्य, ज्ञात और अज्ञात, हास्यों की पृष्ठ-भूमि में एक आह्लाद की भावना निहित मिलती है चाहे वह योगी की समाधिस्थ मुस्कान हो, अथवा यौवन की मादकता से प्रेरित मधुरिम, नैसर्गिक अधरों की थिरकन[1]। अस्तु विस्तृत अर्थ में हास्य 'आल्हाद का प्रकाशन' है।

मानव की निधि :

क्लेशातुर पशु-पक्षी केवल चीत्कार अथवा कम्पन ही नहीं करते, वरन् उनमें से अनेक अश्रुपात भी करते हैं। हर्षोल्लास प्रकट करने के उनके माध्यम उछलना कूदना, पूछ उठा कर चौकड़ी भरना, नृत्य तथा कूजन आदि हैं। हम कह सकते हैं कि वे आल्हाद का प्रकाशन अपने समस्त शरीर से करते हैं। परन्तु जहाँ मानव को जीवन के अनेक परिष्कृत साधन उपलब्ध हुए वहीं

---

1. "By way of contrast there is the silent, half-expressed smile of the contemplative mind, expressive of inward joy and serenity that brightens the world for those who see it"—'The Social Structure of Values'—Dr. Radha kamal mukerjee, pp. 174.

"That ringing laugh of pure human happiness which one some times hears from the lips of young girls; is there any music like it ? They laugh as the birds sing."—W.S. Lilly from Monro's 'Argument of Laughter', pp. 21.

हँसने की अपनी वस्तु, विशेषता और कला भी : 'वह एक हँसने वाला पशु है'।[2]

प्राचीनतम हास्य :

पुरातन युग में मनुष्य सर्व प्रथम क्यों हंसा, इसका निर्धारण असम्भव है। अनेक विद्वान इसे पराजित शत्रु के पतन से आविर्भूत भंगिमा से सम्बद्ध करते हैं। परन्तु प्राचीनता की दृष्टि से हम रति-केलि में अनायास उत्पन्न हास को भूल नहीं सकते। सृष्टि-निर्माण के शिलान्यास काल में ही काम की उपस्थिति सभी स्वीकार करते हैं: और, काम तथा हास्य का चोली दामन का साथ है।[3]

यही नहीं, एक नवजात्-शिशु भी अपनी माता के दर्शन, आलिंगन अथवा अन्य किसी सुखकारी अनुभव से मुस्करा देता है। हमारा स्वाभाविक प्रथम हास यही होता है और सम्भवत: सृष्टि के आदिम-काल में भी रहा होगा।

सभ्यता और हास्य का विकास :

कुछ भी हो हास्य के उपर्युक्त रूप पाशविकता के अधिक निकट थे; क्योंकि एक असहृदयता ओर कठोरता से संचालित था और दूसरा शारीरिक सम्बन्ध एवं हार्दिक कामनाओं के आधीन। धीरे-धीरे सभ्यता के विकास

---

2. "Man is a laughing animal and at the end of infinite search the philsopher finds himself clinging to laughter as the best of human fruit, purely human and sane, and comforting" —Meredith, 'Toasters' Hand book'. pp. XII.

3. इस प्रसंग में प्रसाद जी की 'कामायनी' की पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं। मानव-संस्कृति से भी पूर्व हास्य और विनोद काम के सहचर थे और उसकी कल्पना देव-बालाओं के संसर्ग में करके यह भी कवि ने दिखा दिया है कि हास्य का अटूट सम्बन्ध श्रृंगार और रति से है—

> **"मैं काम रहा सहचर उनका,**
> **उनके विनोद का साधन था;**
> **हँसता था और हँसाता था,**
> **उनका मैं कृतिमय जीवन था।"**

के साथ हास के अवसर वास्तविक अनिष्ट और शारीरिक कामनाओं से हट कर प्रातिभासिक अनिष्ट और मर्यादित शृंगार में सीमित होते गए ।[4]

भाषा का माध्यम, विकास की अनुपम शृंखला :

हास का जन्म भाषा से प्राचीन है । कामना विजय और पराक्रम से उद्भूत हास्य वाणी की अपेक्षा नहीं करता । उसके लिए हमारे शारीरिक वाह्य कार्य कलाप (Practical, physical movements) पर्याप्त हैं । भाषा का विकास संकेत आदि की अवस्था के बाद आया और हास्य जन्म-जात प्राकृतिक भाव-प्रकाशन है । वह उपयुक्त उत्तेजनाओं के अवसर पर नैसर्गिक रूप से प्रकट हो जाता है ।[5] इसी आधार पर आँग्ल विद्वान 'पेल्योरिडीकुलस' (Palaeoridiculous) और जर्मन काव्य शास्त्री 'अर्-ह्यूमर' (Ur-Humour) की कल्पना करते हैं । उनके अनुसार हमारा प्राचीनतम हास आज भी जीवित है, जो केवल किसी प्रिय के दर्शन मात्र से उत्पन्न हो जाता है; इसका रूप 'हा, हा,' है ।

आगे चल कर भाषा और अन्य विविध कलाओं के विकास के साथ हास्य का प्रसार चित्रों और शब्दों में अभिव्यंजित हो उठा ।[6] भाषा का

---

4. "We of to-day would keep our' Homeric laughter' for a man who had slipped on a banana skin or limped with 'pins and needles', and wasn't really hurt. Humor has changed from a basis of injury or destruction to what one may describe as a basis of 'incongruity' or 'maladjustment". —'Humour and Humanity', Leacock, pp. 27.

5. "Our laughter originated then it would seem, long before our speech as a sort of natural physical expression, or out-burst, of one feeling suddenly good, suddenly victorious."— 'Humour, Its Theory and Technique', Leacock, pp. 9.

6. "The original humour was expressed by actions, not by words. It was, and is, represented by progressive gradations as victory, cruelity, teasing, horse-play, hazing, practical jokes and April Fool. But as early as art and letters themselves, humour found its expression in drawing and in words."—Humour, 'Its Theory and Technique,' Leacock, pp. 12

माध्यम हास्य के विकास की अनुपम कड़ी है। इसके सहयोग से हास्य सुसस्कृत होता गया और साथ ही लिपि के निर्माण ने हमें चुपके से एकान्त में हँसने की युक्ति दी।[7]

हास्य की उत्पत्ति; विभिन्न सिद्धान्त :

हास्य के स्वरूप-अन्वेषण में अधिकांश विद्वानों ने उसकी उत्पत्ति का मर्म महत्त्वपूर्ण माना है। हास्य के उद्रेक का मूलभूत कारण क्या है, इसी प्रश्न के उत्तर द्वारा उन्होंने हास्य का एक चित्र उतारने का प्रयत्न किया है। इस प्रसंग में अनेक सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं। इनमें पर्याप्त मतभेद है। इनमें से कुछ प्रमुख मतों-सिद्धान्तों पर एक विहंगम दृष्टि डालना उचित होगा।

भारतीय मत :

नाट्य-शास्त्र-कार भरत मुनि से लेकर रीति-कालीन काव्य शास्त्रियों तक ही क्या, आज भी भारतीय विद्वानों का इस विषय में कोई सूक्ष्म विवेचन नहीं प्राप्त होता। भरत के आधार पर रचित 'दश रूपक' में धनंजय ने दो श्लोकों में विदूषक को हास्य रस का आलम्बन तथा उसके संचारी भाव और अनुभावों का उल्लेख मात्र कर दिया है।[8] 'साहित्यदर्पण' में दिए हुए

7. डा० श्री मुरारी सिन्हा ने एकान्त में हास्य की उत्पत्ति को पागलों में अथवा किसी मद के प्रकोप में ही सम्भावित माना है (देखिए डा० सिन्हा के जुलाई १९, सन् १९५३ ई० के 'पानियर' से धारा वाहिक रूप में छपे तीन लेख-'Of wit And Humour')। उनका तर्क बहुत कुछ भावुक आक्षेप सा ज्ञात होता है। वास्तविकता यह है कि आज हम किसी हास्य रचना के पठन से एकान्त में, केवल अपनी संगति में समाज की कल्पना मात्र से, हंस सकते हैं। और प्राय: ऐसे अवसर आते हैं जब हम अकेले ही किसी पूर्व घटित आल्हाद-जनक संस्मरण से हंस पड़ते हैं। इस प्रकार हंसने की शक्ति भाषा और सभ्यता के विकास से ही अर्जित हो सकी, इसे डा० राधा कमल मुकर्जी ने भी स्वीकार किया है :—

"Modern civilised man can laugh silently and by himself as has not been possible before"—'The Social Structure of Values,' pp. 189.

8. "विकृताकृति वाग्विशेषैरात्मनोऽथ परस्यवा।
हासः स्यात् परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रि प्रकृतिस्मतः॥"

—'दशरूपक'

लक्षणों के अनुसार विकृत आकार, वाणी और चेष्टा आदि का नाट्य हास्य का जनक मान कर उसका स्थायीभाव हास, वर्ण शुक्ल और देवता प्रमथ बताया गया है।[9] 'काव्य प्रकाश' में भी वाणी आदि के विकार पर बल दिया गया है।[10]

भारतीय ही नहीं वरन् समस्त देशों के साहित्य का श्रीगणेश नाटकों से हुआ है, क्योंकि वे जीवन से निकटतम रह कर उसकी व्यंजना करते हैं। नाटक का आनन्द लेने में हमको अपनी कल्पना शक्ति का अधिक प्रयोग नहीं करना पड़ता : सभी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ स्वयं अभिनय में सजीव हो जाती हैं। इसी कारण प्राचीन साहित्यिक विवेचन भी प्राय: नाटक को ही लक्ष्य में रख कर किए गए हैं। फलत: हास्य का विवेचन प्राचीन भारतीय नाटकों में उसके प्रतीक विदूषक को सम्मुख रख कर हुआ है।

विदूषकों के रूप और उनके कार्य कलाप का श्री श्यामसुन्दर दास जी द्वारा प्रस्तुत विवेचन प्रशंसनीय है। आपके अनुसार हमारे प्राचीन साहित्य में विदूषक की एक धारणा बन गई थी—

"इसका काम लोगों को हँसाना है। इसकी वेश-भूषा आचार-विचार, व्यवहार सब ऐसा होता है कि इसे देखते ही हँसी आ जाय। कहीं कहीं ऐसा भी लिखा है कि इसे बौना, गंजा और लाल आंख वाला तथा लम्बे दाँत वाला होना चाहिए—मनोरञ्जन के लिए नियुक्त होने के कारण इसे यह सब विकृत व्यापार करने पड़ते हैं।"

भारतीय शास्त्रिओं द्वारा दिए गए विवेचनों में अधिक बल हास्योत्पत्ति के आलम्बन पर दिया गया है, उसके मूल कारण पर नहीं। हास्य का उद्रेक

इसके अनुसार अपनी अथवा पराई विकृत आकृति अथवा वाणी की विशेषता से जो हास्य उत्पन्न होता है उसका परिपोषण हास्य रस है। इसी प्रकार निद्रा, आलस्य, श्रम, ग्लानि और मूर्छा का इसके साथ संचरण बताया गया है।

9. **"विकृताकार वाग्वेष चेष्टादेः कुहकाद्भवेत्।**
हास्यो हास स्थायिभावः श्वेतः प्रमथ देवतः॥"

—'साहित्य दर्पण'

10. **"रतिर्मनोऽनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणयितम्।**
वागा दिवै कृताच्चेतो विकसो हासउच्चते॥"

—'काव्य प्रकाश'

क्यों और कैसे होता है इसकी व्याख्या नहीं की गई है। विश्लेषण केवल यह है कि किसके कारण हास्योद्रेक होता है, और उसका क्षेत्र भी विदूषक तक सीमित रखा गया है। आलम्बन की व्याख्या में केवल विकार की चर्चा है, चाहे वह वाचिक हो, आंगिक अथवा आहार्य। हास्य के प्रस्फुटन के वास्तविक व्यापार के विश्लेषण की ओर काव्य शास्त्रियों की पूर्ण उपेक्षा है : जो बहुत कुछ प्राचीनों के प्रसंग में उनके जीवन सम्बन्धी विशिष्ट दार्शनिक दृष्टिकोण के कारण तथा अर्वाचीन लेखकों के सम्बन्ध में उनके पर्याप्त बुद्धि वैभव और मौलिक चिन्तनशक्ति के अभाव के कारण है।

पाश्चात्य सिद्धान्त :

पाश्चात्य साहित्य में हास्य की उत्पत्ति का विवेचन अनेक विद्वानों ने किया और अनेकानेक सिद्धान्त प्रस्तुत किए। महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवेचन ही यहाँ अभीष्ट होगा—

पतनः—विदेशी साहित्य में हास्य के विवेचन का सर्व प्रथम प्रयत्न अरिस्टाटिल् का है। इसी का विकास कर अनेक आँग्ल विद्वानों ने हास्य का मर्म पतन (Degradation) में निश्चित किया। इसके अनुसार जब हम किसी का कार्य-कलाप सामान्य मनुष्यत्व की श्रेणी से पतित देखते हैं तभी हँसी आ जाती है। यहाँ ध्यान रखना चाहिए कि पतित पात्र के प्रति दया, करुणा, क्रोध आदि किसी अन्य भाव की उत्पत्ति न होनी चाहिए।[11] साथ ही हास्योत्पादक वस्तु में कुरूपता की स्थिति स्वीकार की गई है पर उसी सीमा तक जब तक वह कष्टदायी न हो।

पतन का मूल कारण किसी चरित्र में गुणों की कमी अथवा अवगुणों का आधिक्य ही नहीं होता वरन् कभी कभी गुणों का आधिक्य भी। यदि हँसने वाला समाज गुणों से हीन है तो वह गुणों पर हृदय खोल कर हँस सकता है।

असंगतिः—अरिस्टाटिल् के समय तक हास्य-साहित्य केवल अरिस्टाफेंस के नाटकों में सीमित था। हास्य कला के थोड़े और विकास के उपरान्त पतन हास्योत्पत्ति का केवल एक कारण माना गया। तत्त्व ज्ञानी कैन्ट, शापेन-हावर और हैज़लिट[1] के अन्वेषणों ने असंगति (Incongruity) पर अधिक

---

11. "Laughter results from the degradation of some person or interest possessing dignity in circumstances that excite no other strong emotion."—Professor Bain, 'Toasters' Hand book,' pp. VIII.

बल दिया। इनके अनुसार चित्र, चरित्र, भाव, विचार अथवा भाषा के अवयवों के असाम्य से हास्योत्पत्ति होती है।[12] किसी वस्तु की सत्ता में एक असन्तुलन (Disharmony in the setting of a thing) हमें हँसाता है।

इस असंगति पर विचार करते ही इतना स्पष्ट हो जाता है कि यदि हम किसी वस्तु के असन्तुलन पर हँसते हैं तो अवश्य ही हमारी कल्पना में उस वस्तु विशेष का एक सन्तुलित रूप होगा। अतः हम किसी वस्तु को कैसा होना चाहिए था, और वह कैसी है, में भेद करके हँसते हैं।[13]

वस्तुतः इस असाम्य में भी एक वस्तु की अवस्था में विकार की भावना सन्निहित है। असन्तुलित वस्तु विकार का ही फल होती है।[14] अतः भारतीय विद्वानों की विकार की धारणा से इसका पर्याप्त साम्य है। अन्तर इतना है कि इस सिद्धांत से हास्य का व्यापक रूप सामने आता है न कि भारतीय दृष्टि का विकार जो केवल विदूषकों में संकुचित था।

---

12. "The essence of the laughable is the incongruous, the disconnecting of one idea from another, or the jostling of one feeling against another."—Hazlitt, from 'The Theory of Drama', A Nicoll, pp. 194.

"What either in the words or sense of an author, or in the language or actions of men, is awry or depraved does strangely stir mean affection, and provoke for the most part to laugther."—Ben Jonson, from 'The Theory of Drama', A. Nicoll, pp. 194.

13. "Man is the only animal that laughs and weeps, for he is the only animal that is struck with the difference between what things are and what they ought to be."—Hazlitt, 'Toasters' Hand book,' pp. I.

14. "Humour thus grew to turn a contrast between the things as it is, or ought to be, and the thing smashed out of shape and as it ought not to be. We can appreciate this by remembering that a broken umbrella looks 'funny'."—Leacock, 'Humour, Its Theory and Technique', pp. 12.

आगे के तत्त्व-वेत्ताओं ने असमानता अथवा असंगति के सिद्धांत को लेकर उसे विकसित और स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। किसी ने मस्तिष्क की हास्य के अनुशीलन की क्रिया और शक्ति पर अधिक बल दिया और किसी ने प्रहसनीय के अंगीकार की विधि पर। किस प्रकार हम असंगति पर विश्वास करते हैं और किस प्रकार प्रहसनीय का आनन्द मक्कारी अथवा झूठे अभिनय तथा अहंकार से उत्पन्न होता है, इसका अध्ययन प्रस्तुत किया गया।[15]

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध लेखक स्पेन्सर ने 'असगति के निरीक्षण' को हास्य का जनक माना, और उसमें भी 'अधोमुख असगति' (Descending incongruity) को महत्त्व दिया। इसके अनुसार 'अधोमुख असंगति' वहाँ मानी गई है जहाँ बोध ज्ञान किसी बड़ी वस्तु से छोटी की ओर आकर्षित होता है। हास्य की स्वाभाविक उत्पत्ति का मूल यही है। ठीक इसके विपरीत उत्तरोत्तर असंगति की कल्पना की गई है।[16]

---

15. Humour is "The mental faculty of discovering, expressing, or appreciating ludicrous or absurdly incongruous elements in ideas, situations, happenings or acts"—Noah webster, 'Toasters' Hand book', pp. VI.

" The only source of the true Rediculous (as it appears to me) is affectations. But though it arises from one spring only, when we consider the infinite streams into which this one branches, We shall presently cease to admire at the copious field it affords to an observer. Now, affectation proceeds from one of these two causes, vanity or hypocrisy: for as vanity puts us on affecting false characters, in order to purchase applause; so hypocrisy sets us on an endeavour to avoid censure, by concealing our vices under an appearance of their opposite virtues.. Great vices are the proper objects of our detestations, smaller faults, of our pity; but affectation appears to me the only true source of the Ridiculous."—preface to 'Joseph Andews', Fielding.

16. "Laughter naturally result's only when, consciousness is unawarers transferred from great things to small, only when there is what we call a descending incongruity, when, however, the final is on larger scale the initial event, the balance of income and expenditure on the wrong side and there is a shortage of energy to meet the occasion. In

गर्व अथवा उत्कर्ष का द्योतक:—सत्रहवीं शताब्दी से पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान हास्य की ओर बहुत झुका था। इसी शताब्दी में असंगति के सिद्धांत के समानान्तर ही हाब्स् ने 'अनायास उत्कर्ष' का आविष्कार किया। इसके अनुसार हास्य का कारण हमारा वह उत्कर्ष व्यंजक उल्लास होता है जो पूर्व की दुर्बलताओं की समकक्षता में अनायास उत्पन्न हो जाता है।[17]

डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित जी ने इसका विरोध इस आधार पर किया है कि 'उत्कर्ष व्यंजक उल्लास गर्व का सूचक है तथा गर्वीले मनुष्य कभी अपनी कमजोरियों पर हँसते नहीं।' (देखिए 'हास्य के सिद्धांत') इसमें सन्देह नहीं कि उत्कर्ष व्यंजक उल्लास गर्व का सूचक है परन्तु साथ ही पिछली दुर्बलताओं का संस्मरण उसका परिहार भी करता है। हमें गर्व होता अवश्य है परन्तु इस भावना का योग रहता है कि हममें कुछ सुधार हुआ है। इस विचार की उपस्थिति में मनुष्य क्या इतना दम्भी हो सकता है जो अपनी पुरानी दुर्बलताओं पर हँस भी न सके ? इसमें सन्देह है। यदि हम इस प्रकार के कुत्सित गर्व की उत्पत्ति मान भी लें तो वह कदाचित् अपवाद रूप में ही मिलेगी। हम नित्य अपने सुधार पर गर्व करते हैं; और गर्व से हँसते हैं। परन्तु इस तर्क का यह आशय कदापि नहीं कि हाब्स का यह सिद्धांत पूर्णत: सत्य है। ऐसा उल्लास हास्योत्पत्ति का एक कारण हो सकता है, परन्तु प्रत्येक अवसर पर नहीं।

लूडोवीसी (Ludovici) ने भी हास्य को गर्व से उद्भूत माना है: परन्तु उनके सिद्धांत का गर्व सामान्य अर्थ से पृथक है। किसी विशेष परि-

---

this case ascending incongruity, there is no laughter and the emotion we call wonder results 'Laughter."—Spencer.

इस अधोमुख असंगति का उदाहरण बर्गसन ने इस प्रकार दिया है—

" A visitor rushing into the drawing room knocks against a lady who upsets her tea cup over an old gentleman who backs into a glass window, which falls on a constable's head who sets the whole police force agog." —Bergson , 'Leirere.'

17 "The passion of laughter is nothing else but sudden glory arising from the sudden conception of some eminency in ourselves by comparison with the infirmity of others or with our own formerly........."—Hobbes, Toasters' Handbook. pp. viii

स्थिति में अपने को किसी दूसरे की अपेक्षा भली प्रकार खपा हुआ (Better adapted) पा कर हम गर्व करते हैं और हंसते हैं। कुछ लोग इसके विपरीत अपने पतन पर हॅसते देखे गए हैं। लूडोवीसी ने इसे उनकी मक्कारी बताया है। अपनी हँसी से वे औरों को भ्रम में डालना चाहते हैं। अपने तर्क के समर्थन में लूडोवीसी ने लिखा है कि अनेक पशु अपने को परिस्थिति के अनुकूल पाकर दूसरे पशुओं को दाँत दिखाते हैं। इसी दांत के प्रदर्शन का विकास वे हास्य मानते हैं। सिड्नी स्मिथ ने इसमें इतना और सुधार किया है कि हम किसी दूसरे के, जो पहिले से परिस्थितियों के अनुकूल रहता है, पतन पर हँसते हैं। हम बच्चों के गिरने पर नहीं हँसते क्योंकि हम उन्हें पहिले से परिस्थितियों के अनुकूल नहीं मानते।

मनरो ने इसका पूर्णत: विरोध किया है। उनके मत से हम अपनी परिस्थितियों की प्रतिकूलता पर दाँत दिखा सकते हैं न कि अनुकूलता पर। बिल्ली कुत्ते के सन्मुख घिघिया कर दाँत दिखाती है न कि चूहे के। जहाँ तक पशु संसार का सम्बन्ध है मनरो की उक्ति बहुत कुछ तर्कसम्मत है।

यंत्रवत जड़ता:—आधुनिक शताब्दी के फ्रांसीसी दार्शनिक बर्गसन ने पूर्व प्रचलित सिद्धांतों का विरोध नहीं किया। उन्होंने उनमें हास्य के कारणों की स्थिति पाई, परन्तु साथ ही यह संशोधन किया कि घटना, शब्दावली और हास्यास्पद पात्र में यान्त्रिकता (Automatism) का अंश होना अनिवार्य है। हास्य के आलम्बन को समाज-प्रिय न होना चाहिए और न हास्यानन्द लेने वालों को उसका ज्ञान। [18]

---

18. "Insociability on the part of the object laughter insensibility on the part of laughter and a certain automation in the situation, in the words, or in the character that appears ludicrous."—Bergson; 'Leirere'.

जी० पी० ने यान्त्रिक क्रिया का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

एक फौजी सिपाही ने अपने यहाँ दावत की, और तश्त में खाना लेकर खुद ही मेहमानों के सामने परसने गया। वैसे ही किसी मसखरे ने जोर से 'एटेंशन' का शब्द कह दिया। बस, यह क़वायद का शब्द सुनते ही वह सिपाही खाने का तश्त मेंहमानों की खोपड़ी पर तड़ाक से फेंक कर एकदम क़वायद करने के ढंग पर खड़ा हो गया, क्योंकि परिस्थिति ने उसे उसकी पुरानी आदत के फंदे में एकाएक ऐसा जकड़ दिया कि वह परवश होकर इसके सिवा और कुछ कर नहीं सकता था। ऐसी परवशता में डाल कर हास्य पैदा करने की युक्ति का नाम Automatism है।—'हास्य रस' से।

इस प्रकार की अल्प सामयिक यंत्रवत जड़ता का उत्तम उदाहरण हमें उस चुटकुले में मिलता है जहाँ एक शिक्षक अपनी कक्षा में एक विद्यार्थी से पूछता है—'समझ गया' ? और विद्यार्थी ने, जो कोने में किसी चूहे को अपने बिल में घुसते देखने में व्यस्त था, उत्तर दिया-'नहीं, अभी दुम बाकी है' । यहाँ 'समझ' शब्द का न सुनना, कक्षा में चूहे पर सतत ध्यान लगाए रखना और प्रश्न का अनर्गल उत्तर देना विद्यार्थी के लिए यंत्रवत जड़ता सदृश है।

विपर्यय तथा आवृत्तिः—डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित जी ने बर्गसन के सिद्धान्त को विपर्यय (Inversion) और आवृत्ति (Repetition) से आधारित माना है। आधुनिक विद्वानों ने 'विपर्यय सिद्धांत ' पर बहुत बल दिया हैं। इसके अनुसार विपरीत परिस्थितियाँ हास्य का मूल कारण हैं। आवृत्ति—सिद्धान्त के अन्तर्गत हम घटना अथवा शब्दावली की आवृत्ति से हास्य की उद्‌भावना मानते हैं । दीक्षित जी के मत से विपर्यय और आवृत्ति ही जीवित को कल अथवा जड़ के समान बना देते हैं। साथ ही उन्होंने यह तर्क भी दिया हैं कि हास्य कभी कभी गम्भीर परिस्थितियों में भी उत्पन्न हो जाता है, अस्तु बर्गसन का सिद्धांत मान्य नहीं। उनका तर्क पूर्णतः सत्य है। साथ ही, केवल घटना अथवा शब्दावली के विपर्यय और आवृत्ति से ही सदैव हास्योत्पत्ति होती हो, ऐसा भी नहीं।

विरोधात्मक चित्रणः—जेम्स फीब्लमेन के अनुसार संसार के यथार्थ और आदर्श रूप के विरोध का चित्रण हमें हँसाता है। ('The world as it is contrasted with the world as it ought to be.') इसके अनुसार किसी भी संस्था के दो रूप होते हैं—एक काल्पनिक आदर्श और दूसरा यथार्थ। यथार्थ रूप की सम्भावित आदर्श से निकटता की हम सराहना कर सकते हैं और साथ ही आदर्श न हो पाने के अभाव की आलोचना भी। यह सराहना करुणा का साधन होती है और आलोचना हास्य की । इस सिद्धांत में जहां असंगति की ध्वनि मिलती है वहीं उसके सिद्धान्त से अन्तर भी। 'असंगति का सिद्धान्त' किसी वस्तु विशेष में असंगति की उपस्थिति मानता है न कि सम्पूर्ण विश्व के ढाँचे में। यहाँ समग्र संसार का यथार्थ रूप एक कल्पित, सम्भावित विश्व से पतित दिखाया गया है। दूसरे, असंगति के सिद्धान्त में आलोचना का कोई विशिष्ट निर्देशन नहीं है। उसके अनुसार हास्य में आलोचना अन्तर्निहित हो सकती है और नहीं भी। परन्तु इस सिद्धान्त में जगत के किसी न किसी अंश की आलोचना अनिवार्य मानी गई है।

प्रत्येक हास्य के मूल में इस प्रकार की आलोचना होती हो ऐसा अनिवार्य नहीं। संसार के किसी आदर्श रूप की कल्पना भी कम भ्रामक नहीं। अतः हम इस सिद्धान्त को अधिक तर्क पूर्ण नहीं कह सकते।

बोरिस् सीडी ने हास्य की उत्पत्ति विरोधाभास से पूर्ण वस्तुओं के सम्मिश्रण में मानी है, जो कि बहुत तर्कसम्मत नहीं।[19]

शोपेन हावर के मत से हास्योत्पत्ति के लिए किसी वस्तु का ऐसा विरोधी रूप, किसी धारणा विशेष में विश्वास दिलाकर, प्रस्तुत कर देना पड़ता है जो वास्तविक नहीं होता। उस वस्तु का सच्चा रूप कुछ और ही होता है। भले ही इस मत का प्रतिपादन करते समय शोपेनहावर का संकेत इधर न रहा हो पर इसमें से विरोधाभास और असंगति की ध्वनि निकलती अवश्य है।

सहानुभूति विषयक क्लेश की अवहेला:—प्रोफेसर विलियम मेकडाउगल के मत से हम अपने अथवा दूसरे के दुर्भाग्य से जागृत सहानुभूति अथवा शोक को हास्य में परिणत करते रहते हैं। उदाहरण के लिए वे कहते हैं कि गुदगुदी भी एक प्रकार का व्यक्तिगत कष्ट है किन्तु उससे जागृत क्लेश की अवहेलना कर हम उल्टे हँसते हैं। किसी ऐसे अनिष्ट से, जिस पर हम रोना व्यर्थ समझते हैं, हँसी का उद्रेक होता है। हम जानते हैं कि यदि हम हँसते नहीं तों यही अनिष्ट अथवा असंगति हमारे लिए कष्टप्रद सिद्ध होगी।[20]

इस सिद्धान्त को हम पूर्ण तो नहीं कह सकते पर इतना निश्चित है कि इसकी पृष्ठभूमि में अनेक रोमान्सवादी आँग्ल कवियों के भाव कार्य करते हैं।इस मत की पोषक शेली और बायरन की पंक्तियाँ विख्यात हैं।[21]

---

19. "The significant and the insignificant, the noble and the ignoble, the grave and the gay, the heroic and the grotesque, the unusual and the usual, the superior and the inferior, when juxtaposed, raise laughter."—Boris Sidis, 'The Psychology of Laughter'.

20. "Some maladjustment, something inappropriate, which would displease us if we did not laugh at it"—'Argument of Laughter', pp. 144.

21. "And our sincerest laughter with some pain is fraught."—Shelley.

"If I laugh,' ts that I may not weep."—Byron.

अतिशय शक्ति का उद्रेक:—आज युग साहित्य का अध्ययन मनोविज्ञान का आश्रय लेकर करता है और इस दृष्टि से हास्य की व्याख्या करने के लिए वह शरीर विज्ञान का भी सहारा लेता है। हमारे मनोवैज्ञानिक संघर्ष किस प्रकार शरीर द्वारा हास्य का विस्फोट कराते हैं इसके विवरण में हास्य का मूल कारण ढूंढ़ा गया है। इस दिशा के अन्वेषण में लगभग सभी शरीर-विज्ञान-वेत्ता एकमत हैं। इनके विचारों से अतिशय शक्ति का उद्रेक हास्य का मूल कारण है।[22]

स्वातन्त्र्य की अनुभूति:—मनोवैज्ञानिक आधार पर ही स्वातन्त्र्य की अनुभूति (Sense of liberation) की चर्चा की गई है। इसके अनुसार किसी कारण से जब हमारा मस्तिष्क थोड़े समय के लिए सभी प्रतिबन्धों को भूल जाता है तब हम हँस पड़ते हैं। हास्य की अवधि में हमें किसी भी प्रकार की चिंता नहीं रहती। ऐसे क्षणों की अवस्था किन कारणों से आती है इसका विश्लेषण उचित रूप से नहीं किया गया है। हमारे मस्तिष्क में स्वातन्त्र्य के भाव का उद्रेक क्यों और कैसे होता है इसका विवेचन ही हास्य के कारण का वास्तविक अनुसन्धान होगा, अन्यथा यह सिद्धान्त भ्रामक ही बन गया है। बहुत विद्वान इसमें समाज, धर्म अथवा सभ्यता के वहिष्कार द्वारा स्वातन्त्र्य की कल्पना कर बैठे हैं। जी० पी० ने तो इसी आधार पर इसे 'अररर कबीर' और 'भँड़ैती' कह कर हेय सिद्ध कर दिया है। *

अतिशय शक्ति के उद्रेक और स्वातंत्र्य की अनुभूति के सिद्धान्तों का हास्य के अध्ययन में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। आगे के सभी सिद्धान्त प्राय: इन्हीं से प्रेरणा पाकर रचे गए हैं और इनका प्रभुत्व सभी अन्वेषणों में स्वीकार किया गया।

---

22. एक शरीर-विज्ञान-वेक्ता का कथन—

"The smile begins within the behaviour of feeding instinct..... but this is too businesslike to elaborate it .... It is within the behaviour of love instinct that this elaboration is carried out .... and the smile is one of the first embroderies. But as the impulse of love gathers energy and as experience grows, the opportunities of interruption increases at the same time when the behaviour containing love as an element is suddenly removed or weakened, some of this energy becomes surplus and escapes in laughs."—हास्य के सिद्धान्त

* देखिए—'हास्य रस'

संघर्ष से मुक्ति—पेनजन (A. Penjon) द्वारा आविष्कृत सिद्धांत का क्लाइन (L. W. Kline) ने विकास किया। इसके आधार पर हास्य की उत्पत्ति तब होती है जब अचानक किसी अवरोध से हमें मुक्ति मिल जाती है। उदाहरणार्थ यदि कोई दुर्घटना होते होते रुक जाय तो हम हँस सकते हैं। जीवन के संघर्षी वातावरण से जब हम अल्प समय के लिए मुक्त हो जाते हैं तब हँस पड़ते हैं।[23] क्लाइन का सिद्धान्त बहुत श्लाघ्य नहीं क्योंकि जीवन में विभिन्न अवरोधों से मुक्ति हमें क्यों मिलती है इसका उत्तर जो उन्होंने दिया है वह बहुत कुछ प्राचीन भारतीय विद्वानों की 'विकार' की धारणा के मेल में जान पड़ता है। विकृत वस्तुएँ ही हमारे संघर्षों के बीच मुक्ति का क्षण लाती हैं, ऐसा उन्होंने परोक्ष रूप से स्वीकार किया है।*

त्रिस ने इस मुक्ति को वासनाओं की तुष्टि में माना है और इसी प्रकार का मत मैथुनवादी फ्राइड का भी है, यद्यपि, उन्होंने अपनी विवेचना केवल वैदग्ध तक सीमित रखी है। फ्राइड के अनुसार अधिकांश हास्य वैदग्ध द्वारा हमें दूसरों के प्रति अपनी घृणा का उद्घाटन अथवा अपनी दमित काम वासनाओं को तुष्ट करने का अवसर देता है।

जे० सी० ग्रेगोरी ने भी प्रत्येक हास्य में मुक्ति की स्थिति मानी है। किसी मित्र के मिलाप से उत्पन्न हास्य को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि सामाजिक जीवन एक संघर्ष है और मित्रता उसमें एक मुक्ति का द्वार खोलती है।

इस मत के मूल में फ्राइड की 'वासना-धारणा' कार्य करती जान पड़ती है। इनके मत से हमारे प्रत्येक क्रिया कलाप के पीछे काम लिप्सा कार्य करती रहती है। समाज की ओर से इस दिशा में प्रतिबन्धों की वृद्धि और दृढ़ता के कारण हमारी यह वासना एक अव्यवस्था उत्पन्न कर देती है: अस्तु वासनाओं की तुष्टि में शान्ति और आनन्द का प्रसार मिल सकता है। समाज के बन्धनों से दमित हमारी वासना जब एक पल के लिए निरंकुश हो उठती है तब हम सुख का अनुभव करते हैं। इसी मत के पोषण में हास्य को भी फ्राइड काम से ही प्रेरित मान बैठे। हास्य सदैव वासना से ही अंकुरित होता हो, यह सत्य नहीं।

---

23. होल्ट (Edwin B. Holt), ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि हास्य की उत्पत्ति में—'letting the cat out of the bag' की क्रिया कार्य करती है।

* देखिए धनन्जय का उल्लेख पृष्ठ ५-६ पर।

अन्तर्द्वन्द—ग्रीग (J.Y.T. Greig) ने फ्राइड के सिद्धान्त का विकास करने का प्रयत्न किया। ग्रीग के अनुसार जब हमारा प्रेम व्यापार (Love behaviour) किसी अवरोध से रुंध जाता है, और यह कंटक सशीघ्र विलुप्त भी हो जाता है, तब हम हंसते हैं। यही अवरोध लज्जा और शालीनता सिखाते हैं। एक पल के लिए इनका परिहार हमें हँसा देता है। ग्रीग का सिद्धान्त फ्राइड से पृथक नहीं कहा जा सकता, परन्तु, यह है बड़े महत्त्व का, क्योंकि इसके विश्लेषण ने हमारे मस्तिष्क में एक संघर्ष की ओर संकेत किया। वासना सम्बन्धी विचारों का व्यवधानों से द्वन्द्व और क्षण मात्र में इनका लोप ग्रीग इंगित करना चाहते थे। इसी के आधार पर इसका विकास, भारत के विख्यात दार्शनिक श्री मेनन (V. K. Krishna Menon) ने करके मानसिक अन्तर्द्वन्द के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

मेनन के अनुसार जब विरोधी भावों का द्वन्द हमारे मस्तिष्क में होने लगता है और उनमें से एक विशेष भाव की विजय हो जाती है, तब संघर्ष के लिए एकत्रित शक्ति का कुछ भाग हास्य में परिणत हो जाता है। यहाँ मेनन ने सावधान किया है कि यह शक्ति शारीरिक कदापि नहीं। हास्य के लिए एक प्रकार की भावात्मक शक्ति (Emotional Energy) की आवश्यकता होती है।

मेनन के मत से हम किसी भी वस्तु के रूप पर नहीं हँसते, वरन, विशिष्ट घटनाओं और वातावरण के सम्पर्क में उसे पाकर, उसके प्रति अपनी निजी प्रक्रिया के द्वारा हँसते हैं। असंगति की उपस्थिति रहती है पर उस वस्तु के रूप के अंगीकार की विभिन्न धारणाओं में द्वन्द होता है और हमको हास्य के परिपाक की ओर ले जाता है। अस्तु मेनन का हास्य बहुत कुछ आत्मपरक (Subjective) है न कि स्थूल-वस्तु विषयक (objective)।

मेनन स्वयं भावात्मक शक्ति को पूर्ण रूप से स्पष्ट न कर सके और वास्तव में उसके क्या गुण होते हैं, यह आज भी एक रहस्य है।

निकल, डा० दीक्षित और जी० पी० के दृष्टिकोण—डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने अपकर्ष, विपर्यय, असंगति तथा यान्त्रिक क्रिया को हास्य का उपकरण माना, जिनके द्वारा हास्योत्पादन करने के लिए नाटककार पांच रीतियों का प्रयोग करते हैं। यह पाँच रीतियाँ पात्र के शारीरिक गुण (Physical attributes), मानसिक प्रवृत्ति (Character), घटना (Situation), रहन सहन (Manners) और शब्दावली (Words) के माध्यम से अपना कार्य करती हैं। यह वही माध्यम हैं जिनका श्री निकल

ने प्रतिपादन किया था और डा० दीक्षित की व्याख्या पूर्णत: उन्हीं के अनुरूप है। यहाँ इसका संक्षिप्त उल्लेख अभीष्ट होगा।

शरीर की असम्बद्धता, असंगति, यान्त्रिक क्रिया अथवा विकृति से हास्योत्पत्ति हो सकती है। अपकर्ष के अन्तर्गत शारीरिक विकृति और यान्त्रिकता अब बहुत कुछ दया और सहानुभूति की पात्र है; अस्तु इस हास्य को निकृष्ट और हेय माना गया है।

चरित्रों के मिथ्याडम्बर अथवा घमण्ड से उद्भूत हास्य को हम मानसिक गुण के अन्तर्गत ले सकते हैं। बर्गसन ने इस मानसिक अपकर्ष की सफलता तभी मानी है जब वह मूर्खता की सीमा को पहुंच जाता है। उदाहरणार्थ दीक्षित जी ने मिश्र बन्धु के 'उत्तर भारत' में भंग-सेवियों के चरित्र को लिया है। मानसिक असम्बद्धता प्राय: आन्तरिक अथवा वाह्य संघर्षों द्वारा प्रकट होती है। नाटकों में वाह्य संघर्ष (outer conflict) का बहुत प्रयोग मिलता है। जी० पी० की प्रिय शैली मूर्खों के साथ में कुशल और मसखरे नौकरों का आयोजन करती है। इनमें मानसिक अपकर्ष दो पात्रों के चरित्रों द्वारा प्रतिबिम्बित होता है। तकिया कलाम आदि मानसिक यान्त्रिक क्रिया के उदाहरण हैं।

घटनाओं के विपर्यय, आवृत्ति, असम्बद्धता और अपकर्ष से हास्योत्पादन की एक प्रचलित रीति है। इसका प्रयोग बहुत कुशल नहीं कहा जा सकता। अधिकांश नाटकों में इसका प्रयोग उन्हें प्रहसन मात्र बना देता है। जी० पी० के अनेक प्रहसन इस प्रकार के हैं।

रहन-सहन के विलक्षण रूप प्राय: हमें हँसा देते हैं। इनमें से बहुत ऐसे भी होते हैं जिनमे हास्योत्पत्ति के मूल में हमारी विभिन्न रीति-रिवाजों की अनभिज्ञता कार्य करती है।

कतिपय शब्दों के प्रयोग से ही हँसी आ जाती है। ऐसी शब्दावली में कुछ न कुछ असंगति विद्यमान रहती है। एक दूसरे के अर्थ को न समझने वाले दो पात्रों का वार्त्तालाप इसी के अन्तर्गत आता है। शब्दावली के प्रयोग का विकसित रूप वैदग्ध होता है, जिसका हम 'हास्य के प्रकार' में विवेचन करेंगे।

जी० पी० ने हास्य को 'आशा और अवसर की प्रतिकूलता' से उद्भूत माना है।* हम आशा कुछ करते हों, अवसर कुछ हो तथा कार्य कलाप कुछ

---

* देखिए 'हास्य रस'।

विलक्षण ही हो जावें तो हँसी आ जाती है। परन्तु व्यावहारिक जीवन में यह भी सत्य नहीं। कल्पना करिए कि अनेक वर्षों के बाद हमारा कोई घनिष्ट सम्बन्धी आने वाला है। हमको उसके आने का समय पूर्व-विदित है। हम आशा करते हैं कि वह आ रहा होगा और उस समय के चन्द क्षणों पहिले उसका स्वागत करने को उत्सुक हो जाते हैं। ठीक समय पर वह आता है, और कुछ दूर से ही मुस्कराता हुआ आता है; उसे देख कर हम भी हँसने लगते हैं और आह्लाद पूर्वक भेंटते हैं। यहाँ हास्योत्पत्ति हुई अवश्य, परन्तु क्या यहाँ किसी प्रकार की विकृति अथवा आशा और अवसर की प्रतिकूलता है? निसन्देह कोई नहीं।

भारतीय और पाश्चात्य विचारों में विरोध :

दीक्षित जी ने दशरूपक आदि की परिभाषा और विदेशी सिद्धान्तो में एक साम्य स्थापित किया है। आज के मनोवैज्ञानिक अन्वेषणों के अनुसार आत्म-स्वातंत्र्य अथवा विश्रान्ति की प्रवृत्ति को भी स्वीकार किया है। आपके अनुसार उपर्युक्त पाँच रीतियाँ किसी न किसी रूप में विदेशी सिद्धान्तों के अन्तर्गत आ जाती हैं और साथ ही ध्यान देने से विदूषक की कल्पना में यह सभी सिद्धान्त कार्य करते ज्ञात होते हैं। यों तो खींच तान कर हम हास्योत्पत्ति के समस्त कारणों को विदूषकों की पुरातन कल्पना के अन्तर्गत समेट सकते हैं : परन्तु यह कह देना कि विकार पर आधारित हास्य के सिद्धान्तों की इतनी व्यापक कल्पना प्राचीन शास्त्रियों के मस्तिष्क में रही होगी, निराधार है। और फिर हास्य की उत्पत्ति में विकार का तत्त्व अवश्य सन्निहित हो यह आवश्यक नहीं।

आज अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और विश्व बन्धुत्व की पुकारों के बीच हास्य का स्वरूप भी परिवर्तित हो रहा है। अंग्रेजी के विद्वान यहाँ तक बढ़ चुके हैं कि वे जिस हास्य में सहानुभूति न हो उसे अहितकर मानते हैं। करुणार्द्र हृदय का योग श्रेष्ठ हास्य के लिए वे अनिवार्य मानते हैं। भारत के प्राचीन संस्कृत-काव्य-शास्त्री और रीति कालीन आचार्य करुणा को हास्य का शत्रु मानते रहे हैं। विदेशी सिद्धान्तों का यहाँ हमारे विचारों से घोर विरोध है। पाश्चात्य विद्वान विकार और अनिष्ट में केवल हास (Laughter) की उत्पत्ति मानते हैं जो असभ्यों की वस्तु है। किसी के गिरने से उसका शरीर विकृत हो जाता है और हम यदि हँसने लगते हैं, तो यह अमानुषिक है। भारतीय विचारों से करुणा और दया आदि किसी भी अन्य भाव की जागृति से हास्य का लोप हो जाता है और दूसरे रसों का

प्रभाव प्रबल हो जाता है। हास्य रस तभी तक फलित होता है जब तक सहानुभूति आदि अन्य भाव दबे रहते हैं। इसी आधार पर करुण और हास्य का सम्मिश्रण असम्भव कहा गया है। विदेशी साहित्यकार दोनों की अभिव्यंजना साथ-साथ मानते हैं। उदाहरण के लिए वे शेक्सपियर के 'मैकबेथ' को लेते हैं। इसमें 'पोर्टर' का दृश्य हास्य से ओतप्रोत है जब कि समस्त रचना करुणा से परिपूर्ण। दोनों का सम्मिश्रण सराहनीय है। उनका तर्क है कि हास्य उच्च कोटि का तभी होता है जब वह अश्रुओं की करुण सीमा को स्पर्श कर लेता है। वर्तमान धारणायें बहुत कुछ विदेशी विचारों से सहमत हैं और हास्य के लिए करुणा का वहिष्कार आज उचित नहीं माना जाता। आज का श्रेष्ठ हास्य वही है जो करुण है, दयार्द्र है, सहिष्णु है और कोमल अनुभूतियों का पोषक है।[24]

---

24. वैष्णव आचार्य, संस्कृत के पारंगत और रीतिकालीन शास्त्रियों ने एकमत होकर हास्य रस के मित्र, वीभत्स, मधुर और वत्सल तथा शत्रु करुण तथा भयानक रस माने हैं। इस प्रसंग में कविवर देव के ये दोहे दृष्टव्य होंगे—

"रिपु वीभत्स सिंगार को, अरु भय रसु रिपु वीर।
अद्भुत रिपु रौद्रहि कहत, करुन हास्य रिपु धीर॥
होत हास्य श्रंगार ते, करुन रौद्र ते जानु।
वीर जनित अद्भुत कहौं, वीभत्स ते भयानु॥"

इसके विरोध में आंग्ल विद्वानों के विचार देखिए—

"The fact is that tears and laughter may be in close proximity. It is but a step from one to the other. The motor centres engaged when in the full swing of one mode of action may readily pass to the other and partially similar action."—Sully.—('हास्य के सिद्धान्त')

"People always connect humour with laughter. In reality it is only an accidental and physical concomitant... Laughter is the mere beginning of humour, both in time and in significance. The end, the final reach, is nearer to tears."—Leacock, 'Humour, Its Theory and Technique,' pp. 7.

साधारण शैली में सीमेन (Owen Seaman) ने इसे अपना कर अपूर्व सफलता पाई है, इसकी चर्चा करते हुए लीकाक् ने यह भी लिखा है—

"Sympathy is essential for humour".

वास्तविकता; विभिन्न उपकरणों का विलक्षण समन्वय :

उपर्युक्त अनेक सिद्धान्तों में हास्य के उद्रेक के अवसर छिपे अवश्य हैं। परन्तु, यह भी माना हुआ सत्य है कि वे सदा हास्योद्रेक करने में सफल नहीं होते, और न सदैव हास्य की उत्पत्ति केवल इन्ही कारणों से होती है।

हास्य काव्य की भाँति अनादि और अनन्त है। उसे परिभाषाओं और सिद्धान्तों के बन्धनों में सीमित करना असम्भव है।

वास्तव में हास्य एक विशेष उत्सुकता का परिणाम होता है जो आह्लाद का सूचन करता है। इसके लिए विकार अथवा अन्य किसी भी नियम की अपेक्षा नहीं। इसके प्रस्फुटन के लिए परिस्थिति, देश, काल, समाज आदि का विलक्षण योग उत्तरदायी है। हास्य के परिपाक का वास्तविक कारण इस संयोग में निहित रहता है जो विभिन्न उपकरणों को असाधारण रूप से एकत्रित और समन्वित करने से अनायास उसकी सृष्टि करता है।

यहीं तक नहीं, विख्यात दार्शनिक ड्राइडेन ने हास्य और करुणा के वाहक दुःखान्त के योग के आविष्कार में राष्ट्र का गर्व माना है—

"A continued gravity keeps the mind too much bent; we must refresh it sometimes as we wait in a journey. It has the same effect upon us which our Musick has betwixt the acts, which we find a relief to us from the beat Plots and language of the stage if the discourse has been long. I must, therefore, have stronger argument ere I am convinced that compassion and mirth in the same subject destroy each other, and in the mean time cannot but conclude to the Honour of our nation that we have invented, increased and perfected a more pleasant way of writing for the stage than was ever known to the Ancients or moderns of any nation, which is Tragedy-Comedy."—Dryden;—(हास्य के सिद्धान्त)

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा हास्य, करुण का शत्रु न मान कर बहुत कुछ उसके संचारी रूप में कार्य करता देखा गया है। इसी प्रकार वे करुण को हास्य का पोषक मानते हैं। दोनों भाव एक साथ आने पर एक दूसरे की विरोधी भावनाओं के प्रदर्शन से दोनों रसों का महत्त्व और भी बढ़ा देते हैं। जिस प्रकार जीवन में दोनों का सम्मिश्रण उनकी अनुभूति की ओर हमें और तीव्रता से चेतनशील बना देता है, उसी प्रकार साहित्य में। इस प्रसंग में "मैकबेथ' के 'पोर्टर' दृश्य पर निकल (A. Nicoll) का मत दृष्टव्य है—

मनरो की अनुपयुक्त (Inappropriate) की व्याख्या इस सत्य के बहुत निकट पहुंच गई है। अनेक सिद्धान्तों के अध्ययन के पश्चात् मनरो ने सभी में एक अनुपयुक्ति की स्थिति पाई। यहाँ 'विलक्षण योग' का प्रयोग एक विशेष अर्थ में किया गया है। असंगति अथवा अनुपयुक्ति से हास्याधार के प्रति एक हीन भावना की ध्वनि निकलती है परन्तु वैलक्षण्य आदर का पात्र भी हो सकता है। साथ ही यह वैलक्षण्य आवश्यक नहीं कि वाह्य रूप से जो हास्य का कारण प्रतीत होता है उसी में सन्निहित हो। उस परिस्थिति विशेष के वातावरण तथा अन्य वास्तविक गुप्त कारण भी इसके उत्तरदायी हो सकते हैं। इन परोक्ष कारणों में हँसने वाले समाज और सामयिक प्रसंग का विशेष महत्त्व है। हास्य कृत्रिम रूप से जितना किसी वाह्य आधार द्वारा प्रेरित होता है वास्तव में उतना ही हँसने वाले के लिए आत्मपरक भी।

"It (i.e. Comic) may be employed as a contrast to the tragic. In this case it very seldom raises a laugh. The porter scene in Macbeth is comic, but it is a grim sort of comedy that serves to make more terrible the events taking place with in the castle"

भारतीय दृष्टिकोण का किसी सीमा तक फ्रांसीसी बर्गसन ने समर्थन किया—

"Laughter is above all a corrective, it must make a painful impression on the person against whom it is directed. By laughter society avenges itself for the liberties taken with it. It would fail in its object if it bore the stamp of sympathy or kindness."—Bergson; 'Toasters Handbook,' pp, viii.

किसी अन्य शक्तिशाली भाव की उत्पत्ति का हास्य के लिए प्रोफेसर बेन ने भी निषेध बताया है। देखिए पाद टिप्पणी नं० ११। इस प्रकार के एक आध मत अपवाद स्वरूप मिलते हैं परन्तु अधिकांशत: पाश्चात्य विद्वान् इससे सहमत् नहीं।

इस मत का सबसे प्रशस्त अनुमोदन श्री निकल का मिलता है—

"Humour, we shall find, is often related to melancholy of a peculiar kind; not a fierce melancholy, but a melancholy that arises out of pensive thoughts and a brooding on the ways of mankind."—A. Nicoll; 'The Theory of Drama' pp. 199.

युग की वस्तु—हास्य अपने युग की वस्तु है। उसका प्रस्फुटन बहुत कुछ परिवर्तनशील युग की और अविकसित युग की संस्कृति की समता से उद्भूत असंगति द्वारा भी हो सकता है। विकास का युग हमारे प्राचीनतम पाषाण और गोचारण युगों पर अब हृदय खोल कर हँस सकता है।[25] अनेक 'पैरोडी' इसी आधार पर रची गई हैं। हास्य रचनाओं का अधिक समय तक समादृत न रहने का यह एक महत्त्वपूर्ण कारण है। कुछ दिन तक हम एक वस्तु पर हँस सकते हैं, परन्तु समय की गति के साथ बहुत सम्भव है वह वस्तु हास्योत्पादक न रह सके।

नवीनता—हास्य में नवीनता का योग सोने में सुहागे का कार्य करता है। जिस प्रकार प्रयोग की लीक में पड़ी प्रयोजनवती लक्षणा समय के भार से रूढ़ि का रूप लेकर अपना चमत्कार और कौशल खो देती है, उसी प्रकार घिसे हास्योत्पादक प्रयोग भी। विशेषकर वैदग्ध के लिए नवीनता और मौलिकता आवश्यक है।

देश—इसी प्रकार हास्य के प्रस्फुटन में एक देश के वातावरण का पर्याप्त हाथ रहता है। प्रत्येक देश में एक हास्य आदर नहीं पा सकता। स्काट लैन्ड के कठोर जलवायु और असहिष्णु प्रकृति ने वहाँ के निवासियों को इतना निर्मम, पाशविक, बर्बर तथा अनुदार बना दिया है कि वहाँ हास्य जितना उद्दण्ड होता है, उतना ही उत्तम माना जाता है। आंग्ल विद्वानों ने स्काटलैन्ड के अनेक हास्यों की निन्दा की है।[26]

---

25. "American sense of humour has been explained as an outgrowth from the vast field of incongruities offered by a developing civilization."—Mary katherine Reely; 'Toasters' Handbook' pp. ix.

26. स्काटलैण्ड के कतिपय उच्च श्रेणी के हास्य हम भारतवासियों की दृष्टि से निकृष्टतम हैं। मृत्यु-दण्ड पाने वाले के प्रति उपहास कितना कठोर रहा होगा इसकी हम एक उदाहरण से कल्पना कर सकते हैं। वास्तव में वहाँ के वातावरण जलवायु और देश की संस्कृति का ही यह प्रभाव है—

"Brutal and pitiless is a remark attributed to Lord Kaines He presided over the trial of one Mathew Hay for murder, at Ayr -with whom he had formerly played chess. When the jury returned the verdict of 'guilty', Kaines said, "That's checkmate for you, Mathew." Leacock; 'Humour, Its Theory and Technique,' pp. 167.

संस्कृति—किसी हास्य की सफलता के लिए एक विशिष्ट समाज की आवश्यकता होती है। युग युग के सांस्कृतिक और नैतिक संस्कार प्रत्येक समाज में हास्य के अवसरों के प्रति एक रुचि विशेष का निर्माण कर देते हैं।[27] एक ग्रामीण जिस हास्य से आनन्द ले सकता है, सम्भव है एक नागरिक उसमें अश्लीलता की छाप पाकर उसे वीभत्स समझे। आयरलैण्ड के निवासी मृत्यु और निर्धनता में भी हास्य ढूंढ़ लेते हैं। रोमन समुदाय रथों को उनके सवारों सहित नष्ट-भ्रष्ट होते देख कर हँस सकता था। अंग्रेज किसी विदूषक (joker) के गिर कर चोट खाने पर हँसते थे। हम भारत में अनेक पशु-पक्षियों के युद्धों से आनन्द लेते थे। और, आज भी कहीं-कहीं इस प्रकार के विनोद अवशिष्ट हैं। इन सब उदाहरणों से रुचि की भिन्नता स्पष्ट है और साथ ही यह भी दृष्टव्य है कि समस्त संसार के प्राचीनतम हास्य वास्तविक अनिष्ट के इच्छुक थे, जिसे सभ्यता का विकास ही दूर कर सका। मनुष्य का स्वभाव ही हास्य को अनिष्ट में ढूँढ़ता है। बालक विशेष रूप से ऐसे हास्य में प्रवेश कर जाते हैं।*

समाजः—कभी कभी एक समाज दूसरे समाज पर हँसते देखा गया है। इसका प्रमुख उदाहरण हम अपने देश में विदूषकों की परम्परा में पाते हैं। क्लीवों और भाँड़ों का एक समाज ही भिन्न सा बन गया है, जिसकी प्रत्येक भंगिमा–मुद्रा एवं गतिविधि से शेष सामाजिक हास्यानन्द लेते हैं।

परिस्थितिः—हँसने वाले समाज पर विचार करते समय हमें यह न भूलना चाहिए कि हास्यानन्द लेने वाले समाज के प्राणियों की परिस्थिति विशेष का हास्य के मूल्यांकन में अपना हाथ रहता है। पुनर्जागृति काल (Renaissance) में कटु व्यंग ही इटली में हास्य की एक परम्परा रूप में प्रतिष्ठित हो गया था। वहाँ की अव्यवस्था व्यंग में किसी भी प्रकार का बचाव-दुराव भूल गई थी। इसी प्रकार किसी शोक में डूबे समाज पर हास्य का उल्टा ही प्रभाव पड़ सकता है।

व्यक्तिवादीः—हास्य आत्मपरक होने के कारण व्यक्तिवादी होता है। प्रत्येक व्यक्ति की हास्य के प्रति अपनी निजी और पृथक रुचि और शक्ति

---

27. हँसने वाले समाज पर ही अधिक ध्यान रख कर रीली ने हास्य की परिभाषा करते समय उच्चतर मनुष्यों की कल्पना की थी—

"A joke would be that at which the best people laugh." 'Toaster's Handbook' pp. ix.

* उदाहरण के लिए देखिए 'Jack the Giant-killer'

होती है । इसी कारण कभी-कभी किसी का हास्य किसी की खीज बन जाता है । व्यक्ति विशेष की चर्चा करते ही उसकी आयु का ध्यान आ जाता है । बच्चे जिस बात से हँस सकते हैं सम्भव है वृद्ध न हँसें । युवक-वर्ग का हास्य अधिकतर श्रृंगार के आश्रित रहता है, जो प्रायः वृद्धों की दृष्टि से ग्लानि का विषय है ।[28]

हास्य का क्षेत्र :

हास्य का क्षेत्र हृदय न मान कर मस्तिष्क बताया गया है । हास्य की उत्पत्ति विचारों के संघर्ष और चिन्तन से कही गई है : भावना और भावुकता से नहीं । दैनिक जीवन में हम इसे सत्य नहीं मान सकते । अनेक बार बिना किसी विशेष चिन्तन के हमको स्वाभाविक रूप से हँसी आ जाती है और प्रायः यह अवसर श्रृंगार की बेला में उपलब्ध होते हैं । कभी किसी की चितवन मात्र देखकर हम हँस देते हैं । ऐसी हँसी हृदय पर एक सिहरन से उद्भूत है, इसका मस्तिष्क से सम्बन्ध जोड़ना ठीक नहीं । यह कह देना कि हास्य में हृदय का योग नहीं होता, उसके स्वरूप पर कुठाराघात होगा । उसमें हृदय पक्ष की कितनी आवश्यकता है इस पर हम आगे विचार करेंगे । यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त है कि हास्य-सृष्टा जीवन की विभिन्न समस्याओं में एक विचारक की भाँति प्रवेश करता है जब कि करुण-रस का संचार भावनाओं (Impulses) पर अधिक अवलम्बित रहता है ।[29]

---

28. बच्चे बात-बात पर हँसते हैं जबकि वयस्क नहीं । तरुण, रस और श्रृंगार मी मादक छाया में ही आनन्द खोजते हैं, जबकि वृद्धों पर हास्य बड़ी कठिनता और शक्ति के व्यय से प्रभाव डाल पाता है । इस प्रसंग में मार्टिन (Abe Martin) का कथन उल्लेखनीय है—

"Fun is like life insurance, th' older you git th' more it costs."

हमारी ग्रामीण लोकोक्तियाँ साहित्यिक गुणों से भले ही हीन घोषित की जायें परन्तु उनमें जीवन के सत्य और अनुभव का अखण्ड प्रसार मिलता है । आयु सम्बन्धी प्रसंग में यह पंक्तियां वास्तव में अद्वित्तीय हैं —

"जहाँ लरिकन कै संग, तहाँ घड़ी-घड़ी रंग ।
जहाँ ज्वानन कै संग, तहाँ बाजै मृदंग ।
जहाँ बुढ़वन कै संग, तहाँ घर कै बिटंग ।।"

29. "Life is a comedy to those who think, a tragedy, to those who feel."–Horace Walpole, 'Toasters' Handbook.'

भारतीय उपेक्षा :

हास्य हमारे साहित्यिक कर्णधारों को विशेष आकृष्ट न कर सका इसके कारण उसके स्वरूप में अन्तर्निहित हैं। हास्य के आकार और विकास पर दृष्टिपात करने से हमें यह पता सहज ही चल सकता है कि हास्य के ही गुण और विशेषताओं के कारण भारतीय लेखकों और विचारकों की उपेक्षा उसे प्राप्त हुई।

हास्य सदैव भारत के मानसिक धरातल से नीचे की वस्तु समझा जाता था। जीवन में करुणा और दार्शनिकता हम में कूट-कूट कर भरी थी।* आध्यात्मिक चिन्तन यहाँ की अपनी विशेषता है। हो सकता है यह यहाँ के धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतक संघर्षों से उत्पन्न रही हो। अत: यहाँ का वातावरण कभी हास्य को विदूषकों के विकार से आगे नहीं बढ़ने देता था। इसके फूलने फलने की भूमि बहुत कुछ मुसलमानों के आगमन से बनी। उनके राजदरबारों तक में इसने अपना स्थान बना लिया था। अकबर के नव रत्नों में से प्रमुख बीरबल इसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। मुसलमानों की जन्मजात प्रवृत्ति कुछ आमोद प्रमोद की ओर अधिक खिंची रहती है। वैभव और विलास के भोग की कामना उनकी कभी तृप्त नहीं होती। तभी तो हमें औरंगजेब की सेना के साथ नर्त्तकियों और वेश्याओं के उल्लेख मिलते हैं। हास्य का आमोद प्रमोद और विलास से घना सम्बन्ध है, जो कि भारत के जीवन का प्राथमिक लक्ष्य कभी न रहे और इसी कारण हास्य हमारे प्राचीन विद्वानों की दृष्टि में उतना महत्त्व न प्राप्त कर सका जितना अन्य संस्कृतियों में उसे प्राप्त हुआ।

हम पहिले ही कह चुके हैं कि हास्य का विचारों से अधिक सम्बन्ध है न कि भावों से। भावों का गाम्भीर्य बड़ी तीव्रता से सामाजिक के हृदय में प्रविष्ट हो अपनी स्थायी छाप बना देता है: परन्तु विचारों का संघर्ष मस्तिष्क पर उतनी सरलता से प्रभाव नहीं डाल सकता। फिर हास्य का अतिरेक कभी दीर्घ कालीन नहीं होता। चपला की क्षणिक चौंध की भाँति उसका उत्कर्ष एक बारगी चमक कर शांत हो जाता है। इसी कारण हास्य विनोद कभी अधिक समय तक जीवित नहीं रहते। जो हास्य वर्षों की क्रान्ति के बाद भी सजीव बने रहते हैं उनमें करुणा, आश्चर्य अथवा ग्लानि आदि किसी न किसी अन्य भाव की पृष्ठ-भूमि अवश्य होती है।

---

* "Indians are born philosophers."

हास्य केवल उपदेशक की भाँति सद्‌गुणों की व्याख्या नहीं करता, और न हास्य का नायक, प्राचीन महाकाव्यों की भाँति, धीरोदात्त गुणों से पूर्ण होता है। हास्य तो किसी हास्यास्पद नायक के अवगुणों का ब्योरा प्रस्तुत कर समाज के सुधार में अपना प्रयोजन पाता है। और, अधिकतर अनेक चरित्रों के सम्मिश्रण से हास्य की उत्पत्ति होती है, जिसमें हम किसी एक को नायक नहीं कह सकते। फल स्वरूप हमारी श्रद्धा और सद्‌भावनाएं कभी हास्य-नायक के प्रति पूर्ण रूप से नहीं जगतीं और न हम उससे तादात्म्य का भास कर उत्कृष्ट साधारणीकरण की अवस्था में जा पाते हैं। जब किसी विशेष समाज की प्रचलित कुप्रथाओं का आधार लेकर नायक में उन दोषों की अवतारणा की जाती है जो समाज के लगभग सभी सदस्यों में घर कर चुके हैं हम नायक से अनायास तादात्म्य का अनुभव करने लगते हैं। ऐसी अवस्था का हास्य बड़े कौशल से उत्पन्न किया जाता है। इसमें नायक के प्रति जागृत सहानुभूति हास्य को दीर्घ-जीवी बना देती है।

हास्य का महत्त्व :

साहित्य में उपर्युक्त कतिपय सीमाओं और अभावों के कारण हास्य कभी अन्य रसों से हेय और निकृष्ट नहीं कहा जा सकता। इसका जीवन और कला से अटूट सम्बन्ध है। जीवन में इसकी सत्ता को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता और साहित्यिक हास्य ने तो कभी कभी एक देश की प्रगति की दिशा तक मोड़ दी है। जीवन में हास्य किस प्रकार एक शक्ति का कार्य करता हैं इस पर संक्षिप्त रूप से विचार यहाँ अभीष्ट होगा।

स्वास्थ्य वर्द्धक—शरीर-विज्ञान का यह मान्य सत्य है कि हास्य स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है। शरीर और मस्तिष्क दोनों को आनन्द और विराम देने की इससे श्रेष्ठ औषधि का आज तक किसी चिकित्सक ने आविष्कार नहीं किया। परन्तु यह बहुत कुछ उसका भौतिक रूप है: अस्तु हमारा उसकी कल्याण कारिणी मानसिक शक्ति की दृष्टि से अध्ययन उपयुक्त होगा।

सुधारक; व्यक्तिगत—जीवन के कुत्सित पथों पर भटके राही को सद्‌मार्ग पर लाने का विनोद सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। रूखे उपदेश में एक कठोरता संलग्न रहती है जो हास्य में नहीं। उपदेश पात्र विशेष के हृदय में एक क्षोभ और उपेक्षा अथवा तिरस्कार की भावना से जात प्रतिक्रिया उत्पन्न

कर सकता है पर हास्य में यह सम्भव नहीं। हास्य में विनम्र और लज्जित करने की शक्तिहै।[30]

सुधार; सामाजिक—समाज की एकता को स्थायी रखने का हास्य अद्वितीय साधन है।[31] साथ ही आशंकित कुरीतियों को हास्य पूर्व से ही चेतावनी देता चलता है। जिस प्रकार टीके के प्रयोग से हम अनेक रोगों के प्रकोप से बचते रहते हैं उसी प्रकार हास्य अपने आक्षेपों से सामाजिक दोषों के विपरीत शक्तिशाली प्राचीर बनाता रहता है।[32]

श्रद्धा, आदर अथवा विरोध के द्योतन का साधन—समाज अधिकतर किसी रीति अथवा संस्था के प्रति आदर, सम्मान, घृणा अथवा क्षोभ का प्रदर्शन हास्य के माध्यम से करता है। किसी वस्तु के प्रति अपने भावों को

30. मलग्रेव (Mulgrave), होरेस (Horace), ड्राइडेन और पोप शिष्ट हास्य को सुधार का अनुपम अस्त्र मानते हैं। पोप की यह पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—

"Yes, I am proud : I must be proud to see,
Men not afraid of God, afraid of me :
Safe from the Bar, the Pulpit, and the throne,
Yet touch'd and sham'd by Ridicule alone,"

एर्ल आव् मलग्रेव (Earl of Mulgrave) की पंक्ति भी अनुपम है—
"Men aim rightest when they shoot in jest."

31. "Laughter represents a spontaneous, instinctive or informed device by which societies, backward or advanced, vigorously express their social valuation. The smile and laughter of scorn, ridicule, banter, praise or exaltation—the myriad ingenious forms of laughter—expression—work effectively in maintaining the ascendency of society by the method of quickly, sharply and adroitly attacking disapproved patterns of thought, feeling and behaviour."—Dr. Radha Kamal Mukerjee, 'The Social Stucture of Values,' pp. 166.

32. यही नहीं डा० राधा कमल मुकर्जी ने हास्य को समाज का सचेत, जागरूक वीर सैनिक प्रहरी कहा है—

"Custom, tradition and law may sleep, but laughter is ever vigilant and watchful. Laughter intervenes where even the long hand of law does not reach It is the gay

प्रकट करने में भी एक कौशल की आवश्यकता होती है। किसी निकृष्ट और अमानुषिक माध्यम के उपयोग बिना उक्त क्षोभ के प्रदर्शन का सबसे सरल उपाय हास्य का प्रयोग है।[33]

दाम्पत्य जीवन—हास्य विनोद का सबसे अधिक महत्त्व दाम्पत्य-जीवन में स्वीकार किया गया है। गृहस्थ जीवन के दैनिक संघर्षों के बीच हास्य-विनोद के पुट कभी उसे रूखा और अप्रिय नहीं होने देते। डा० मैथिली शरण गुप्त ने अपने 'साकेत' में राम और सीता तथा लक्ष्मण और उर्मिला के वार्त्तालापों में दाम्पत्य विनोद का बड़ा सजीव चित्रण किया है। इसी प्रकार जार्ज इलियट ओर स्टीवेन्स आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भी विवाहित जीवन के लिए हास्य को अनिवार्य माना है। दाम्पत्य जीवन के हास्य-प्रसंगों के जागरूक चित्रण में हिन्दी उपन्यास-साहित्य में प्रेमचन्द का सानी कोई नहीं।

राजनीति—राजनीति में भी हास्य का अपना विशेष स्थान है। फ्रान्स के विख्यात नाटककार हास्य-लेखक मोलियर ने अपने देश में एक क्रान्ति कर दी थी। उसके हास्य ओर व्यंग्य सम्पूर्ण राष्ट्र के विकास की दिशा मोड़ने

---

constable of society. It anticipates the law made by the court and runs faster than any of its messengers. It is much more quickly operative than custom and law, nipping in the bud social and moral daviations that are not dealt with by the latter unless these develop into a social menance, into a positive illegality or crime"—'The social stucture of Values' pp. 174.

"Conscience and the written laws form the two lines of ramparts againts evil; the ludicrous is the third line of defence; it stops, brands and condemns the little misdeeds which the guards allowed to pass"—A. Michiels

33. "Your race in all its poverty has unquestionably one really effective weapon-laughter. Power, money, persuation, supplication, persecution—these can lift a colossal humbug—push it a little—weaken it a little century by century; but only laughter can blow it to rags and atoms at a blast. Against the assault of laughter nothing can stand. You are always fussing and fighting with your other weapons. Do you ever use that one? No, you leave it lying rusting."—Mark Twain.

में सफल हुए थे। बीरबल के अनेक चुटकुले विख्यात हैं जो अकबर सदृश नीतिज्ञ के विचारों में घोर उथल-पुथल कर सके थे। भारतेन्दु-युग में हास्य ने राष्ट्रवादी विचारों से स्वतन्त्रता-संग्राम की आग भड़काई। इसका विवेचन हम हास्य के हिन्दी साहित्य में प्रयोग के अन्तर्गत करेंगे।

आत्म शुद्धि—अनेक व्यक्ति हास्य में अपनी प्रवृत्ति रमा कर जीवन के अभावों और क्लेशों को भूल जाते हैं। बहुत से अपने प्रति किए गए कुत्सित व्यवहार और कठोर लांछनों को विनोद में टाल जाते हैं। अस्तु जहाँ एक विद्रोह की आशंका होती है, हास्य शांति का अग्रदूत बन कर आता है। परन्तु इस प्रकार हास्य विनोद में अपने हृदय के आवेश को दबा सकना एक ऐसे स्वभाव की अपेक्षा करता है जो सामान्य व्यक्तित्व के सामर्थ्य से बाहर है। इस स्वभाव के उपार्जन में एक बड़ी ही त्याग शील तपस्या और शिक्षा की आवश्यकता होती है। इस स्वभाव को विकसित करने के लिए आत्म-शुद्धि, दया तथा हृदय की कोमलता के साथ ही शालीनता का योग करना पड़ता है। इसके अर्जन में हम साधारण मनुष्यत्व से उठ कर दिव्यता की ओर अग्रसर होते हैं। यह स्वभाव हमारे बौद्धिक विकास का प्रतीक होता है।[34] इन्हीं विचारों के आधार पर कीर्केगार्ड ने विश्वास किया था कि अपनी मूर्खताओं पर हँसने की क्षमता बहुत कुछ उच्च धार्मिक विचारों से आती है। अस्तु हास्य व्यक्तित्व के विकास का एक साधन है।

हास्य का ध्वंसक रूप—सभी वस्तुओं के अच्छे और बुरे पक्ष होते हैं। हम एक स्वर से यह नहीं कह सकते कि हास्य सदैव कल्याणकारी होता है। भारतीय कहावत है—**'रोग की जड़ खाँसी, लड़ाई की जड़ हाँसी'**। इसके प्रयोग से कभी-कभी अत्याचार और दुर्व्यवहार की आग भड़कती देखी गई है।[35] बहुत सम्भव है हास्य की चरम भयानक अवस्था में पहुँचने की क्षमता को ही ध्यान में रख कर प्रलयंकर रुद्र के विनाशकारी अट्टहास की कल्पना की गई हो।

---

34. "It is a familiar experimental fact that a smiling face is judged as more intelligent than one that is serious and is credited with all social virtues and graces."—Gordon Allport; 'Personality' pp. 484

35. "..... Dryden was waylaid and beaten for his supposed share in Mulgrave's Essay on Satire"—N. Furlong 'English Satire' pp. 20.

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी इसमें दिए हैं।

अधिकतर ऐसे अवसर तभी देखने को मिलते हैं जब कठोर व्यंग्य आक्रमण के रूप में लिखा जाता है। उत्तम हास्य कभी वैयक्तिक अथवा सामूहिक अपराधों को लक्ष्य नहीं बनाता : वह केवल दोषों अथवा मूर्खताओं का चित्र उतारता है।[36]

सली (Sully) ने हास्य के कुत्सित प्रयोग से समाज पर आतंक की कल्पना की है।[37] इस प्रसंग में यह हास्य का दोष कभी नहीं कहा जा सकता। यह तो उसके बीभत्स प्रयोग का फल होता है। अस्तु उसके प्रयोग की शैली चाहे उपयुक्त न हो; हास्य सदैव पावन है, पूत है।

जीवन का सम्बल :

कुछ भी हो उपर्युक्त विवेचन के बाद हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि हास्य सदैव उपेक्षा की वस्तु नहीं। हास्य के अनुशीलन और उससे प्राप्त आत्मशुद्धि से विलग रह कर हम किसी प्रकार की बुद्धिमानी का प्रदर्शन नहीं करते। हम हास्य के महत्त्व को जीवन से इतना पृथक रखते आए हैं कि अनेक विद्वानों ने हास्य का आदर करने की हमसे अधिक क्षमता की कल्पना पशुओं में की है।[38]

---

36. "Deeds, and language,
such as men do use,
And persons, such as
comedy would choose,
When she would show
an image of the times,
And sport with human
follies, not with Crimes."-

Ben Jonson; Prologue to 'Every Man in His Humour.'

37. "Society is right, in her irituitive feeling that an unbridled laughter threatens her order and laws."—Sully; 'An Essay on Laughter'

38. "Sense of humour might be richer in some animals."—Leacock, 'Humour Its Theory and Technique.'

यही नहीं पृष्ठ ५ पर उन्होंने हास्य की शिक्षा की एक सम्पूर्ण प्रणाली का लेखा दिया है, जिसके आधार पर हमारी शिक्षा-संस्थाओं में हास्य-कला का अध्ययन अनिवार्य बताया है।

हास्य वास्तव में हमारे अन्तःकरण की एक श्रेष्ठतम अनुभूति है। इसमें मस्तिष्क का उच्चतम विकास और हृदय की एक आनन्ददायिनी सिहरन संचित रहती है।[39] हास्य की व्याख्या जीवन की व्याख्या है। हास्य के तथ्य जीवन-दर्शन के तर्क हैं।[40] यह हमारे जीवन में शक्ति, प्रेरणा, विकास, चेतना और क्रिया-शीलता का श्रोत है, शोभा सुषमा, क्रीड़ा, विलास, प्रेम और शृंगार का आगार है, सत्य का विधायक है।

---

39. वास्तव में ह्यूमर (Humour) शब्द की व्युत्पत्ति से ही उसके अन्दर एक गुदगुदी की तरलता का आभास मिलता है। पहिले इसका प्रयोग पशुओं और पौधों में प्रवाहित एक तरल पदार्थ के लिए होता था। तत्पश्चात् इसका प्रयोग किसी भी प्रकार की तरलता के लिए होने लगा। इसका विकास निरन्तर होता रहा। शेक्सपियर, चाउसर और हाइपोक्रेटीज़ के साहित्य में इसका विभिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है। कुछ समय तक यह मस्तिष्क की एक विशेष अवस्था की ओर संकेत करता रहा। इसके बाद किस प्रकार इसका प्रयोग शिष्ट हास्य के लिए होने लगा यह सन्दिग्ध है। परन्तु इतना निश्चित है कि इसमें एक प्रकार की गुदगुदी और आनन्द के प्रवाह की ओर इंगित है अवश्य।

40. "Teaching humour would not mean teaching people to make fun of things, but teaching people to understand things, Humour, at its heighest, is a part of the interpretation of life."—Leacock; 'Humour Its Theory and Technique,' pp. 5.

२

हास्य के प्रकार

हास्य एक रहस्य :

'हास्य का स्वरूप' के अन्तर्गत हम देख चुके हैं कि हास्य का कोई स्थिर और ठोस रूप नहीं होता। हास्य बहुत कुछ हमारी वैयक्तिक मानसिक स्थिति (Mood) पर अवलम्बित रहता है। कभी कभी हम आनन्दोत्सव के क्षणों में दूषित अपशब्दों का सहर्ष स्वागत करते हैं और कभी क्रोध के आवेश में उत्कृष्ट हास्य को अपशब्दों की श्रेणी में रखते हैं। यह निश्चित करना कि हास्य कहाँ, कब और किन गुणों से युक्त होने पर सफल होगा असम्भव है।स्टीफेन पौटर ने तो यहाँ तक कहा है कि कभी कभी हम हास्य की अनुपस्थिति से हँसते हैं। दो हास्य प्रेमी मित्र मिलते हैं और यदि कुछ समय तक मौन धारण किए रहते हैं, तो वहाँ हम हास्य के अभाव की कल्पना कर हँसने लगते हैं। अस्तु जब हास्य का स्वरूप ही एक रहस्य है तब उसके भेद-उपभेद कहाँ तक स्पष्ट हो सकते हैं, हम नहीं कह सकते।

मान्य कसौटी का अभाव :

साहित्य के किसी भी साधन के भेद-उपभेद करते समय हमें विशेष रूप से सतर्क रहना पड़ता है, क्योंकि सर्व प्रथम उसके वर्गीकरण की एक ऐसी कसौटी ढूँढनी पड़ती है जो अधिक से अधिक सच्ची और सफल ही नहीं वरन् सामान्य तर्क और दर्शन से मान्य भी हो। हास्य के विभिन्न प्रकारों की सीमा निर्धारित करते समय हमें उसके कारण, माध्यम, गुण, प्रयोजन और प्रभाव आदि सभी बातों पर ध्यान रखना चाहिए। इन सभी विशेषताओं को एक में मिला देने से किसी बुद्धि-ग्राह्य कसौटी का निर्माण आज तक नहीं हो सका है। किसी ने एक दृष्टि को महत्त्व दिया है और किसी ने दूसरे आधार को। हास्य के विभिन्न अंगों और उपकरणों का समन्वय कर उसका

करने से पूर्व इस प्रसंग के उपलब्ध विचारों का संक्षिप्त परिचय
ीन होगा ।

ा दृष्टि कोण :

ा हम पहिले कह चुके हैं, हास्य के विश्लेषण के प्रति संस्कृत और
व्य शास्त्रियों की सदा उपेक्षा रही । उनसे इस विषय में कुछ
ज्ञानिक अथवा शास्त्रीय विवेचन-विश्लेषण की आशा करना व्यर्थ
' बुद्धि तो केवल—

"भाई जाको हास है, वहै हास्य रस जानि;
तहँ कुरूप कूदब कहब, कछु विभावते मानि ।"

न धारण कर लेती थी ।

क्ता के अनुभाव :

न भारतीय आचार्यों ने कुछ आगे चरण बढ़ाया भी, उनकी दृष्टि
की शारीरिक चेष्टाओं में उलझ कर रह गई । उनके विवेचनों में
भाव की प्रधानता थी । हास्य के पल्लवन एवं व्याप्ति पर कुछ भी
, रसज्ञ के शारीरिक अनुभावों मात्र में संकुचित व्याख्या बहुत कुछ
अध्ययन प्रस्तुत करती रही ।'दश रूपक' में किसी हास्य के प्रयोग
न्द लेने वाले रसज्ञ की वाह्य मुद्राओं, भंगिमाओं के आधार पर हास्य
जन किया गया है । नेत्रों का विकास, कतिपय दाँतों की झलक,
ने, शिर-संचालन, उद्रेक से अश्रुपात तथा सम्पूर्ण शरीर का कंपन
मत, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित तथा अतिहसित का
श्चित किए गए ।[1] स्मित में कपोलों का ईषत् विकास मात्र होना
समें नेत्र-प्रान्त का अति प्रकाशन और दन्तावली का प्रदर्शन निषिद्ध
ा में मुख और नेत्र के विकास के साथ ही कपोल प्रफुल्लित हो जाते
न्तपंक्ति की थोड़ी झलक मिलती है । विहसित में गम्भीर मधुर
ं का थोड़ा संकोच और मुख-भंगिमा में अरुणता का आभास वांछ-
शिर और स्कन्धों के संकुचन, तिरछी दृष्टि, वंकिम ग्रीवा तथा
ध से नाक का फूलना, शब्द के साथ उपहसित के लक्षण हैं ।

स्मितं इह विकास नयनं, किञ्चित लक्ष्यं द्विजं तु हासितं स्यात्
ुर स्वरं विहसितं, स शिरः कम्पं इदं उपहासितं
हासितं सा स्त्राक्षं, विक्षिप्ताङ्गं भवति अतिहसितं
द्वे हसितं चैषाम् ज्येष्ठे मध्येऽधने क्रमशः ॥"

असमय, अश्रुपूर्ण, स्कन्धों और केशों के तीव्र प्रकंप से युक्त अपहसित है। अप्रिय, कर्णकटु शब्दों का विस्फोट, अश्रुप्रवाह, पसुलियों की हाथों से रोक-थाम अथवा ताली आदि के संयोग से ठट्ठा मारकर हँसना अतिहसित की संज्ञा पाता है।

इन हास्यों की तीन कोटियाँ स्वीकार कर उनका प्रयोग भिन्न पात्रों द्वारा बताया गया है। उत्तम स्मित और हसित, मध्यम विहसित और उप-हसित, तथा अधम पात्र अपहसित और अतिहसित का नाट्य करते हैं। स्मित, विहसित और अपहसित को आत्मस्थ कहा गया है और शेष को परस्थ।

लगभग अन्य सभी संस्कृत और रीतिकालीन आचार्यों ने इस भेद-प्रणाली को मान्यता दी है। इसी के अनुकूल 'साहित्य दर्पण' की भी धारणा है। हाँ, रसगंगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ ने आत्मस्थ और परस्थ हास्य से कुछ अन्य अर्थ लिया है।[2]

आत्मस्थ और परस्थ हास्य दो प्रकार का होता है। दर्शक के हृदय में हास्य के विभाव के दर्शन मात्र से उत्पन्न आत्मस्थ हास्य कहा गया है और पूर्णतः दूसरे की हँसी से उद्भूत परस्थ। इसका संचार उत्तम, मध्यम और अधम तीनों प्रकार के पात्रों में देखा जाता है। फलस्वरूप इसकी तीन अवस्थाएं होती हैं और उनके दशरूपक की ही भाँति छः भेद हैं।

सभ्यता के उत्थान के साथ शारीरिक व्यायाम की सी दशाओं में ले जाने वाले उपहसित, अपहसित और अतिहसित आदर न पा सके। शिष्ट हास्य की श्रेणी में स्मित, हसित और अधिक से अधिक विहसित माने गए।[3]

---

2. **'आत्मस्थः परसस्थश्चेत्यस्य भेद द्वयं मतं।**
आत्मस्थो दृष्टुरुत्पन्नो विभाविक्षण मात्रतः॥
हसतमपरं दृष्ट्वा विभावश्चोप जायते।
योऽसौ हास्य रस्तज्जै परस्यः परिकीर्त्तितः॥
उत्तमानां मध्यमानां नीचानामप्य सौ भवेत्।
व्यवस्थः काचितस्तस्य षड्भेदाः सन्ति चापरा॥"

3. पाश्चात्य देशों में इस प्रकार हास्य का वर्गीकरण नहीं हुआ था यह सत्य है, परन्तु शिष्ट समाज ठट्ठा मार कर हँसने की अपेक्षा मुस्कान को ही उपयुक्त मानता था। अर्ल आफ चेस्टरफील्ड की अपने पुत्र को दी हुई शिक्षा इसी धारणा से प्रभावित है—

"I would heartily wish that you may often be seen to smile but never heard to laugh while you live."

हास्य का यह विभाजन केवल नाटकों को दृष्टि में रख कर किया गया था। आज के मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिष्ठित निर्वेद-मिश्रित हास्य इसके अन्तर्गत कहीं स्थान नहीं पाता। इन भेदों में हास्य के गुण अथवा उद्देश्य का कोई महत्त्व नहीं। इसमें सहृदय के बाह्य अनुभावों को हास्य का माप-दण्ड मान लिया गया है। अस्तु, इसे हम कभी वैज्ञानिक और तर्क पूर्ण नहीं मान सकते।

पाश्चात्य विभेद; फ़ाउलर का वर्गीकरण :

आँग्ल काव्य-शास्त्रियों ने जहाँ भी हास्य के भेद करने का प्रयत्न किया, शुद्ध हास्य (Humour) और वाग्वैदग्ध (Wit) के प्रसंग को उठाकर पोथे के पोथे रंग डाले। इन दोनों हास्य के अंगों पर विचार करने से पूर्व यहाँ यह कह देना उपयुक्त होगा कि इसके अन्यान्य भेदों पर अनेक दृष्टियों से पाश्चात्य साहित्य में विवेचन हुआ। उन सबका सविस्तार लेखा न देकर यहाँ इस दिशा में फ़ाउलर के प्रयत्न का उल्लेख अधिक उपादेय होगा। अनेक विद्वानों द्वारा प्रस्तुत मत-मतांतरों के अध्ययन के पश्चात अपने 'यूसेज' में उन्होंने हास्य के भेदों की सारांश रूप में एक तालिका दी है। इसमें हास्य के उद्देश्य, क्षेत्र, साधन और व्यापार तथा समाज को ध्यान में रख कर इन विभिन्न शाखाओं का अन्तर स्पष्ट किया है।[4]

4

	MOTIVE or AIM	PROVINCE	METHOD or MEANS	AUDIENCE
humour	Discovery	Human nature	Observation	The sympathetic
wit	Throwing light	Words and ideas	Surprise	The intelligent
satire	Amendment	Morals and manners	Accentuation	The self satisfied
sarcasm	Inflicting pain	Faults and foibles	Inversion	Victim and by-stander
invec-tive	Discredit	Misconduct	Direct statement	The public
irony	Exclusive-ness	Statement of facts	Mystifica-tion	An inner circle
cyni-cism	Self justification	Morals	Exposure of nakedness	The respectable
the sar-donic	Self-relic	Adversity	Pessimism	Self

'A Dictionary of Modern English Usage' (1947) pp. 241

अगणित प्रकार :

यों तो, कारण, गुण, स्वभाव, क्षेत्र, प्रयोजन, प्रभाव आदि की दृष्टि से हम हास्य के अगणित भेद प्रस्तुत कर सकते हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने बाल की खाल निकाल कर ऐसा किया भी है।[5] यहाँ, हमारे विषय के लिए, उनके प्रमुख भेदों की चर्चा मात्र सहायक होगी। आगे हम विभिन्न महत्त्वपूर्ण दृष्टियों से हास्य का वर्गीकरण प्रस्तुत करते हैं, जिसमें आँग्ल और भारतीय दोनों ही विश्लेषणों का आधार लिया गया है।

शारीरिक और साहित्यिक हास्य :

शरीर और आत्मा का हास्य पूर्णतः पृथक माना गया है। हम सभी शरीर के कतिपय प्रदेशों के गुदगुदाने से हँसते हैं। इस प्रकार की हँसी भी विद्वानों के लिए एक समस्या प्रस्तुत करती है। डा० लुइस एलिस गुदगुदी को पूर्व कालिक सेक्स सम्बन्धी विकासों के प्रति एक संरक्षण के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके मत से यही संरक्षण लज्जा आदि का सृजन करके असामयिक वासना सम्बन्धी उत्तेजनाओं का प्रतिरोध करता है।

---

5. फीबिलमन ने हास्य को मोटे तौर से ५ श्रेणियों में विभाजित किया है—

१. (Physical)–इसके अन्तर्गत वासना विषयक हास आ सकता है।
२. (Chemical)—'Laughing gas' के प्रभाव से।
३. (Physiological)—'Tickling' के द्वारा।
४. (Psychological)—'Hysteria' का हास्य ऐसा ही होता है।
५. (Sociological)—इसके अन्तर्गत 'Comedy' आती है।

'Comedy' को ८ प्रकार का बताया है—Joy, divine comedy, humour, irony, satire, sarcasm, wit और scorn. 'Joy' में किसी की आलोचना नहीं होती। बीच की श्रेणियों में क्रमिक रूप से आलोचना बढ़ती जाती है और 'scorn' में अपने वीभत्स रूप को छू लेती है। इसमें कटु आलोचना मात्र होती है।

ग्रेगोरी (J. C. Gregory) ने ४ प्रकार का हास्य बताया है (१) ungracious, (२) delighted, (३) amused laughter और (४) The laugh of sheer relief, इसको इन्होंने 'Basic' का विशेषण दिया है।

उदाहरणार्थ उन्होंने वालाओं की बगल में गुदगुदी की उपस्थिति से उनके उरोजों के क्रमिक विकास की ओर संकेत किया है। सली ने पाद तलो में गुदगुदी की उपस्थिति के संकेत द्वारा इसका विरोध किया है। इन्होंने गुदगुदी की उत्पत्ति को दो प्रमुख भावनाओं से आधारित माना है । एक भावना अनभिज्ञता की होती है। हम तत्काल जान नहीं पाते कि यह सिहरन किसके द्वारा उद्भूत है। दूसरी भावना कुशल के विश्वास की होती है। हमें सन्तोष रहता है कि यह गुदगुदी कोई अनिष्ट नहीं करेगी। अनेक विद्वानों ने इसे प्रेम सम्बन्धी प्रक्रिया का परिणाम बता कर उन्ही स्थलों में सीमित बताया है जो मैथुन की क्रिया में अधिक सचेष्ट रहते हैं। कुछ भी हो इन सभी विचारों में गुदगुदी की हँसी में शारीरिक तत्त्व को स्वीकार किया गया है। इसमें मानसिक चिंतन का योग अधिक महत्त्व नहीं रखता। अस्तु हास्य के दो प्रमुख भेद हो जाते हैं: एक वह जो शरीर से ही अधिक सम्बन्ध रखता है, और दूसरा जो मानसिक चिंतन के योगदान से उत्प्रेरित है।

यहाँ ध्यान रहे कि शरीर से हमारा संकेत हृदय की ओर अधिक नहीं है। हृदय कोमल अनुभूतियों की रंगस्थली के रूप में आता है। शरीर मांसलता एवं वासना का आवास कहा गया है। एक साहित्यिक विद्यार्थी के लिए शारीरिक हास्य निर्जीव और निकृष्ट होता है, हार्दिक नहीं। परन्तु, हास्य के नाम से अभिहित होने के लिए साहित्य में हृदय पक्ष उतना अनिवार्य नहीं जितना आत्मिक चिंतन। साहित्यिक हास्य की संज्ञा पाने की वही हँसी अधिकारिणी है जिसमें मानसिक चिंतन का कुछ न कुछ अंश अनिवार्य रूप से छिपा रहता है और जो 'अलौकिक आनन्द' की विधायिका हुआ करती है।

सामान्य मनुष्य का हास्य :

साहित्यिक अध्ययन का विषय वही हास्य हो सकता है जो सामान्य बुद्धि से ग्राह्य हो। साहित्यिक अभिरुचि और ज्ञान श्रेष्ठ हास्य के रसास्वादन के लिए आवश्यक हैं। एक रसज्ञ उसी हास्य से प्रभावित हो सकता है जिसमें कुछ काव्यगत विशेषताएँ और सौन्दर्य होता है, अन्यथा यों तो कुछ उन्मत्त अकारण ही सदा हंसा करते हैं।[6] अस्तु असाधारण मनुष्य का हास हमारे

---

6 "On the other hand, there is also abnormal laughter—the sneer of the scoffer, the snarl of the cynic, the exultant laugh of the misanthrope, the sardonic laugh of the devilish, the nervous laugh of the diseased and the wild

विषय की परिधि के अन्तर्गत नहीं आता। हमारी विवेचना स्वस्थ और परिष्कृत मस्तिष्क के हास्य तक सीमित रहती है।

हृदय और मस्तिष्क का हास्य :

हृदय, कोमलता, औदार्य, अनुभूति एवं संवेगों (Impulses) का प्रतीक है और मस्तिष्क, कल्पना, चिंतन, तथा बौद्धिक चमत्कार का। हृदय की पुकार भावपूर्ण होती है और मस्तिष्क की अभिव्यंजना कलामय। हृदय का व्यापार शरीर से अधिक निकट रहता है, और मस्तिष्क का आत्म दर्शन से। अस्तु, साहित्यिक हास्य के दो रूप सामने आते हैं। एक सहृदय और दूसरा केवल चिंतन और चमत्कार से पूर्ण। बहुत कुछ इसी आधार पर आँग्ल विद्वानों ने शुद्ध हास्य (Humour) और वाग्वैदग्ध (Wit) की कोटि निर्धारित की है। शुद्ध हास्य हृदय की अभिव्यंजना करता है और वाग्वैदग्ध कलापूर्ण चमत्कार प्रदर्शन। हास्य के इन दो अंगों का विवेचन यहाँ उचित होगा।

शुद्ध हास्य और वाग्वैदग्ध :[7]

बच्चों के तुतले भाषण और अशुद्ध लिपि एवं रूपान्तर से कभी कभी ऐसे शब्दों का जन्म हो जाता है जो हास्यास्पद होते हैं। इन्हीं अशुद्धियों से चमत्कार पूर्ण उक्तियों के प्रयोग की प्रेरणा मिली और श्लेष एवं विरोधाभास आदि के सहारे से हास्योत्पत्ति की प्रथा चली। अमरीका का अधिकांश प्रारम्भिक हास्य अशुद्ध लिपि पर निर्भर था और आँग्ल वाग्वैदग्ध का विकास श्लेष के प्रचलित प्रयोग से हुआ। वाग्वैदग्ध में शब्दावली का विलक्षण प्रयोग हमें हँसाता है। इसके लिए कभी अभिधात्मक वर्णन सफल नहीं हो सकते। इसमें अधिकतर लक्षणा और व्यंजना द्वारा शब्दावली अपना चमत्कार

---

laugh of the insane."—Dr. Radha Kamal Mukerjee, 'The social Structure of Values' pp. 173.

7. भारतीय-साहित्य-शास्त्र में हास्य के नाम पर वस्तुत: वैदग्ध की व्याख्या नर्मन वृत्ति में हुई है और प्रपंच, वाक्केलि, अवस्यथित तथा नालिका आदि भेदोपभेद किए गए हैं। पात्र का हास्य जनक भाषण, वेष और अभिनय नर्मन, पात्रों का एक दूसरे के अवगुणों का कथोपकथन भारवी प्रपंच, मनोरंजक उत्तर प्रति उत्तर वाक्केलि और वक्रोक्ति द्वारा हास्य अवस्यथित के अन्तर्गत समाहित किए गए हैं।

दिखाती है। कटाक्ष, उपहास और व्यंग्य में इसका ही सा
इसमें बौद्धिक प्रखरता की कला निखरती है।

शुद्ध हास्य सदय और गम्भीर होता है। वह चमत्कार नहीं वरन् जीवन के शान्त और दयार्द्र दर्शन पर अवलम्बित रहता है। यही कारण है कि प्रायः शुद्ध हास्य करुणा और निर्वेद की परिधि में प्रवेश करता दिखाई पड़ता है। वाग्वैदग्ध ज्ञान पर आधारित रहता है और शुद्ध हास्य भावुकता पर।[8]

वाग्वैदग्ध धृष्ट होता है पर शुद्ध हास्य नहीं। शुद्ध हास्य धीरे-धीरे हमारे हृदय में पैठ जाता है जब कि वैदग्ध का आनन्द क्षणिक होता है। वैदग्ध का आनन्द अपने चरम उत्कर्ष पर तभी पहुंचता है जब कि वह प्रति-उत्तर के रूप में चपला की कौंध के समान वार करता है। अवसर हाथ से निकल जाने पर बाद में सोच हुआ वैदग्ध शिथिल और अनुपयुक्त हो जाता है।[9] शुद्ध हास्य के भावनाओं पर आश्रित होने के कारण यह भी कहा गया है कि वह शाश्वत होता है। इसकी चर्चा कहीं भी सम्मान पा सकती है और हम इससे सदा आनन्द ले सकते हैं। परन्तु वाग्वैदग्ध का रस इसके पुनर्प्रयोग से हम दूसरे पर उसका प्रभाव देख कर ही पा सकते हैं, केवल निजी संस्मरण से नहीं।[10]

---

8. 'wit' से 'Humour' की भिन्नता दिखाते हुए वेब्सटर (Noah webster) ने लिखा है—

"Distinguishing from wit it is 'less purely intellectual and having more kindly sympathy with human nature and as often blended with pathos'." 'Toasters' Handbook' pp. vi

9. "Wit is abrupt, darting, scornful; it tosses its analogies in your face; humour is slow and shy insinuating its fun into your heart."—E P. Whipple, 'Toasters' Handbook,' pp vii.

10. "Humour is feeling -feelings can always bear repetition, while wit, being intellectual, suffers by repetition.......... We repeat a witty saying to enjoy the effect on others, while we retell a humorous story largely for our own enjoyment of it"—Mary Katherine Reely, 'Toasters' Handbook', pp. vi-vii.

शुद्ध हास्य और वाग्वैदग्ध का अन्तर करते हुए रीली ने लिखा है—

"Wit is intellectual, humour is emotional; wit is perception of resemblance, humour of contrast—of contrast

वाग्वैदग्ध बहुत कुछ हास्य की एक शैली के रूप में सामने आता है। कविता में अलंकारों की जो महत्ता है वही हास्य में वाग्वैदग्ध की। जिस प्रकार नृत्य में पाद, अंग और नूपुरों का विशिष्ट संचालन हमें आकृष्ट करता है उसी प्रकार हास्य में वाग्वैदग्ध।

ज्ञात और अज्ञात हास्य :

जो पात्र स्वयं हास्य का सृष्टा होता है उसके मनोविज्ञान पर ध्यान संयत करने से हम हास्य के दो भेद कर सकते हैं—एक अज्ञात हास्य और दूसरा ज्ञात।

अज्ञात हास्य की सृष्टि उन पात्रों से होती है जो अपनी मूर्खताओं अथवा पतन-व्यंजक कार्य कलाप से पूर्णतः अनभिज्ञ रहते हैं। ऐसे पात्रों में मानसिक विकार का अनिवार्य रूप से कुछ न कुछ हाथ होता है, जो उन्हें मूर्ख, घमण्डी, उद्दण्ड, लजीला, सनकी अथवा अतिभाषी आदि बना देता है। ऐसे पात्र प्रायः दूसरों को हँसते देख और उग्र रूप से अपने विकार का प्रदर्शन करने लगते हैं। इस प्रकार का उनका स्वभाव सामाजिक को और भी हँसाता है।

जब कोई पात्र अपनी हास्यास्पद स्थितियों का स्वयं उद्घाटन करने लगता है, यद्यपि वह उसमें अन्तर्निहित अपने पतन अथवा विकार से पूर्णतः सचेत रहता है, तब ज्ञात हास्य की सृष्टि होती है। इसका पात्र अज्ञात हास्य की भाँति अपने कार्य कलाप में जो हास्यास्पद विलक्षणता होती है उस से अनभिज्ञ नहीं रहता। वह जानता है कि उसके आचरण ने हास्य की सृष्टि की है और वह आचरण इस योग्य है कि उस पर सभी हँसें। अपने ही हास्य-

---

between ideal and fact, theory and practice, promise and performance."

इसी अन्तर को स्पष्ट करते हुए हैज़लिट ने लिखा है—

"Humour is the describing the ludicrous as it is in itself; wit is the exposing it, by comparing or contrasting it with something else."

आँग्ल विवेचनों में शुद्ध हास्य के लिए, Mellow, Refined, Artificial to absurdity, whimsical, Humble और वाग्वैदग्ध के लिए Brilliant, New brand, cultured, Biting और cynical आदि विशेषणों का प्रयोग हुआ है।

जनक असाधारण कर्मों का लेखा एक साहस का कार्य है और प्राय: ऐसा तभी होता है जब हास्य-पात्र पूर्णत: सन्तुष्ट रहता है कि उसने जो कुछ किया वह उस परिस्थिति विशेष में सभी सामाजिक कर बैठते। हाँ, यहाँ एक भ्रम-पूर्ण वातावरण का चित्र उतारना होता है, जिसमें पड़ कर सभी एक बार धोखा खा जाते। ऐसे हास्य का लक्ष्य अधिकतर वे दोष होते हैं जो धर्म, समाज, सभ्यता अथवा संस्कृति के चक्र में पड़ कर लगभग सभी समाजिकों पर अपना प्रभाव डालते हैं और उनसे असंपृक्त कोई भी महत्त्वपूर्ण समुदाय नहीं रहता।

सफलता की दृष्टि से ज्ञात हास्य, अज्ञात हास्य से सदैव बाजी मार ले जाता है। कारण, इसमें साधारणीकरण की अवस्था सरलता से प्राप्त हो जाती है। अज्ञात हास्य के विकारग्रस्त पात्र से तादात्म्य के लिए पाठकों की अभिरुचि नहीं जागृत हो पाती है। अज्ञात हास्य के पात्र का व्यवहार सामान्य जन-जीवन के कार्य कलाप से दूर जा पड़ता है। ज्ञात हास्य के पात्र के साथ पाठक हँसते हैं।[11] अम्रीका के प्रसिद्ध हास्य लेखक मार्क ट्वेन सदैव अपने परिवार पर हँसते हैं और इस प्रकार पाठक के हृदय में एक सहानुभूति जगाते चलते हैं। इसी कारण ज्ञात हास्य उत्तम माना गया है और बहुधा इसका प्रयोग शुद्ध हास्य में होता है।[12]

भ्रान्त :

इसमें प्राय: किसी वस्तु का आकार विकृत कर दिया जाता है। बहुधा ऐसे वर्णनों मे अत्युक्ति का उस सीमा तक प्रयोग होता है कि वस्तु विशेष का रूप ही परिवर्तित हो जाता है। इसके प्राय: दो रूप मिलते हैं। एक किसी वस्तु का वर्णन बहुत बढ़ा चढ़ाकर ऊहात्मक पद्धति पर करना (Exaggera-

---

11. अमरीका की सुश्री रेप्लायर ने कहा है—

'We are a "humorous rather than a witty people that we laugh for the most part with and not at our fellow creatures." 'Toasters' Handbook'. pp. x.

12. "Humour, therefore, is a union of unconscious with conscious laughter. Wit is the laughter of the ordinary man or of the intellectual man directed at others abnormal; humour is the laughter of the eccentric directed against himself."–A. Nicoll; 'The Theory of Drama,' pp.199

tion; over statement अथवा hyperbole) और दूसरा किसी महत्त्वपूर्ण वस्तु को बहुत छोटा रूप देना (Meiosis; under statement)। यहाँ यह संकेत कर देना अनुपयुक्त न होगा कि फ्रान्स के साहित्य की प्रिय शैली अत्युक्ति पूर्ण होती है और इंगलैण्ड में अधिकतर महान् घटनाओं को 'छोटी सी बात' कहने की प्रथा रही है।

भ्रान्त का प्रयोग अधिकतर प्रहसनों में होता है। इसे स्वाभाविक और समस्त प्रकार के हास्यों का जनक कहा गया है। बालकों की हँसी को इसी के अन्तर्गत माना गया है। इसका नामकरण अनेक विद्वानों ने 'निरर्थक' भी किया है। सर्व सुलभ तेकनीक के कारण इसका प्रयोग बहुत कौशलपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

उपहास :

इसमें सहानुभूति-विरोधी भावों का प्रकाशन होता है। घृणा और क्षोभ आदि कटु व्यंग्य का रूप लेकर अवतीर्ण होते हैं—

"उपहास किसी व्यक्ति, समाज, संस्था, अथवा समूह की दुर्बलताओं तथा दुर्गुणों का उद्घाटन कर उस पर आक्षेप करता है। अन्य हास्य का लक्ष्य होता है हँसाना मात्र, पर इसका अभिप्राय किसी वस्तु विशेष का विरोध करना है।"[13]

इसका विरोध प्राय: किसी धर्म, संस्कृति, राजनीति, व्यक्ति, मत अथवा सम्प्रदाय की ओर उन्मुख होता है।

उपहास की दो कोटियाँ सरलता से की जा सकती हैं; एक विषाक्त और दूसरी मधुर। विषाक्त में व्यंग्य अथवा आक्षेप कठोर होकर विषैले बाण का सा आक्रमण करता है और मधुर में विनोद अथवा मीठे कटाक्ष से लज्जित। एक में विरोध की भावना प्रबल 'अग्नि शिखा' के समान जलती जान पड़ती है और दूसरे में चुटकी लेकर मीठी मार करती हुई।

वास्तव में उपहास शुद्ध हास्य और कटु आलोचना के समन्वय से उत्पन्न होता है। इन दोनों के अनुपात के अनुसार उसका स्वभाव परिवर्तित होता

---

13. डा० त्रि० ना० दीक्षित और अनुज 'हास्य के सिद्धान्त' से।

"The true end of satire is the amendment of vices by correction."—Dryden; 'English Satire' (Edited by Norman Furlong).

जाता है। इसका एक सिरा गाली-गुफ्ता और दूसरा शुद्ध हास्य होता है। एक के अभाव से दूसरा उग्र होता जाता है।[14] इसका एक अंग कोमल खीझ से पोषित होता है और दूसरा घृणा तथा द्वेष से।

उपहास को नम्र होना चाहिए अथवा नहीं, यह लेखकों की व्यक्तिगत रुचि का प्रश्न है। मलग्रेव, पोप, होरेस और ड्राइडन ने श्रेष्ठ उपहास को नम्र बताया है जब कि क्लीवलैण्ड और हाल ने नहीं।[15] आधुनिक युग में बहुमत से मीठे विनोद को ही आदर दिया जाता है।

अन्य हास्य प्राय: प्रतीकों को लेकर चलते हैं और सामान्य समाज पर लक्ष्य करते हैं जब कि उपहास सामान्य पात्रों को लेकर व्यक्तिगत चोट कसता है।[16] इसकी क्रिया बहुत कुछ निगमन रीति से होती है।

जब ज्ञात हास्य और उपहास का समन्वय होता है, अर्थात् खिल्ली का लक्ष्य स्वयं वाचक हो जाता है तब परिहास का जन्म होता है। परिहास

---

14 "Satire, in its literary aspect, may be defined as the expression in adequate terms of the sense of amusement or disgust excited by the ridiculous or unseemly, provided that humour is a distinctly recognizable element, and that the utterance is invested with literary form. Without humour, satire is invective; without literary form, it is more clownish jeering."—Rechard Garnett, Encyclopaedia Britannica' (14th Edition)

15. इस प्रसंग में हाल की पंक्तियाँ दृष्टव्य होंगी—

"The satire should be like porcupine,
That shoots sharp quills out in each angry time,
And wounds the blushing cheek and fiery eye
Of him that hears, and readeth guiltily."
—Norman Furlong, 'English Satire' pp. 16.

16. Alexander Pope ने 'The Rape of the Lock' के समर्पण में लिखा था—

"It was intended only to divert a few young ladies, who have good sense and good humour enough to laugh not only at their sex's little unguarded follies, but at their own."

प्रायः शुद्ध हास्य में देखने को मिलता है। ऐसे हास्य को साहित्य में श्रेष्ठ स्थान दिया गया है।

परोपजीवी हास्य :

किसी पूर्व रचित ग्रन्थ को नवीन वातावरण में ढाल कर पैरोडी (परिवृत्ति) आदि की रचना परोपजीवी कही गई है। इस प्रकार के हास्य का यह नामकरण प्राय: अन्य उपलब्ध कृतियों के ऊपर निर्भर होने के कारण हुआ। पैरोडी प्राय: तीन प्रकार की देखी गई हैं। एक वह जिसमें किसी विशेष रचना के आधार पर हास्य का सृजन होता है। दूसरी जिसमें किसी समय के साहित्य की सामूहिक शैली का विनोद किया जाता है। तीसरी, सबसे उत्तम, पैरोडी वह मानी गई है जो किसी समय के जीवन, आचरण और समस्त कलाओं का, अथवा सस्कृति का ही क्यों न कहें, विनोदपूर्ण चित्र उतारती है।

पैरोडी कभी कभी अशुद्ध रूपान्तर से भी उत्पन्न होती है। प्राय: दो भिन्न रचनाओं को एक में गूँथ देने से भी हास्य जनक कृति बन जाती है। परन्तु इनका साहित्य में कोई ऊँचा स्थान नहीं माना गया है।

पैरोडी के महत्त्वपूर्ण दो साधन होते हैं। एक उदात्त का हास्यास्पद भावना में पतन और दूसरा ठीक इसके विपरीत तुच्छ की उदात्त के पद पर प्रतिष्ठा। एक में प्राय: अत्युक्ति की अतिरंजना कार्य करती है और दूसरे में महान घटनाओं को नगण्यता के स्तर पर उतारा जाता है।

घटना, परिस्थिति, शब्दावली और चरित्र का हास्य :

हास्य का वर्गीकरण एक अन्य प्रकार से भी किया जा सकता है। घटना, परिस्थिति, शब्दावली और चरित्र में से किसी एक पर भी वह आधारित किया जा सकता है। शब्दावली का हास्य वाग्वैदग्ध है। शुद्ध शाब्दिक चमत्कार अधिक प्रिय और प्रसिद्ध नहीं है। इनका स्थान अब विचारों और भावों की असंगति ले चुकी है। घटना के विपर्यय और संयोग से हास्य की उत्पत्ति की चर्चा हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इनका प्रयोग बहुत उत्कृष्ट नहीं कहा जाता और प्राय: प्रहसन में इनका आधिक्य रहता है।

आज का उत्कृष्ट हास्य चारित्रिक और परिस्थिति का माना गया है। एक वातावरण और परिस्थिति विशेष में प्रयुक्त हास्य का वही सौन्दर्य होता है जो स्वर्णाभूषण में जड़े नग का। इस प्रकार का हास्य प्राय: वाग्वैदग्ध

पर आश्रित रहता है। परन्तु यहाँ केवल वैदग्ध की शुष्कता नहीं रहती। उसके उत्कर्ष के लिए अनेक काव्यगत प्रसाधनों को एकत्रित कर उनसे एक वातावरण अथवा पृष्ठ भूमि की सृष्टि करनी पड़ती है, जिसपर हास्य का अधिकाधिक सौन्दर्य निखरता है। तुलसी ने परशुराम-लक्ष्मण संवाद में लक्ष्मण की व्यंग्यात्मक उक्तियों का ऐसा ही प्रयोग किया है। सभी अवसरों पर ऐसी उक्तियाँ उच्च कोटि की नहीं कही जा सकतीं। इनकी चारुता परिस्थिति-विषयक होती है। वस्तुत: तुलसी ने उपयुक्त अवसर के मर्म को पहिचाना है।

चरित्र के अंकन द्वारा हास्य का सृजन बड़े ही कौशल और सतर्कता का परिणाम होता है। इसके लिए पात्र विशेष की वेशभूषा, शब्दावली और प्रत्येक कार्य कलाप पर दृष्टि रखनी पड़ती है। चरित्र सामान्य पात्रों की भाँति घटनाओं के चक्र में पड़कर नहीं चलता। वह अपने स्वभाव से नवीन घटनाओं की नींव डालता है। दैनिक जीवन में ऐसे चरित्रों के अभाव के कारण, कल्पना से, तथा अनेक पात्रों से थोड़े-थोड़े गुण लेकर, एक स्थान पर पुंजीभूत करने से ही उनकी रचना हो पाती है। इसमें साहित्यकार भाषा आदि कलासम्बन्धी असंगतियों और विपर्ययों पर अधिक ध्यान न रख कर जीवन की विडम्बना का रहस्य खोलता है। 'शेक्सपियर' के 'फ़ाल स्टाफ़' और 'डिकेन्स' के 'पिकविक' ऐसे सजीव चरित्र अँग्रेजी-साहित्य को संसार में एक विशेष प्रतिष्ठा देने में सफल हुए थे।

संगठित प्रयोग :

वास्तविक तथ्य यह है कि हास्य का क्षेत्र इतना व्यापक और व्यापार इतना विस्तृत है कि उसके भेदों की कोई मान्य तालिका देना संभव नहीं। उसके विभिन्न अंग उपांगों का साहित्य में मिश्रित रूप से प्रयोग होता है। अस्तु, उसकी एक श्रेणी को दूसरी श्रेणी से अलग करने पर हास्य का रूप स्वयं विकृत हो जाता है। प्रत्येक हास्य-रचना में शुद्ध हास्य, भ्रान्त, उपहास और वैदग्ध आदि में से अनेक प्राय: सम्मिलित रूप में आते हैं। कदाचित् शुद्ध हास्य और एकाकी वैदग्ध कभी हास्य के समादृत अंग न हो पाते यदि इनका एक दूसरे के साथ समन्वय न होता। हाँ, इतना अवश्य है कि किसी एक गुण की मात्रा के आधिक्य या न्यूनता से हम हास्य की उत्कृष्टता अथवा निकृष्टता का आभास पा जाते हैं। प्रसंग अथवा स्थल विशेष में इन विभिन्न उपकरणों के संतुलन का अनुपात ही हास्य की कोटि निर्धारित करता है।

३

हिन्दी साहित्य में हास्य रस

हिन्दी के बाल्यकालीन साहित्य के मंथन एवं अनुसन्धान के उपरान्त हास्य की हल्की-फुल्की झलक भाटों के आल्हों और कड़खों में उपलब्ध हो सकती है। यह साहित्य आयुधों की झंकार, शूरों की ललकार और संग्रामों की भरमार में पल्लवित—पोषित हुआ था। इसकी कथा वस्तु बहुधा, **'जेहिकर बिटिया सुन्दर देखिन, तेहि सिर जाइ धरिन तरवार'** की हुआ करती थी। प्राय: इसके प्रणेता युद्धभूमि में ओजस्वी रण भेरियाँ गाने वाले भाट और चारण, लेखिनी के साथ ही तलवार के धनी सामन्त होते थे। ऐसे वातावरण में स्वभावत: शौर्य की मान्यता थी, अस्तु, कायरता उपहास की सहज सामग्री।[1] इस साहित्य में ऐसे थोड़े से स्थल वीरोचित उत्साह उभारने, जगाने के लिए आ जाते थे। हास्योत्पत्ति किसी कवि का लक्ष्य अथवा ध्येय नहीं था।

सिद्धों, नाथों तथा चारणों की कविताओं से जहाँ एक ओर हिन्दी साहित्य प्रारम्भ हुआ वहीं दूसरी ओर, लगभग उसी समय के आस पास, अमीर खुसरो की कविता। प्रवृत्ति रूप में हास्य की परम्परा प्राचीन और मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में नहीं थी, तथापि, उसके आदि काल में ही, अपने उत्कृष्ट रूप में, हास्य के दर्शन खुसरो की पहेलियों और मुकरियों में हुए अवश्य। बाल-सुलभ कौतुक के साथ ही अर्थ और भावों के श्लेष तथा असंगति से पूर्ण साहित्य हँसाने में सर्वथा समर्थ है। रसिक प्रियतम के स्थान पर अचानक पदत्राण के चुम्बन अथवा श्वान के प्रवेश से भला कौन नहीं हँस देगा—

---

1. तद्विषयक भावों के समानान्तर राजस्थानी साहित्य में कुछ लोक गीत आदि मिलते हैं, जो कायरों की खिल्ली उड़ाने में उतने ही सशक्त एवं समर्थ हैं जितना आज का विकसित उपहास।

"नंगे पाँव चलन नहिं देत,
पाँव में धूर लगन नहिं देत,
चरन का चूमा लेत निपूता,
कहु सखि साजन, ना सखि जूता ।"

तथा—

"टट्टी तोड़ के भीतर आया
अर्तन बर्तन सब सरकाया,
चल दिया खा पी दे बुत्ता,
कहु सखि साजन, ना सखि कुत्ता ।"

हास्य, सन्त और भक्त कवियों की प्रकृति के प्रतिकूल था । यह कवि जहाँ तहाँ हास्य स्थलों के समावेश द्वारा अपने विषय का गाम्भीर्य नष्ट करना नहीं चाहते थे । फिर भी, कबीर आदि ने समाज की कुरीतियों एवं विद्रूपताओं की आलोचना हेतु कहीं-कहीं व्यंग्य और उपहास का आश्रय लिया । सूफी कवियों ने, और राम काव्य में तुलसी ने, प्रबन्ध के अनुरोध से कभी-कभार हास्य के छींटे दिए ।[2] शिव-विवाह, विश्व-मोहिनी-स्वयंवर में नारद का 'हरिरूप', तथा लक्ष्मण-परशुराम सम्वाद में तुलसी ने हास्य का अद्भुत विधान किया । परन्तु गीत काव्य में जहाँ हृदय की गम्भीर अनुभूतियाँ आत्म निवेदन और दैन्य आदि के रूप में अभिव्यक्त की जाती थीं, हास्य के विकास का उपयुक्त अवसर नहीं था । यदि हास्य का पुट ऐसी रचनाओं में कहीं मिलता है तो आराध्य के प्रति उपालम्भों में । इस प्रकार के उपालम्भ कृष्ण-काव्य में अधिक प्रचलित हुए । कृष्ण भक्तों ने जहाँ अपनी समस्त वास-

2. सूफ़ी कवियों के शिरमौर, जायसी, का साहित्य आध्यात्मवाद और ऐतिहासिकता का कितना ही गम्भीर दर्शन क्यों न प्रस्तुत करता रहा हो, पर, जहाँ कवि ने साहित्य को लोक कथा का पुष्ट सम्बल तथा जागरूक एवं सर्वांगीण लोकचित्रण का परिवर्धन दिया है, वहीं, भारत की युग-युग से चली आती सम्भोग शृंगार में हास विलास और परिहास की जीती जागती प्रतिमा भी । यह हमारे जन जीवन का अंग था और इसी कारण वांछनीय भी । 'पद्मावती-रतनसेन-भेंट खण्ड' में राजा की समस्त राम कहानी सुनकर पद्मावती की युक्तियाँ दाम्पत्य विनोद का सरस नमूना हैं—

"हौं रानी, तू जोगि भिखारी ।
जोगिहि भोगिहि कौन चिन्हारी ।।" आदि ।

नाओं और विकारों को आराध्य की ओर मोड़ कर व्यक्तित्व को एक प्रकार के उन्नयन द्वारा ऊँचे स्तर पर उठाने का प्रयत्न किया, वहीं, हास्य भरे उपालम्भों को भी उपास्य को सौंपा।[3] सूर के भ्रमर गीत का समस्त सौन्दर्य ऊधव-गोपी सम्वाद के व्यंग्य और कटाक्षपूर्ण तानों पर निर्भर है।

सामन्तशाही के युग में दरबारों में हास्य को प्रश्रय मिल सकता था। परन्तु, वहाँ हिन्दी के कवि पराभूत जाति के होने के कारण केवल चाटुकारिता की कविता ही कर सकते थे। हास्य-व्यंग्य की धृष्टता कर सकने का उनका साहस नहीं था। फिर भी, थोड़ी बहुत अन्योक्तियाँ लिखी गईं।

आगे चल कर, यह हास्य-व्यंग्य की अन्योक्तियाँ कुछ विकास पाईं। पुन: धीरे-धीरे संस्कृत के परम्परागत हास्य-पात्र सामने आने लगे; जिनमें शिव, सूम तथा व्यक्तिगत राग-द्वेष के प्रतीक कुछ लोगों को हास्य का आलम्बन बनाया गया। बेनी के भंड़ौए कुछ ऐसे ही थे। रीति कवियों की औढ़रदानि भगवान शंकर, भाग्यविधाता चतुरानन और रसिक शिरोमणि कृष्ण के प्रसंग

---

3. दाम्पत्य-जीवन के अतिरिक्त अन्य लौकिक, सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धियों में हंसी-मजाक करने का अधिकार किसी भी अन्य देश में मान्यता नहीं पाया है। यह केवल भारतीय जीवन का अपना अंग और गुण है। यहाँ, जीजा और साले-साली, समधी और समधिन, देवर और भौजाई तथा ननद-भौजाई आदि को पारस्परिक विनोद के लिए समाज की ओर से विशेष अनुमति एवं छूट प्राप्त है। अपने इस भाव को भी आराध्य को समर्पित करने की कुछ प्रवृत्ति भक्तों में प्रचलित थी। विशेष रूप से, अयोध्या के निकटवर्त्ती 'युगल सरकार' की उपासना करने वाले सीमित समुदाय के कवियों ने स्वयं को सीता जी का वन्धु, अथवा, प्रभुवर राम के साले के रूप में स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध के नाते उन्होंने बहुत से श्लील-अश्लील हास्यों की उद्भावना की है। यहाँ ध्यान रखने की बात यह है कि भक्तों ने अपने को सदैव नीचे स्तर पर रक्खा। जीजा, साले का 'मान' कहा जाता है और उसका पारिवारिक पद भी पूज्य होता है: अस्तु, भक्तों ने सदैव अपने को साला ही प्रदर्शित किया। कभी भूल कर भी आराध्य का 'जीजा' बनने की कल्पना नहीं हुई। इस उपहास में भी सदैव, उपास्य के प्रति एक आदर का भाव सन्निहित था।

में लिखी उक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। विशेष रूप से हास्य के लक्ष्य त्रिपुरारि रहे।[4] इसका अनुमान एकाध उदाहरण से हो सकता है—

"बार-बार बैल को निपट ऊँचो नाद सुनि,
हुंकरत बाघ बिरुझानो रस रेला मैं।
'भूधर' भनत, ताकी बास पाय सोर करि,
कुत्ता कोतवाल को बगानो बगमेला मैं।
फुंकरत मूषक को दूषक भुजंग, तासों,
जंग करिबे को झुक्यो मोर हद हेला मैं।
आपुस में पारषद कहत पुकारि कछु,
रारि सी मची त्रिपुणी के तबेला मैं॥"

तथा—

"बाप विष चाखै, भैया षटमुख राखै देखि,
आसन में राखै बस बास जाको अचलै।
भूतन के छैया, आसपास के रखैया, और,
काली के नथैया के ध्यान हूते न चलै॥
बैल बाघ बाहन बसन को गयन्द खाल,
भाँग को धतूरे को पसारि देत अचलै।
घर को हवाल यह संकर की बाल कहै,
लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै॥"

4. वास्तविकता यह है कि संस्कृत-कवि जयदेव की कोमल-कान्त पदावली का नव जागरण कर, मैथिल-कोकिल विद्यापति ने जहाँ आगे के भक्त कवियों को गीत की शैली, अलंकार, दृष्टिकूट, वर्णन-विधि आदि, और रीति-कालीन शृंगारिक कवियों को विदग्ध-विलास के लिए राधा-माधव ऐसे वर्ण्य दिये थे, वहीं, अलमस्त योगीश्वर महादेव एवं महामुने नारद के प्रति माता मैना के उपालम्भों द्वारा हास्य की एक प्राचीन विद्या भी—

"खटँग काटि हर हर जे बनाबिअ,
त्रिसुल तोड़िय करु फार।
बसहा धुरन्धर हर लए जोतिअ,
पाटए सुरसरि धार।"

तथा—

"हम नहि आज रहब यहि आँगन,

व्यक्तिगत आक्षेपों में मौलिकता और प्रचुरता से उपहास का लक्ष्य रीति कवियों ने कृपण धनाढ्यों को बनाया। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ किसी धनी-मानी सम्पत्तिशाली के दान से असन्तुष्ट कवि उसकी भर्त्सना, उपहास द्वारा, करता दीखता है। कवि बेनी कहीं किसी रईस से प्राप्त रजाई, कहीं पेड़े और कहीं आमों की खिल्ली उड़ाते मिलते हैं।[5]

सरस और हल्की सी हँसी की झाँकी नायक-नायिकाओं के प्रेम-व्यापार में दिखाने की रुचि रीति कवियों में विशेष प्रचलित थी। परन्तु, इस युग के अन्यान्य चित्रणों की भाँति पार्थिव अंकन इनमें भी प्रधान था। मतिराम की यह उक्तियाँ इसे स्पष्ट कर देंगी—

"केलि के रात अघाने नहीं, दिन ही में लला पुनि घात लगाई।
'प्यास लगी, कोउ पानी दै जाइयो,' भीतर बैठि के बात सुनाई॥

जो बुढ़ होएत जमाई, गे माई।
एक त बइरि भेल बीध बिधाता,
दोसर धिया कर बाप।
तेसरे बइरि भेल नारद बाभन,
जै बूढ़ आवल जमाई, गे माई॥
पहिलुक बाजन डामरु तोरब,
दोसरे तोरब रुँड माल।
बरद हाँकि बरिआत बेलाएब,
धिया ले जाएब पराई, गे माई॥
धोती लोटा पतरा पोथी,
एहो सभ लेबन्हि छिनाई।
जौं किछु बजता नारद बाभन।
दाढ़ी धए घिसिआएब, गे माई॥" आदि।

अस्तु, अलौकिक रस में पगे भक्त-कवि अपने इष्ट को जो ताने देते रहते हैं उनकी पृष्ठ-भूमि में दशावधान की प्रेरणा कही जा सकती है।

5. हिन्दी साहित्य में जो स्थान कृपणों के उपहास का है वही फ़ारसी और उर्दू में 'हजो' का। 'वाह' कलाम की प्रसिद्धि पाने वाले सौदा का किसी अमीर द्वारा प्राप्त घोड़े का वर्णन बेनी की भाँति विख्यात है—

"अब बस के हिनहिनाने की ताकत नहीं रही,
घोड़ी को देख देख के पादे है बार बार।'

जेठी पठाई गई दुलही, हँसि हेरि हरैं मतिराम बुलाई ।
कान्ह के बोल पै कान न दीन्ही, सुगेह कीं देहरि पै धरि आई ।।"

इन प्रेम प्रसंगों में, खण्डिता और वचन-विदग्धा आदि नायिकाओं के कथनों में, उत्कृष्ट व्यंग्य के दर्शन होते हैं—

"भोरही न्योति गई—ती तुम्हैं,
वह गोकुल गाँव की ग्वालिनि गोरी ।
आधिक राति लौं बेनी प्रवीन,
कहा ढिग राखि कियो बरजोरी ।।
आवै हँसी हमैं हेरत लालन,
भाल में दीन्यौं महावर घोरी ।
एते बड़े ब्रज मण्डल में न,
मिली कहूं माँगेहू रंचक रोरी ।।"

इस युग में हास्य के उत्कृष्ट उदाहरण गिरधर कविराय, कविवर गंग, महाकवि देव, पद्माकर और बैताल आदि में अधिकाधिक प्राप्त होते हैं ।

हास्य रस की महत्ता और शक्ति को अन्य रसों से पृथक रखकर, फुट-कर विषयों पर, रचना करने का प्रथम साहित्यिक प्रयास, सम्भवतः, अठारहवीं शताब्दी की, अली मुहिब्ब खाँ की 'खटमल बाईसी' है । कुछ इसी प्रकार का एक 'सूमसागर' भी था ।

संस्कृत तथा प्राचीन हिन्दी साहित्य पद्य में था । पद्य सरलता से कंठस्थ किए जा सकते थे और छापे आदि की सुविधा के अभाव में उनके आक्षुण्य का यही साधन भी था । आधुनिक युग मुद्रण आदि की व्यवस्था के साथ ही गद्य का विकास लेकर आया । जीवन की आलोचना से बोझिल होने के कारण हास्य पद्य की अपेक्षा गद्य में बहुत फूला फला । बहुत सम्भव है प्राचीन युग में गद्य के साहित्यिक स्तर पर न होने के कारण ही हास्य उपेक्षित रहा हो ।

हास्य व्यंग्य की एक परम्परा रूप में परिष्कृत और पुष्ट प्रवृत्ति आधु-निक काल की विशेषता है । भारतेन्दु युग हास्य का स्वर्ण काल था । भारतेन्दु की स्वयं, और, उनके समकालीन अन्य साहित्यकारों की सजीवता, उस युग का एक सामान्य लक्षण है । इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि परिष्कार की दृष्टि से इस युग का हास्य सर्वोत्कृष्ट है । हमारा संकेत केवल उसके विस्तृत प्रयोग एवं सम्पन्न परिमाण की ओर है । कविता और गद्य के सभी क्षेत्रों में इसका व्यापक विस्तार हुआ ।

भारतेन्दु ने 'विषस्य विषमौषधम' में अशिष्ट उपहास की उद्भावना की। इसमें देशी रजवाड़ों की भ्रष्ट परिस्थिति का अंकन था। एक बाल-सुलभ कथावस्तु को लेकर 'अन्धेर नगरी' की रचना की। 'हरिशचन्द मैग-ज़ीन' में 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन' प्रहसन लिखा। इनका प्रहसन 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' अनेक शिक्षा संस्थाओं की पाठ्य पुस्तकों में संग्रहीत किया गया। 'पाँचवे पैगम्बर' और 'सबै जात गोपाल की' में कपटी धर्माचार्यों पर कटु आक्षेप किया। स्वरचित तथा संकलित चुटकुलों का संग्रह 'परिहासिनी' के नाम से निकाला।

नाटकों के क्षेत्र में भारतेन्दु से प्रेरणा पाकर श्री निवास दास, प्रताप नारायण मिश्र, राधा कृष्ण दास, प्रेमघन, बदरी नारायण चौधरी और पूर्ण आए। इनके हास्यों में व्यंग्य की प्रधानता रही। गद्य लेखक बाल मुकुन्द गुप्त काव्य-परिहास में सफल रहे। हास्य के छींटे देने में बाल-कृष्ण उल्लेख-नीय हैं। इनकी कृतियों में एक चिड़चिड़े स्वभाव का आभास मिलता है।

इसी बीच मुंशी ज्वाला प्रसाद का 'कलि राज की सभा', बाबू तोताराम का 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' और बाबू कार्त्तिक प्रसाद का 'रेल का विकट खेल' सामने आये।

इस युग में हास्यपूर्ण लेखों की नवीनता आई। प्रताप नारायण मिश्र के 'कलिकोप', 'मुक्ति के भागी' तथा 'होली' और बालकृष्ण भट्ट के 'आँख', 'कान', 'नाक' ऐसे लेख आज भी उत्कृष्ट हास्य में अद्वित्तीय हैं। निबन्धों में हास्य का प्रयोग शिव प्रसाद सितारे हिन्द (राजा भोज का सपना), श्री राधा चरण गोस्वामी (यमलोक की यात्रा), बाल कृष्ण भट्ट (खटका) और बाल मुकन्द गुप्त (शिव शम्भु शर्मा का चिट्ठा) आदि रोचकता से करते रहे।

इस युग में राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक दोष हास्य के लक्ष्य रहे। भारतेन्दु की 'देखी तुमरी कासी' और मिश्र का 'कानपुर महात्म्य' धार्मिक कुरीतियों पर तीखा व्यंग्य करते हैं। पाश्चात्य सभ्यता में रंग जाने का एक प्रेमिका का अपने प्रेमी से कथन बड़ा ही सच्चा और मीठा उपहास लेकर लिखा गया था—

> **"लिखाय नहीं देत्यो पढ़ाय नहीं देत्यो।**
> **सैंया फिरंगिनि बनाय नहीं देत्यो॥**
> **लहँगा दुपट्टा नीक न लागै,**
> **मेमन का गवनु मगाँय नहीं देत्यो॥**

हम ना सोइबे कोठा अटरिया,
नदिया प बँगला छवाय नहीं देत्यो ।।
सरसों का उबटन हम ना लगैबे,
साबुन से देहियाँ मलाय नहिं देत्यो ।।"

इस युग में विशेष महत्त्व की बात अंग्रेजों का उपहास द्वारा विरोध था। भारतेन्दु के 'चूरन बड़ा मसालेदार' और 'चना जोर गरम' के लटके अंग्रेजों पर एक न एक चोट कस देते थे—

"चूरन साहिब लोग जो खाता।
सारा हिंद हजम कर जाता ।।"

राष्ट्रीय आन्दोलन में इन व्यंग्यों का अपना निजी महत्त्वपूर्ण हाथ था। यह हास्य के टुकड़े एक विद्रोह की अग्नि सुलगाते रहे।

शुद्ध हास्य की दृष्टि से इस काल में प्रताप नारायण मिश्र ही सफल रचना कर सके। 'सभा वर्णन' और 'तृप्यन्ताम' में हास्य तथा करुणा का उन्होंने आश्चर्यजनक समन्वय किया। उनकी जरावस्था पर लिखी कविता के जोड़ की आज भी कोई रचना नहीं—

"हाय बुढ़ापा तोरे मारे, अब तो हम नकन्याय गयन,
करत धरत कछु बनतै नाहीं, कहाँ जान औ कैस करन।
छिन भर चटकि छिनै माँ मद्धिम जस बुझात खन होय दिया,
तैसे निखवस देखि परत हैं हमरी अक्किल के लच्छन।"
"अस कछु उतरि जाति है जीते बाजी ब्यरिया बाजी बात।
कैस्यो सुधि ही नाहीं आवति मूड़ुइ काहे न दै मारेन ।।
कहा चहौं कछु निकरत कछु है जीभि राँड़ का है यहु हालु।
कोऊ याकौ बात न समुझै चाहै बीसन दाँय कहन ।।"

तत्पश्चात्, नारायण प्रसाद बेताब, तुलसी दास शैदा, हरीकृष्ण जौहर और आगाहश्र कश्मीरी के नाटक हास्य से ओत प्रोत रहे। उन्नीसवीं शताब्दी में पारसी नाटकों का प्रभुत्व था, जिनमें स्थान-स्थान पर अशिष्ट हास्य का विधान होता था। गम्भीर कथावस्तु के समानान्तर ही एक हास्य-जनक कथानक को लेकर नाटकों की रचना सर्व प्रथम आगाहश्र कश्मीरी ने की। इसी से प्रभावित होकर नाटकों के साथ स्वतंत्र प्रहसन भी जोड़े जाने लगे। नन्द किशोर लाल रचित 'महात्मा विदुर' में शिव नारायण सिंह के 'कलयुगी साधु' का योग ऐसा ही था।

भारतेन्दु और द्विवेदी युग के मध्य के इस अल्प काल में अधिकतर ब्राह्मण, साधु, वकील, नवयुवक तथा नवयुवतियाँ, वैद्य और डाक्टर आदि को लक्ष्य करके छोटे छोटे अतिनाटकीय और व्यंग्यात्मक संलापों से पूर्ण प्रहसन लिखे गए।[6] इनमें न अधिक सुरुचि का ध्यान था और न परिष्कार। हाँ, समसामयिक समाज के अध्ययन की इनमें प्रचुर सामग्री मिलती है। ब्राह्मणों ने अपने तापसी जीवन को तिलांजलि दे असन्तोषी पेटुओं का रूप ले लिया था, इसे हम भले ही विदूषकी परम्परा का अनुसरण मान लें, परन्तु योगी वेश में समाज का शोषण करने वाले कपटी साधुओं का दर्शन यहीं से होता है। अस्तु, यह युग के समाज की समस्या थी। यौवन, फैशन के झंझावात में भ्रमित और चक्रित होता जा रहा था। वकील, वैद्य और डाक्टर मानवी सहिष्णुता से दूर दोनों हाथों से अपने उदर की पूर्त्ति पर तुले थे। हाँ, वैद्यों की तामसी महिमा का गान मौलिक नहीं कहा जा सकता। कवियों की दृष्टि में यह पहिले से चढ़ चुके थे—

"पेट पिराय तो पीठि टटोलत, पीठि पिराय तो पाँव निहारै।
दै पुरिया पहिले विष की, पुनि पीछे मरे पर रोग विचारै॥
बीस रुपइया करें कर फ़ीस, न देत जवाब न त्यागत कारै।
भाखै, 'प्रधान' ये बैद कसाई हैं, दैव न मारै तो आपहि मारै॥"

तथा—

"दै पुरिया दस बीसक मारै,
पचासन आसन परे संहारे।
त्यौं रस के बस कै बहुतेरन,
गोलिन के सत साठिन तारे॥

---

6. साहित्य में उपहास के लक्ष्य प्राय: इतने प्रत्यक्ष और उसका क्षेत्र इतना सीमित हो जाता है कि मेक्स बीरब्हाम (Max Beerbohm) ने अपने समय तक के समस्त आँग्ल साहित्य के हास्य की परिधि 'Hen-pecked husbands, Twins, old maids, Jews, French-men and Germans, Italians and Niggers, fatness, thinness, long hair (in man), Baldness, Sea sickness, stuttering, Bloomers, Bad cheese, Red noses and Mothers in law' के उपहास में खींच दी थी। हमारे हिन्दी साहित्य में भी एक कवि का लक्ष्य अनेक उपहासों का संधान बन जाता है।

चूरन से किए चूर अनेक,

गुलाब के जोर को लाखन मारे।

बैद भये हरगोविन्द जो

तब से यमदूत फिरै सरतारे ॥"

द्विवेदी युग में, मिश्र-बन्धु, प्रसाद, बदरी नाथ भट्ट, उग्र और जी० पी० नाटकों के क्षेत्र में आए। अब युग का संघर्ष बहुमुखी हो चला था। साहित्य के प्रति लोगों में एक सचेतनता और जागरूकता आ गई थी। उसमें परिवर्तन, परिवर्धन और परिष्कार हुआ। प्रसाद नपे तुले वैदग्ध, हास और उपहास से संस्कृत परिपाटी के विदूषकों की शृंखला में मुद्गल, वसन्तक, और महा-पिंगलक आदि पेटुओं को गम्भीर वातावरण के बीच कहीं कहीं जगाते रहे। मिश्र बन्धुओं ने पूर्व भारत, उत्तर भारत, शिवाजी, राम चरित्र और ईशान वर्मन में मर्यादित पात्रों द्वारा संयत हास्य का प्रयोग किया। उन्होंने नाटकों में कविता का भी सहारा लिया। 'यारो अब सब आस नसानी', 'कूँड़ी पायन थाँमि' और 'छूरा सबसे अस्त्र निराला' इनकी विख्यात रचनाएँ हैं। पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र के 'उजबक' और 'चार बेचारे' प्रसिद्ध हैं।

सबसे अधिक हास्य नाटकों की रचना इस अवधि में जी० पी० ने की। इनके प्रहसनों ने इन्हें ख्याति के शिखर पर पहुंचा दिया। 'उलट फेर' और 'साहित्य का सपूत' उपहास से भरे पड़े थे। परिमाण की दृष्टि से इनके साहित्य को कोई भले न पा सका हो परन्तु गुणों की दृष्टि से बदरी नाथ भट्ट की उपेक्षा नहीं की जा सकती। 'रगेड' समाचार पत्र के एडिटर की 'धूल दच्छिना', 'घोंघा बसन्त', विवाह विज्ञापन', और 'मिस अमरीकन' आदि इनके व्यंग्य प्रधान प्रहसन होते हुए भी संयत, मर्यादित और कथावस्तु, चरित्र तथा शैली के हास्य के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

निबन्ध के क्षेत्र में द्विवेदी जी, मिश्रबन्धु, श्री कृष्ण बिहारी मिश्र, श्री जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, श्री भगवान दीन और श्री पद्म सिंह शर्मा प्रतिष्ठित लेखक हुए। द्विवेदी जी और जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का कालिदास सम्बन्धी वाद विवाद कटु व्यंग्य का उदाहरण है। मिश्र बंधुओं तथा पं० कृष्ण बिहारी जी के देव-विषयक विचारों की प्रत्यालोचना में पंडित् पद्मसिंह शर्मा तथा ला० भगवानदीन ने बड़े कटु तथा कहीं कहीं अशिष्ट व्यंग्य किए।

आलोचना के क्षेत्र में इस प्रकार की हृदय की संकीर्णता का समावेश बहुत कुछ उर्दू साहित्य की देन थी।[7]

शुद्ध हास्य और उत्कृष्ट व्यंग्य का बड़ा कुशल प्रयोग आचार्य राम चन्द्र शुक्ल के दुरूह और गम्भीर निबन्धों में यत्र तत्र बिखरा मिलता है—

"कटाक्ष या नेत्रों को 'अनियारे' 'नुकीले' तक कह देना तो ठीक है, पर ऊहात्मक या वस्तु व्यंजनात्मक पद्धति पर इस कल्पना को और आगे बढ़ाकर शरीर पर सचमुच घाव आदि दिखाने लगना काव्य की सीमा के बाहर जाना

---

7. उर्दू का दिल्ली और लखनऊ का कवि वर्ग निरन्तर अप्रिय चोटें मारा करता था। यही नहीं, कवियों की आपस में एक निजी स्पर्धा चला करती थी। जब नेत्रहीन कवि जुरअत लखनवी ने **'ज़ुल्फ़ों पे जो फबती शबे दैजूर की सूझी'** में मिसरा मिलाने की समस्या दी, हास्य-प्रेमी इंशा ने **'अन्धे को अन्धेरे में बहुत दूर की सूझी'** से अनुप्रास प्रस्तुत किया। दिल्ली के इन इंशा और अमरोहा के मुसहफ़ी की चोंचें प्रसिद्ध हैं। इंशा की शेर—

"तोड़ूँगा खुमे वादए अंगूर की गरदन,
रख दूँगा वहाँ काट के एक हूर की गरदन।"

पर मुसहफ़ी ने—

"गरदन का सुराही के लिए जेब है नादाँ;
बेजा है खुमे वादए अंगूर की गरदन॥"

लिखा था और प्रति उत्तर में उन्हें यह शेर मिली थी—

"मुह अपना अगर आइने में देखे कभी शेख,
सिर लोन का, मुँह प्याज़ का, अमचूर की गरदन।"

यही नहीं, भाँड़ों का एक अभिनय देख कर जिसमें बीबी, मियाँ को जूते मारती हुई नेपथ्य से निकली थी, इंशा ने कहा था—

"स्वाँग नया लाया है, भरके यह चरखे कुहन।
लड़ते हुए आए हैं, मुशहफ़ी और मुशहफ़न॥"

और, वास्तविकता तो यह है कि उर्दू के प्रसिद्ध हास्य लेखक सौदा, इंशा और अकबर इलाहाबादी आदि सभी बहुधा अशिष्ट हो उठते हैं।

किसी कवि विशेष पर व्यक्तिगत आक्षेप करने की कुछ प्रवृत्ति रीति काल में मानी जा सकती है। विशेष रूप से बेनी बंदीजन के भड़ौवों में लखनऊ के ललकदास का उपहास इसका उदाहरण है। उनकी उक्ति **'बाजे बाजे ऐसे डलमऊ में बसत जैसे मऊ के जुलाहे, लखनऊ के ललकदास।'** विख्यात है।

है, **जैसा कि एक कवि जी ने किया है**—'काजर दे नहिं, एरी सुहागिनि, आँगुरी तेरी कटैगी कटाछन' । **यदि कटाक्ष से उँगली कटने का डर है, तब तो तरकारी चीरने या फल काटने के लिए छुरी, हँसिया आदि की कोई जरुरत न होनी चाहिए। कटाक्ष मन में चुभते हैं, न कि शरीर पर प्रत्यक्ष घाव करते हैं ।"**

डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल भी ऐसे प्रयोग करने में कहीं-कहीं सफल हुए हैं ।

ईसा की बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्ष, किशोरी लाल गोस्वामी की मौलिक कहानी ('इन्दुमती' जून सन् १९०० ई०) के प्रकाशन से, हिन्दी में कहानियों का द्वार खोलने का श्रेय पाते हैं । साहित्य में कहानियों के समावेश ने हास्य लेखकों को आकर्षित किया । कहानियों में सर्व प्रथम हास्य भरने का प्रयत्न जी० पी० की 'इन्दु' (अप्रैल सन् १९१२ ई०) में छपी 'पिकनिक' थी । इसके बाद ही आपकी 'लम्बी दाढ़ी' सामने आई । प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में मोटे राम शास्त्री ऐसे मनोरंजक पात्रों की कल्पना की । चरित्र चित्रण द्वारा सफल हास्य का प्रयोग मोटेराम के 'सत्याग्रह' में किया । शुद्ध हास्य का सजीव पुट देने में 'टटोलू राम जी टलास्त्री' में बदरी नाथ भट्ट की कला सराहनीय है ।

असंगत घटना, अत्युक्ति अथवा अतिरंजित बातों के कारण, भले ही जी० पी० की कहानियाँ श्रेष्ठ न कही जायें, पर हास्य लेखकों के लिए वे एक नवीन प्रकाश और प्रभात लेकर आईं थीं । हास्य-सृष्टा को एक नवीन पथ जी० पी० ने दिखाया ।

चरित्र-चित्रण द्वारा हास्य श्रेष्ठतम माना गया है । आँग्ल साहित्य में 'पिक-विक' पत्र जब तक डिकेन्स के चारित्रिक हास्य का सहयोग नहीं पाए थे, विश्व-विख्यात न हो सके थे । प्रेमचन्द की कहानियों से लेखक वर्ग चारित्रिक हास्य की ओर आकृष्ट हुआ । अस्तु, प्रेमचन्द का हास्य आकार में सीमित होते हुए भी छोटे से ध्रुव तारे की भाँति सभी को दिशा दिखाने वाला था ।

उपहास के पूर्व प्रचलित लक्ष्यों में दो नवीन बातों का योग हुआ; और वे थीं, राय बहादुरों तथा अवैतनिक मजिस्ट्रेटों की राजभक्ति एवं अधिकार लिप्सा तथा शिक्षित नवयुवकों की बेकारी । हाँ, अनमेल विवाह की समस्या को लेकर, प्रायः वृद्धों की कामेच्छा भी हास्य-विषय बन गई थी ।

हास्य के विकास की दृष्टि से उक्त युग विशेष महत्त्व रखता है। इस समय मौलिक और शिष्ट हास्य की ओर लेखक वर्ग उन्मुख हुआ। हाँ, यदि भारतेन्दु युग का वातावरण अवशिष्ट रहा तो पं० नाथू राम शर्मा 'शंकर' की रचनाओं में। उनकी कृतियों में वही व्यंग्यात्मक फबतियाँ मचलती रहीं—

> "ठेके पर लेकर वैतरणी, देकर दाढ़ी मूँछ।
> वाटर वाइसिकिल के द्वारा, बिना गाय की पूँछ।
> मरों को पार उतारूँगा॥
> किसी से कभी न हिम्मत हारूँगा।"

इधर के तीन चार दशकों का वर्त्तमान साहित्य हास्य के प्रति विशेष रूप से सचेष्ट रहा। निराला का 'कुकुर मुत्ता' व्यंग्यात्मक हास्य का प्रवाह रखता है और अनामिका में 'सरोज स्मृति' हास्य से अछूती नहीं। इस काल के प्रारम्भ में पढ़ीस शिष्ट और व्यंग्यात्मक हास्य में अद्वितीय रूप से सफल रहे। गद्य और पद्य दोनों में उनकी लेखनी समान रूप से उच्चतम श्रेष्ठ साहित्य का सृजन कर सकी। 'चुनाव की धूम' और 'बात नहीं बतकहाव टेढ़', उनके गद्य के उत्कर्ष के प्रमाण हैं। उनकी कविताओं का संग्रह 'चकल्लस' स्वयं में अनूठा है। 'माधुरी' के 'पढ़ीस अंक' की उनकी 'काकनि जो हमहूं पढ़ि पाइत' ओर 'काकन जब राम घरै जायहु' कविताएँ पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं।

बेढब, चन्द्र कुँवर बर्त्वालि, चोंच, अन्नपूर्णा नन्द और डा० राम विलास शर्मा की कृतियाँ हास्य की प्रशस्त सामग्री रहीं। बेढब परिहास के कुशल लेखक हैं। चोंच का परिहास प्रायः शिष्टता से नीचे उतर जाता है। डा० शर्मा सुष्ठ और उन्नत हास्य का प्रायः व्यंग्य के सहारे सृजन करते हैं। आपके 'अरे ताड़ के पेड़' में व्यंग्य की तीव्रता कठोरता के परिवेश में प्रविष्ट हो गई हैं। चन्द्र कुँवर मीठी चुटकी लेने में दक्ष हैं। 'मैकोले के खिलौना', 'रावण दहन', 'पूजा,' 'ग्रहण', 'दो छतर मंजिल', 'गधे के प्रति' और 'अल्लाह की जबान' में इनका कौशल प्रत्यक्ष है।

कहानियों की परिमार्जित तेकनीक एवं परिष्कृत हास्य में अन्नपूर्णानन्द सर्वश्रेष्ठ है। स्वाभाविकता और मर्यादा के दृष्टिकोण से उनकी 'मेरी हजामत' में संग्रहीत कहानियों के स्तर को इने गिने लेखक छू पाए हैं। 'अकबरी लोटा' में व्यंग्य प्रधान होते हुए भी, हास्य अपने उच्चतम धरातल पर निखर उठा है। बेढब और चोंच की कहानियाँ परिष्कृत हैं, परन्तु, वे भी कहीं-कहीं वीभत्सता की परिधि में उतर जाती हैं। वैसे, चोंच की 'छड़ी बनाम

सोंटा' और बेढब की 'मसूरी वाली', 'बनारसी एक्का', 'चप्पल की कहानी' और 'प्रेम की पहली चोट' ख्यातिप्राप्त रचनाएँ हैं । बेढब की कतिपय अश्लीलता से असंपृक्त रचनाएँ अन्नपूर्णानन्द के टक्कर की हैं ।

श्री भूप नारायण दीक्षित ने बहुधा बाल-सुलभ रचनाएँ प्रस्तुत कीं । 'गधे की कहानी', 'दिलावर सियार,' और 'नटखट पाँडे' इसके उदाहरण हैं । हास्य का रंग चढ़ाने में भगवती चरण वर्मा भी कम नहीं । हास्य की छटा से ओत प्रोत, कहानी संग्रह 'दो बाँके' इसका साक्षी है । निराला की 'सुकुल की बीबी', में भी हास्य विद्यमान है । राम नरेश त्रिपाठी के 'स्वप्नों के चित्र' संग्रह में हास्य की झलक है । श्री हरि शंकर शर्मा और अजीम बेग़ चग़ताई की कहानियाँ उत्तम हैं । चग़ताई की 'रस्सा कशी' हास्याभा से परिपूर्ण है ।

वर्त्तमान हास्य की मौलिक विशेषता परिवृत्तियों, गप्पों और जीवन चरित्रों का साहित्य है । अमृत लाल नागर ने गप्पों की परम्परा को हिन्दी में जन्म दिया । उनकी 'नवाबी मसनद' 'तुला राम शास्त्री' तथा कुछ आकाश वाणी की वार्त्ताएँ गल्पों की अग्रदूत हैं । इस दिशा में उल्लेख्य सहयोग केवल जी० पी० ने दिया है । हाँ, भगवती चरण वर्मा की कहानी 'मुग़लों ने सल्तनत बक्श दी' बहुत कुछ गल्प शैली को समेट कर चलती है । गल्पों का अभी कोई सुचारु विन्यास स्थिर नहीं हो पाया है । इसका साहित्य में क्या रूप और स्थान होगा, यह भविष्य की बातें हैं ।

निराला का 'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा', अन्नपूर्णानन्द का 'महाकवि चच्चा' और जी० पी० का 'लतखोरी लाल' जीवन चरित्रों को लेकर एक प्रकार से उपन्यास में हास्य भरना चाहते हैं ।[8]

यदि हास्य की प्रवृत्ति के आधार पर हम इस युग का नामकरण करें तो वास्तव में यह 'परिवृत्ति-काल' है ।[9] रामायण के आधार पर 'गड़बड़

8. हास्य की द्युति को उपन्यास की रग-रग में भर देने का आँग्ल साहित्य में सबसे पहिला प्रयत्न, अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में, हेनरी फील्डिंग का था । उनका उपन्यास 'The History of the Life of the Late Mr. Jonathan Wild the Great' एक अपराधी का हास्यपूर्ण जीवन-वृत्त देता है । इसकी रचना सन् १७४३ ई० में ही हो गई थी । भारत में इस प्रकार का प्रयत्न लगभग पौने दो सौ वर्ष बाद आरम्भ हुआ ।

9. परिवृत्ति द्वारा हास्य का मार्ग सरल और सुगम होता है । आँग्ल साहित्य में इसकी बड़ी प्रचलित प्रथा रही है । एक एक मौलिक रचना पर

रामायण' तथा 'हल्दीघाटी' के आधार पर, 'चूना घाटी' ऐसी अनेक रचनाएँ इस समयावधि में प्रकट हुईं। इन परिवृत्तियों में अधिकतर तुच्छ का उदात्त के पद पर प्रतिष्ठापन है।[10] कहीं पर दियासलाई की समस्या विकट रूप धर कर आती है; कहीं कोई बाराती नाऊ अपने शौर्य से राजपूती आन बान की समता करता है।

"अस कहि चरन गहे अकुलाई।
नाथ निकारहु दियासलाई॥" (गड़बड़ रामायण।)

तथा—

"नापित हूं नापित—कुमार,
ठनगन बेमान करूँगा अब।
घी के मिल जाने पर मैं,
समधी गुण—गान करूँगा अब।"
"टोके तो मुझ-वर-यात्री को,
कौन टोकने वाला है?
छमक उठा छुन्ना नाई अब,
कौन रोकने वाला है?" (चूना घाटी)

आज की अनेक पैरोडी भद्दी और निकृष्ट भावनाओं को लेकर भी आईं। बच्चन जी की **'इस पार प्रिये मधु है तुम हो, उस पार न जाने क्या**

अनेकानेक पैरोडी लिखी जाती थीं। प्रसिद्ध रचना 'Casabianca' की पचासों परिवृत्तियाँ हुईं। वहाँ की पैरोडी कभी-कभी बड़ी गम्भीर और प्रशस्त होती हैं और मौलिक रचना से भी अधिक सजीव तथा समर्थ हो जाती हैं।

10. हिन्दी साहित्य में उदात्त को क्षुद्र के स्तर पर उतार कर पैरोडी लिखने का कोई महत्त्वपूर्ण प्रयत्न नहीं दीखता। यहाँ की विचारधारा बड़ी भावुक रही है। साहित्य के अधिकांश नायक धर्म और समाज की श्रद्धा के पात्र हैं। उनका तनिक सा भी पतन समाज सहन नहीं कर सकता। इस प्रकार का साहित्य निश्चित रूप से यहाँ की धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताओं को ठेस पहुंचाएगा। इसी कारण यह शैली यहाँ अधिक, और किसी श्रेष्ठ रचना में प्रयुक्त न हो सकी। केवल घटना आदि का महान से तुच्छ पद पर गाहे-बगाहे अपकर्ष किया गया है। आँग्ल साहित्य में ऐसा नहीं। वहाँ इस प्रकार के साहित्य का अपना गौरवशाली स्थान है और किपलिंग की 'The Drums of the Fore and Aft' तथा जेम्स बेरी की 'My lady Nicotine' ऐसी उत्कृष्ट रचनाएँ हैं।

होगा' के अनुप्रास पर **'इस पार प्रिये यह चप्पल है, उस पार न जाने क्या होगा'** कभी स्वस्थ भावनाओं का पोपण नहीं कर सकती । इसी प्रकार गीता की शैली में, अर्जुन की जिज्ञासा पर, जब श्रीकृष्ण आज के प्रचलित जूतों के विभिन्न भेदों-उपभेदों का वर्णन करते हैं स्पष्टत: उपहास एक धार्मिक क्षेत्र में अपनी उद्दण्डता एवं वीभत्सता लेकर प्रविष्ट होता है ।[11]

यह समय क्रान्तियों और उथल-पुथल का है। इसके बराबर असन्तुष्ट न कवि कभी रहा और न जन जीवन का इतना अप्रिय राज। वर्तमान युग के प्रथम चरण में भारतेन्दु और महावीर युग के चिन्ह अवशिष्ट थे। अंग्रेजों मे अपने को दलित जान कर जनता उवल रही थी। फलस्वरूप, उनकी और समाज की प्रत्येक व्यवस्था पर आलोचना हुई। अंग्रेजों और उनकी सभ्यता ही नहीं वरन् उनसे सम्पर्क और सहानुभूति रखने वालों पर तीखे व्यंग्य हुए—

"पिल्ला लीन्हें गोद माँ, मोटर पर असवार ।
अली गली ढूँढ़न चलीं, किए समाज सुधार ।
किए समाज सुधार; हवा यूरप की लागी ।
शुद्ध विदेशी चाल ढाल सों मति अनुरागी ।
मियाँ मचावैं शोर, करैं अब तोबा तिल्ला ।
पूत धाय के गोद, खिलावैं बीबी पिल्ला ।।"

तथा—

"अंग्रेजियत पर इस कदर, फिदाँ हैं बाबू जी,
कि मिसों के मुँह का मुहासा भी, आपको रामदाना है ।"

इस हास-परिहास के चक्र में पड़कर सबसे अधिक विकृति भारतीय नारी-समाज की हुई। यह बहुत कुछ पाश्चात्य साहित्य की छाया थी जहाँ केवल 'सास' की खिल्ली उड़ाने में कवि अपना गौरव समझते हैं। आज भी वहाँ के थिएटरों में और विशेष रूप से थर्बर की रचनाओं में, युगल सेक्स का झगड़ा दिखाया जाता है। एक आधुनिक कवि की उक्ति है—

"लड़िका लंगोट माँ सबरु करै,
उइ पेटी कुट्ट सिअउती हैं ।"

---

11. इस प्रकार की रचना ने 'पानियर' को अपने २९ दिसम्बर सन् १९५५ ई० के अंक में 'Perils of Parody' लेख लिखने को वाध्य किया था। उक्त कथावस्तु की रचना विशेष की डा० सम्पूर्णानन्द ने कटु शब्दों में भर्त्सना की थी।

इस प्रकार का साहित्य स्पष्ट रूप से आज की, सामंजस्य-विहीन, नारी की अधिकार-लिप्सा के साथ वर्त्तमान विकृत प्रेम की ओर भी संकेत करता है। चोंच ने चूनाघाटी में मूसे का एक भंगिनि के प्रति अनुदार, कामातुर प्रेम दिखाया है और अन्नपूर्णानन्द ने, मुख्यत: काव्य की एक शैली विशेष का उपहास करते हुए भी, वासनालिप्त आधुनिक कवि का रजक-बाला के सहज सौन्दर्य के प्रति—

'का हो ! तोहरे मुखड़ा में ई
कइसन मुसकान भरल बाटै ।
रानी ! तोहरे ई चितवन पर
सारा अहिरान मरल बाटै ॥
हम घण्टन से ताकत रहली,
ओठङउले खिड़की क पल्ला ।
हाजिर हव तोहरे बदे कहा
चाँदी क मुदरी या छल्ला ॥"

तथा—

"ऐड़ी तक तू जल में भीगी,
सुमुखि, सलोनी, री सखि ।
हिय में मेरे फटी बेंवाई
पग तेरे भीगे लखि ॥"
"दीरघ दृग तेरे अनियारे,
जिन्हें देख मृग झेंपे ।
किसने कलफ किया था तेरे,
इस चिकने चमड़े पे ॥"
"उस मैले कपड़े को क्या तू,
समझी हृदय हमारा ।
जो उसको इस निर्दयता से,
पत्थर पर दे मारा ॥"
"आजा जरा पीठ सहला दे,
इसमें कौन कसाला ।
थोड़ी देर समझ कर अपना,
गदहा लादी वाला ॥"

नारी की मातृत्व और वात्सल्य स्नेह से पूर्ण पूज्य मूर्त्ति आज लुप्त होती जा रही है। वह केवल अभिसारिका प्रेयसि का पार्थिव माधुर्य लेकर लज्जा के आवरण से मुक्त होती जाती है।

नारी वर्ग का उपहास और सेक्स का द्वन्द्व हम एकदम नवीन कल्पना भी नहीं कह सकते। लिपि वद्ध भले ही न हो पर 'मियां बीबी' की चें-चें-में-में और मानमनावन द्वारा मनोविनोद कपि और रीछ नचाने वाले नट हमारे देश में निरन्तर करते रहे हैं। हमारे मनोरंजक लोकगीतों में 'फूहर' और 'छिनार' स्त्रियाँ सदा उपहास की भाजन रही हैं। इस प्राचीन लोकगीत में कुलक्षिणी नारी का क्या कम हास्यस्पद चित्रण है—

"धन्य पुरुष तोरी भाग करकसा नारि मिली।
सात घरी दिन रोय के जागी, लिहिन बढ़निया उठाय।
निहुरे निहुरे अँगना बहोरैं, घर भर को गरियाय।
करकसा नारि मिली॥

बखरी पर से कौवा रोवे, पहुना आए तीन।
आवा पाहुन घर माँ बैठा, मैं कंडा लाऊँ बीन।
करकसा नारि मिली॥

हड़िया भरि कै अदहन दीहिन, चाउर मेरइन तीन।
कठउत भरिकै माँड़ पसाइन, पिया हिलोर हिलोर।
करकसा नारि मिली॥"

गद्य के क्षेत्र में सेक्स का द्वन्द्वात्मक रूप जी० पी० के विशाल साहित्य का मुख्य आधार स्तम्भ बना। इसकी यथा स्थान आलोचना खण्ड में चर्चा की जायेगी।

उत्तरार्ध काल में स्वतंत्र देश की निजी सरकार से भी कवि वर्ग प्रसन्न नहीं जान पड़ता। अपने चारों ओर के वातावरण में जो कुछ भी कवि देखता है। उसकी सूक्ष्म से सूक्ष्म त्रुत्रि पर चोट कस देता है। चोर बाजारी, मँहगी, नेताओं का घृणित व्यवहार, दुराचार, बेकारी, जन संख्या की असामयिक अभिवृद्धि, यौवन का दिखावटी फैशन में उद्भ्रान्त भ्रम-जाल, अबाध वासनात्मक आत्म तुष्टि, कुछ भी आज के व्यंग्य से बचा नहीं है—

"अरजी दै दै जग मुआ, नौकर भया न कोय।
पढ़ै खुसामद को सबक, नौकर मालिक होय॥"
"दुइ आने का चैला। ना राखी ना कोयला॥"

"जनता खेती ईख की, नेता गज के हेत ।
खाय बिगारै, जो करै, सब कछु सोभा देत ।।"

"अरी मुनाफा खोरी धन्य,
तुझ सी सती न देखी अन्य ।
मार मार रुपयों की चोट,
लूट रहे कस कस लंगोट ।
होली है !"

"घूँघट और ऐनक से, होता लाभ महान् ।
छनी-छनी चितवन मिले, छनी-छनी मुस्कान ।।"

सरकार जैसे ही कुँवारों पर टैक्स लगाने की कल्पना करती है वैसे ही कवि, **'सीता जी की लाजि छाँड़ि, बाल ब्रम्हचारी कहैं, दूध अस आज देउ सुघर बँदरिया ।'** के नारे लगाने लगता है ।

बेधड़क, बंशीधर शुक्ल, रमई काका और भुशुण्ड पग पग पर हास्य की ज्योति विकीर्ण करते चलते हैं । राजनैतिक क्षेत्र में हास्य का विकट प्रयोग वंशीधर का प्रिय विषय है । आपकी 'जै वोटर भगवान्' और 'हुइगा स्वतंत्र भारत हमार' ऐसी ही कविताएँ हैं । सच्चाई तो यह है कि आजकल का हास्य किसी दल विशेष की नीति पर आक्रमण करता है अथवा आर्थिक प्रणाली और निर्धनता पर । रमई काका का 'बौछार' संकलन इस दृष्टि से एक अनुपम कृति है । उनका हास्य शिष्ट, और कठोरता से निस्पृह रहता है । चन्द्रमा के प्रति उनकी नवीन, मौलिक उद्भावनाएँ प्रशंसनीय हैं—

"छाँही छाँही चलत हौ, बड़े सुकुवाँर हौ ।"
"बचवन के मामा तुम, बड़ेन के सार हौ ।"

शुद्ध हास्य में गोपाल प्रसाद व्यास का स्थान उपेक्षणीय नहीं । उनकी 'अजी सुनों' हास्य-भरी होने पर भी कभी कड़ुआ आघात नहीं करती । परन्तु, उनकी सभी रचनाओं को वीभत्सता से मुक्त कहना ठीक न होगा । आपकी रुचि धीरे-धीरे नारी सम्बन्धित सेक्स भावना में केन्द्रित होती जा रही है । बेढब का हास्य भी अब अपना व्यंग्य धीरे धीरे खोता जा रहा है—

"क्या चांदनी रात है । मानो फैला भात है ।"

आज के हास्य की भाषा को हम भूल नहीं सकते हैं । अवधी में एक ग्रामीण वातावरण का सहयोग होने से वाचक में कुछ थोड़ी सी अनभिज्ञता आ जाती है । विकसित वर्तमान युग की प्रत्येक वस्तु को ग्राम्य प्राचीनता

की भूमि पर खड़े होकर देखने से एक प्रकार का शिष्ट हास्य उत्पन्न होता है। साथ ही वाचक अपनी अनभिज्ञता के मिस तीखे से तीखा व्यंग्य भी कस जाता है। रमई काका की 'साहेब ते भ्यॉट', 'नौकरी पहिल सहर मां कीन' और 'हम कहा यहौ ध्वाखा हुइगा' इसके उपयुक्त उदाहरण हैं—

"कीन जब फाटक बीच पयान,
कुकुरवा साहेब का खउख्यान।
रहै यू वही तना का ठीक,
जइस फूनूगिलास मां दीख।
ठिठुकि कै पछरेन पांव हटाय,
कुकुरवा तरियायिस हउहाय।
हाथ ते पुटकी लिहिस छिनाय,
दिहिस सब सेतुवा भुइं बिथराय।
अंगउछौ डारिस चटपट नोच,
रहेन हम ठाढ़े ठाढ़े सोच।
यहां का सधी कोहू का हेत,
घूस जहँ कूकुर तक लइ लेत।"

तथा—

"बात गँवई गाँवन की छोड़, हिआँ सहिबै हाँकत हैं घोड़।
यू सहरन के रीति रेवाज, न जानत रहेन जान अब लीन।
नौकरी पहिल सहर माँ कीन॥"

तथा—

"ग्वांछन का कीन्हें सफाचट्ट,
मुँह पउडर सिर केस बड़े।
तहमद बाँधे अण्डी ओढ़े,
बाबू जी याकै रहैं खड़े।
हम कहा मेम साहेब सलाम,
उइ बोले चुप बे डैम फूल।
मैं मेम नहीं हूँ, साहेब हूँ,
हम कहा बड़ा ध्वाखा हुइगा॥"

जी० पी० का अधिकांश हास्य गँवार पात्रों की अनभिज्ञता एवं आंचलिक अवधी के सम्भाषणों पर निर्भर है। *

---

* आलोचना-खण्ड के अन्तर्गत भाषा-संदर्भ में इसका विवेचन होगा।

काव्य समाज की वस्तु है। कवि के हृदय की बात यदि समान रूप से पाठक के लिए उत्तेजक नहीं तो वह कलात्मक होते हुए भी सामाजिक अधिकार से च्युत है। पाठक की माँगें आती ही जाती हैं, चाहे साहियत्कार उस स्तर तक आए या न आए। पर, कवि लोक प्रिय तभी होता है जब वह जन-जीवन के सम्पर्क में आ जाता है। आज की भ्रमित जनता की माँगें तामसी और नग्न विलास तथा समस्त बंधनों के प्रति विद्रोह की कामना रखती हैं। सिने-जगत का कोने-कोने में व्याप्त साहित्य हास्य के मिस घोड़ा-घोड़ी का प्रेम दिखाता है। 'हीरो' और 'हीरोइन' के नाम पर उच्छृंखलता और विद्रोह का पाठ पढ़ाता है। सितारे और तारिकाओं का परदा डालकर मानसिक भ्रष्टाचार का राग भरता है। इसी भाँति, जनता के नायक और उन्नायक बनने का मनोरथ लेकर कवि उसकी रुचि का परिष्कार करना नहीं चाहता। वह नतमस्तक, स्वयं, नीचे स्तर पर उतर कर, अश्लीलता और उन्माद की ऊंची-ऊंची अट्टालिकाओं के सन्मुख, उनकी शरण ग्रहण करने को, ढार चुका है। इस दिशा में सिनेमा, संगीत-सम्मेलन इत्यादि पर हास्य रस की सुन्दर कविताएं लिख कर पं० वंशीधर शुक्ल ने अपनी स्वस्थ प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

आज के युग में हास्य और व्यंग्य की आवश्यकता है और अतीव आवश्यकता है। उसे प्रभावोत्पादक और व्यापक बनाने के लिए पुष्ट और परिष्कृत करना होगा। और, परिष्कार केवल भाषा के क्षेत्र में ही न करके भाव क्षेत्र में भी करना होगा। हास्य लेखकों को देश-कल्याण को दृष्टि में रखकर अपनी हास्य-भावना को स्वस्थ शिष्ट और संयत रखते हुए व्यक्तिगत आक्षेपों से ऊपर उठाना होगा। तभी, साहित्य और समाज की समुन्नति और अभ्युदय संभव है।

द्वितीय खण्ड

जी० पी० के साहित्य
की
पृष्ठभूमि

१—जी०पी० के समकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, तथा

२—जीवन परिचय ।

१

जी० पी० के समकालीन साहित्य

की

प्रमुख प्रवृत्तियाँ

साहित्य-समाज-न्याय की सर्वमान्यता के कारण, किसी भी साहित्य अथवा साहित्यकार का अध्ययन पूर्ण और सम्यक् नहीं माना जा सकता, जब तक उसका समसामयिक सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा अन्य महत्त्व-पूर्ण परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में परीक्षण न किया जाय। इन परिस्थितियों में निरन्तर परिवर्तन होते रहने पर भी, इनकी मूल प्रेरक प्रवृत्तियों से कोई भी साहित्य-सृष्टा पूर्णत: अप्रभावित नहीं रह सकता। अस्तु, युगीन परिवर्तन-शील वातावरण का पूर्वा पर जी० पी० के साहित्यक-विकास में योगदान देखना आवश्यक है। और इसके लिए, सर्व प्रथम, उनके अभ्युदय-काल की विशेषताओं पर ध्यान केन्द्रित करना होगा।

जी० पी० ने सन् १६११ ई० में साहित्य-प्रांगण में पदार्पण किया था। तभी, देश के कोने-कोने में सम्राट् जार्ज पंचम के राज्याभिषेक का उत्सव मनाया जा रहा था। अंग्रेजी राज्य-सत्ता अपने पूर्ण प्रभुत्व और प्रभाव से प्रतिष्ठित थी। समाज का समृद्ध और संभ्रान्त व्यक्ति आँग्ल-संस्कृति के अन्धानुकरण में अपना गौरव और ऐश्वर्य ढूँढ़ता था। अपने नए ज्ञान और विज्ञान, शासन-प्रणाली और साहित्य के द्वारा पाश्चात्य संस्कृति अपने प्रभाव का विस्तार करती जा रही थी। जो अपनी प्राचीन आस्थाओं में अनुरक्त था, वह 'दकियानूस' और 'पोंगा' था, और इसलिए व्यंग्य तथा उपहास का सस्ता लक्ष्य बिन्दु।

मैकाले की नीति ने, शिक्षा संस्थाओं में अंग्रेजी का पठन-पाठन अनिवार्य करके, हमारी रग-रग में विदेशी विचार धाराओं को भरने में बहुत

कुछ सफलता पाई थी। पाश्चात्य भौतिकवादी संस्कृति का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा था कि किसी भी वस्तु का अंग्रेजों से संबंध होने के कारण हम उसका महत्व, गौरव, और मूल्य अधिक आँकते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एक नवीन सांस्कृतिक संघर्ष आरम्भ हुआ था। जीवन और काव्य के बीच नवीन चेतना का संचार हो रहा था। इसके द्वारा साहित्य में एक चेतनता और उसके साथ ही एक भौतिक आस्था का उदय हो रहा था। भौतिक मूल्यों को अपनाते हुए भी, आध्यात्मिकता को त्यागने की कुछ आवाजें सुनाई अवश्य पड़ती रहीं, फिर भी, यह नवीन धारा ही अधिकतर मान्य हुई। भौतिक सुख-समृद्धि से लिप्त मानव जीवन के क्षण-क्षण में 'आनन्द' का आकांक्षी था। फलस्वरूप, हास्य-विनोद का भी मूल्य पहिचाना गया। सापेक्ष दृष्टि से इसका उत्कर्ष भी किसी रस से कम नहीं था।

ईसाई सभ्यता ने हमें 'बृटिश रूल' की ओर उन्मुख किया था और उसकी प्रेरणा से काँग्रेस का जन्म हो चुका था। गाँधीं का स्वतन्त्रता-संग्राम धीरे-धीरे जनता के बीच अपना विद्रोह सुलगा रहा था। जन-मानस की विद्रोही आत्मा के लिए, साहित्य में, व्यंग्य सर्व सुलभ अस्त्र था।

ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज, वेद-समाज और आर्य-समाज सदृश धार्मिक संस्थाओं का संगठन ढीला पड़ता जा रहा था, क्योंकि, जनता समझने लगी थी कि जातीयता के धरातल पर खड़ी संस्कृति कभी एकता का बल नहीं पा सकती। बिना राजनैतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता के सामाजिक उत्थान कुछ नहीं कर सकता। फलस्वरूप सभी नेता राजनैतिक क्षेत्र में उतर आए। धार्मिक आन्दोलन शान्त होते गए। केवल आर्य समाज थोड़े बहुत खण्डन-मण्डल में प्रवृत्त अवश्य रहा। परिणाम स्वरूप, हास्य-व्यंग्य की अधिकांश रचनात्मक प्रतिभा धर्म एवं समाज के उपहास में स्फुरित होती रही।

पूर्व-साहित्य में हास्य के प्रसंगों में राष्ट्रीयता की झलक आती अवश्य थी, किन्तु भारतेन्दु युग से एक अन्य भावना कवि प्रयत्न से उभर रही थी। अनुरंजन अथवा धार्मिक प्रचार के अतिरिक्त जीवन की समस्याओं पर कवि कुछ कहते हैं, जो साहित्य को व्यापक बनाता है। रस-सिक्त मात्र साहित्य में अब विचार का बल बढ़ता जा रहा था। हास्य अब जीवन के अविसंवादी तथ्यों एवं विडम्बनाओं के उद्घाटन में प्रवृत्त होने लगा।

जनता तनिक अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई थी, तभी सन् १६१४ ई० का विश्व-समर, अपनी प्रचण्ड भीषणता लेकर, छिड़ गया। मँहगी में

जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं के अभाव तथा सामाजिक सुरक्षा के नाश की विराट् आशंका से भयभीत, दलित, जनता ने अपनी प्राचीनतम आध्यात्मिकता की डोर पकड़ी। परन्तु, यह भावों का अन्तर केवल एक प्रतिक्रिया के रूप में आया था।

नीति-कथन की ओर द्विवेदी युग की एक रुझान थी। काव्यत्व चाहे कम हो पर सूक्ति की झलक आवश्यक थी। 'आलोचक के कर्तव्य' ऐसे शीर्षकों पर कविताएं लिखी गई। धीरे-धीरे उपदेशात्मक कथन और वाह्य चित्रण के प्रति अभिरुचि आरम्भ हुई। इसका बहुत कुछ कारण रवीन्द्र नाथ ठाकुर की रचनाएँ थीं। उनकी अन्योक्ति पूर्ण शैली ने भावाभिव्यक्ति का एक नया द्वार खोल दिया। हिन्दी में उक्त शैली का अनुकरण हुआ। बदरी नाथ भट्ट, मुकुटधर पाण्डेय और मैथलीशरण गुप्त प्रभृति कवियों ने इसे अपनाया। व्याख्यात्मक, दार्शनिक और प्रेम पूर्ण काव्य सामने आया। अनेक छोटे-छोटे मुक्तक या स्फुट काव्य, जिन्हें प्रगीत मुक्तक की संज्ञा दी गई है, रचे गए। वर्णनात्मक और आख्यानात्मक के स्थान पर गीतात्मक शैली आई और इसने एक नए युग को जन्म दिया, जिसमें रहस्यवाद और छायावाद पल्लवित हुए।

सूफ़ी और सन्त कवियों में पली रहस्यवाद की भावना एक नवीन विन्यास लेकर आई। इसमें और छायावाद में गीतात्मक शैली, संगीतात्मकता, प्रेम संगीत और प्रतीकात्मकता का जोर रहा। इन गीतों पर स्पष्ट रूप से अंग्रेजी 'रोमान्टिसिज्म' (Romanticism) की छाया थी। प्रेम की अभिव्यक्ति में एक आदर्शात्मक दिव्यता का रंग चढ़ा दिया गया। वासनात्मक रूप छिपा कर पारलौकिक सत्ता से सम्बन्ध जोड़ कर रीतिकालीन स्थूलता विलुप्त हो गई। प्रकृति और प्रेम काव्य के मुख्य वर्ण्य विषय हो गए।

जब हम वाह्य संसार में व्याप्त सत्ता को ही अपने भीतर भी पाने का प्रयास करते हैं तभी रहस्यवाद के क्षेत्र में पदार्पण होता है। प्रेम के माध्यम से उस परम सत्ता से एक्य की भावना रहस्यवाद का मूल स्तम्भ है। लौकिक प्रेम में दिव्यता भर देने से कहीं कवि प्रियतम के मिलन से आत्म-विस्मृत हो जाता है, उसकी चेतन इन्द्रियाँ सुप्त हो जाती हैं और उसका चिर मिलन प्रात: के स्वप्न सा रह जाता है। और, कहीं उसे उस प्रशांन्त मिलन में पूर्व-भुक्त सुख की झाँकी मिलती है—

"गौरव था नीचे आए,
प्रियतम मिलने को मेरे।

मैं इठला उठा अकिंचन,
देखे ज्यों स्वप्न सबेरे ।।" (प्रसाद)

तथा—

"कैसे कहती हो सखि सपना है,
वह महा-मिलन की बात,
भरे हुए अब तक फूलों में,
मेरे आँसू उनके हास ।" (महादेवी)

इन रहस्यवादी और छायावादी गीतों में प्रकृति कहीं साधारण वाह्य रूप में आई और अधिकतर जीवन से घुलमिल कर मानवीय भावों का अभिनय करती हुई । वह रहस्यानुभूति का एक अंग और उपकरण बन गई । प्रकृति के अंग मानवी भावों के प्रतीक बने—

"विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी, स्नेह-स्वप्न-मस्त,
अमल कोमल तनु तरुणी, जुही की कली ।" (निराला)

यही नहीं, अमूर्त भावनाओं का मानवीकरण भी प्रकृति चित्रण से ही चला । इसकी चर्चा हम 'जी० पी० की प्रमुख रचनाएँ' के अन्तर्गत करेंगे, क्योंकि जी०पी० के 'पत्र-पत्रिका-सम्मेलन' पर इस शैली का गहरा प्रभाव पड़ा है । यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि गद्य-साहित्य ने भी छायावाद और रहस्यवाद की प्रतीकात्मक शैली अपनाई । द्विवेदी युग से पूर्व प्रचलित गद्य-गीतों का इस शैली से पर्याप्त साम्य है । लोकोत्तर आनन्द में मग्न कर देने वाली भावात्मकता को ही लेकर राय कृष्ण दास के 'साधना', 'छायापथ' और 'प्रवाल' तथा वियोगी हरि के 'भावना' और 'अन्तर्नाद' लिखे गए थे । द्विवेदी युग के निबन्धों में भी ऐसा स्पष्ट है । 'चित्रलेखा' उपन्यास बहुत कुछ छायावादी है ।

आधुनिक साहित्य में उपन्यासों की भरमार होने लगी । इनका समुचित उत्थान और परिष्कार हुआ । हिन्दी की ओर अनेक अन्य भाषा-भाषी क्षेत्र के लोगों का ध्यान देवकी नन्दन खत्री के 'चन्द्र कान्ता' ने आकृष्ट किया था । इस बीच अनेकानेक अन्य उत्कृष्ट उपन्यासों की रचना हुई । परन्तु, प्रारम्भिक उपन्यास अधिकतर बंगला से अनूदित थे । इन अनुवादों के साथ-साथ कुछ चटपटापन भी आता रहा । 'चतुर चंचला' 'भानुमती' 'नएबाबू' 'बड़ा भाई' 'देवरानी जेठानी' 'दो बहिन' 'तीन पतोहू' और 'सास पतोहू'

की शैली मनोरंजकता लिए हुए थी। बहुत कुछ ऐसे ही साहित्य से प्रेरणा पाकर स्वतन्त्र रूप से हास्य-रस के उपन्यास-निर्माण की रुचि लेखकों में उद्दीप्त हुई होगी, यह हम कदाचित कह सकते हैं।

गद्य-साहित्य में द्विवेदी युग से तीन बड़ी महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश हुआ। एक, शुद्ध साहित्यकता के अतिरिक्त गहन इतरेतर विद्याओं का विश्लेषण आरम्भ हुआ। स्वयं द्विवेदी जी की 'सम्पत्ति शास्त्र' इसका प्रमाण है। दूसरी बात, साहित्य में मनोविज्ञान का योग था। समस्त गद्य-क्षेत्र में विश्व और जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने-परखने का प्रयत्न किया गया। विशेष रूप से, कहानियों में बड़ा ही सजीव मनोवैज्ञानिक चित्रण किया जाने लगा। कौशिक की 'ताई', गुलेरी की 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का काँटा', जैनेन्द्र की 'खेल', राधिका रमण प्रसाद सिंह की 'कानों में कंगना' और प्रेम चन्द की लगभग सभी कहानियाँ इसका उदाहरण हैं। जी० पी०, अन्नपूर्णानन्द एवं अन्य हास्यपूर्ण कहानीकारों को भी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का सम्बल प्राप्त हुआ।

तीसरी विशेषता, पं० राम चन्द्र शुक्ल द्वारा आलोचना का परिष्कार था। साहित्यिक मीमांसा और अन्वेषण को एक गवेषणात्मक दृष्टि का बल मिला। वास्तव में साहित्यिक अनुसन्धान कही जाने योग्य कृतियाँ आचार्य जी से ही चलीं। साथ ही शुक्ल जी के सयंत-संभ्रान्त व्यंग्य के छींटों ने आलोचना-प्रत्यालोचना के क्षेत्र में कटु व्यंग्य में प्रविष्ट लेखकों के लिए एक आदर्श समुपस्थित किया।

समालोचना के क्षेत्र में, हास्य के परिष्कार की ओर ध्यान से, मीठे और शिष्ट व्यंग्यों की ओर अधिक रुचि दिखाई गई। उर्दू की शैली के आग्रह पर पंडित महावीर प्रसाद जी स्वयं अरुचिकर आक्षेपों के दल दल में फँस चुके थे तथापि उनकी और विनोदप्रिय बाबू बाल मुकुन्द गुप्त की चुहलें निस्सन्देह एक परिष्कार की ओर संकेत करती हैं। 'भाषा और व्याकरण' पर लिखते समय द्विवेदी जी ने, 'अनस्थिरता' शब्द का प्रयोग कर दिया था। गुप्त जी ने 'आत्माराम' के नाम से व्यंग्य बाण छोड़ा। इसका उत्तर बड़े रोचक ढंग से द्विवेदी जी ने 'कल्लू अल्हइत' के नाम से 'सरगौ नरक ठेकाना नाहिं' में दिया था।

द्विवेदी युग में आख्यानों को एक नवीन रूप में प्रोत्साहन मिला। इनका आधार लेकर 'जयद्रथ-बध' सदृश अनेक खण्ड काव्यों का निर्माण हुआ। आकर्षक सम्वादों का सौन्दर्य इस युग की अपनी विशेषता है। फलतः,

सार्थक, श्लेषात्मक, शब्दावली (Words) पर आश्रित हास्य का समुन्नत होना स्वाभाविक था।* उत्कृष्ट सम्वादों का जी० पी० के नाटकों में स्वाभाविकता और भाषा दोनों दृष्टियों से अपना महत्त्व है।

इस समय की हिन्दी में जो सबसे अधिक ध्यान देने की बात थी, वह यह कि अंग्रेजी के विद्वान और शिक्षित वर्ग के लोग भी उसके उत्थान में हाथ बटाने लगे। इसी कारण, ऐसी रचनाएँ भी होने लगीं जिनके रसास्वादन हेतु पाठक को बहुज्ञ और बहुश्रुत होना अनिवार्य था। हास्य की द्युति जो गुलेरी जी की कृतियों में छिटकी उपलब्ध होती है, वह संयत और मर्यादित होने के साथ ही पाठक में एक पुष्ट और अर्जित भावभूमि की अपेक्षा रखती है। उनके लेख 'कछुआ धरम' और 'मारेसि मोहिं कुठाऊँ' जन साधारण की वस्तु नहीं हैं। जी० पी० के अधिकांश प्रारम्भिक साहित्य का प्रयोजन शिक्षित विद्यार्थी वर्ग मात्र का मनोरंजन था।

इस युग में नवोनता और मौलिकता के लिए कवि विशेष सतर्क रहते थे। इसीलिए छन्दों की नवीनता आरम्भ हुई। उर्दू और संस्कृति के अतुकान्त छन्दों की भरमार हो गई। हरिऔध जी का 'प्रिय प्रवास' खड़ी बोली में सामने आया। खड़ी बोली केवल गद्योपयोगी है ऐसी धारणा लुप्त हो गई। ब्रज को हटाकर खड़ी बोली पद्य में भी अपना सौन्दर्य दिखाने लगी। खड़ी बोली का इतना सस्कार और परिष्कार हो चुका था कि वह जीवन की व्यापक व्याख्या की भाषा बन गई थी। वह केवल रस और मनोरंजन की नहीं, वरन विचार-विमर्ष की वाणी बनी। 'प्रिय प्रवास' ने अतुकान्त शैली द्वारा शृंगारिक रचना में देश-भक्ति और कर्तव्य को भावना भरनी चाही। देश सेविका के रूप में राधा की उद्भावना परम्परागत कृष्ण-कथा में की गई। अभिव्यंजना एवं अप्रस्तुत वस्तु-विधान की नवीनता आई। इसी शृंखला में गुप्त जी का 'साकेत' और प्रसाद जी की 'कामायनी' थी। विचारों से अधिक सम्बद्ध होने के कारण संपुष्ट खड़ी बोली में हास्य को एक संतोषप्रद भाषा का सुचारु माध्यम उपलब्ध हुआ।†

प्रथम महायुद्ध के समाप्त होने पर जनता ने कुछ ही चैन की साँसें ली थीं कि स्वतन्त्रता के आन्दोलन ने पुन: उसे संघर्ष में डाल दिया।

* देखिए पूर्व उल्लेख पृष्ठ १६।

† देखिए पूर्व उल्लेख पृष्ठ ३७।

बीसवीं शताब्दी से पूर्व राजनैतिक क्रान्ति जो हिन्दी में हुई वह पूर्णतः राष्ट्रीय नहीं। बृटिश शासन के प्रभुत्व से डरे लोग बहुत कुछ कह नहीं पाते थे। कुछ लोकगीत और प्रादेशिक साहित्य ही में गदर की चर्चा मिलती है। एक ओर बृटिश शासन का विरोध होता था और दूसरी ओर उससे प्राप्त सुख सुविधाओं का गुणगान। यह हम केवल कवियों की कायरता और चाटुकारी नहीं कह सकते। इसका कारण ईसाई मत का प्रचार और उनसे प्राप्त नवीन ज्ञान तथा विज्ञान भी था। उन्होंने अनेक चिकित्सालय और शिक्षा संस्थाओं को जन्म दिया था। यहाँ तक, अंग्रेजी राज्य का आगमन ईश्वर की कृपा के रूप में माना गया। परन्तु अब गाँधी के आन्दोलन ने कवियों में राष्ट्रीयता को ऊंचे स्वर से गाने का साहस दे दिया था। गुप्त जी की 'भारत भारती' सम्पूर्ण राष्ट्रीय उत्साह लेकर लिखी गई। इससे रहस्यवादी और छायावादी कवि भी अछूते न रह सके। निराला 'भारति जय विजय करे' और प्रसाद—

"हिमालय के आँगन में उसको,
प्रथम किरणों का दे उपहार,
ऊषा ने हँस अभिनन्दन किया,
और पहनाया हीरक हार।
जगे हम लगे जगाने विश्व,
लोक में फैला फिर आलोक,
व्योम तम पुंज हुआ तब नाश।
अखिल संसृति हो उठी अशोक।"

तथा—

"हिमाद्रि तुंग श्रृंग से,
प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयं प्रभा समुज्वला,
स्वतन्त्रता पुकारती।
अमर्त्य वीर पुत्र हो,
दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पन्थ है,
बढ़े चलो, बढ़े चलो।"

सदृश देश-भक्ति से सिक्त गीत गाने लगे। राष्ट्रीयता पर बहुत कुछ राजनैतिक पुट चढ़ा दिया गया। इन राष्ट्रीय विचारों की प्रतिध्वनि गद्य साहित्य में भी दिखाई पड़ी। उग्र जी की कहानी 'उसकी माँ' इसका अच्छा

उदाहरण है। हास्य-प्रसंगों में भी ऐसे अनेक स्थल मिलेंगे। जी० पी० का प्रहसन 'हजामत' ऐसा ही है।

इन राष्ट्रीय गीतों में एक बात ध्यान देने की है। यहाँ की प्राचीनता की नींव कच्ची न थी। अस्तु, साहित्यकार कभी पुरातन संस्कृति को सोचता था और कभी अपने समाज का ढाँचा। दिनकर की 'हिमालय के प्रति' कविता में यह तथ्य स्पष्ट रूप से प्रकट है। गद्य के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद के नाटकों ने अतीत का इतिहास जगाया और, बहुत कुछ उसी भाँति, भगवती चरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा' ने भी। आगे चल इस प्रकार के उपन्यास वृन्दावन लाल वर्मा के रहे। वर्त्तमान समाज की आलोचना में बाल-विवाह, छुआछूत आदि पर व्यंग्य हुए। और, नगण्य होते हुए भी ऐसे विचार मिल सकते हैं जो दूसरी जातियों के प्रति अश्रद्धालु हैं। अभी तक हास्य-प्रहसन लिखे जाते थे, यथा श्री बलदेव प्रसाद मिश्र का'लल्ला बाबू'। भारतेन्दु के अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण स्वतन्त्र हास्य नाटक द्विवेदी युग में जी० पी० ने लिखने आरम्भ किए।

रहस्यवादी और छायावादी काव्य की अपनी सीमाएं थीं। यह काव्य जन जीवन से दूर केवल अर्न्तमुखी धारा का गीत हो गया। अपनी दासता के विरुद्ध लड़ती, अधिकारवंचित, जनता जीवन से तटस्थ रह कर क्षितिज के उस पार वीणा के टूटे तार सँभालने की नीति का अनुमोदन न कर सकी। बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान, माखन लाल चतुर्वेदी, मैथिली शरण गुप्त आदि अनेक कवि इसकी प्रतिक्रिया के रूप में सीधे ढंग से जनता की पुकार लेकर आए। स्वतन्त्रता का आन्दोलन महत्त्वपूर्ण था पर अपने में सम्पूर्ण नहीं। पहले आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था आवश्यक थी। इसके लिए एक समता की भावना बल पकड़ती गई। अस्तु, हमारे सामने कवियों का एक ऐसा दल आया जो विश्व से आन्दोलन का सम्बन्धं जोड़ते थे। ये केवल राष्ट्रीय नहीं वरन् संसार के समस्त देशों के बीच की दीवारें तोड़ने लगे। एक व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय भावना लेकर आए। ये कवि केवल दो वर्ग मानते थे, एक पीड़ित और दूसरा शोषक। जहाँ भी उत्पीड़न था, वहीं इनका विरोध-इन्हें प्रगतिवादी कहा गया। बहुत से, पंत एवं निराला सदृश छायावादी कवि भी इधर खिंच आए। यह बहुत कुछ मर्क्स और लेनिन से अभिभूत रूसी समाजवादी एवं साम्यवादी प्रचारों का परिणाम था। अपने पौरुष और परिश्रम से उत्पत्ति करने वाला वर्ग, केवल अधिकार पद पर आसीन होने के नाते एक सीमित समुदाय में केन्द्रित उपभोग न देख सका। इसीके फलस्वरूप श्रमिकों की हड़तालें आए दिन चलती रहीं, और, इनकी प्रतिध्वनि निरन्तर साहित्य में भी सुनाई पड़ती रही—

"देख कलेजा फाड़ कृषक दे रहे हृदय शोणित की धारें।
और उठी जातीं उन पर ही, वैभव की ऊंची दीवारें।
आहें उठीं दीन कृषकों की, मजदूरों की तड़प पुकारें।
अरी गरीबों के लोहू पर, खड़ी हुई तेरी मीनारें।
अश्वमेध की रानी दिल्ली,
वैभव की दीवानी दिल्ली!" (दिनकर)

इस प्रकार समाज का संघर्ष राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र में उतर गया। देश-प्रेम और आर्थिक दरिद्रता के निवारण की समस्या जनता का अधिकांश ध्यान उलझाए रही।

यथार्थ वाद को लेकर दार्शनिक वस्तु को काव्य में उक्त कवियों ने मूर्त्त किया। इनमें दो दल विशेष थे। एक समाजवाद और साम्यवाद के आधार पर आर्थिक दृष्टिकोण लेकर चला और दूसरा प्रगतिवादी कवि सेक्स को लेकर। पहिले वर्ग में रोटी का प्रश्न प्रधान रहा—

"क्या होगा गाकर अनन्त का,
नीरव औ मधुमय संगीत।
मलयानिल की उच्छ्वासों का,
अस्फुट अनुपम राग पुनीत।
कनक रश्मियों के गौरव से,
होगा क्या दुखियों का त्राण?
रुखी ही रोटी में जिसको,
है यथार्थ जीवन का प्राण॥"

देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था से पीड़ित, शोषित वर्ग की दुर्दशा का अंकन गद्य साहित्य में भी बहुत हुआ। भगवती प्रसाद बाजपेयी की 'हृदगति' और 'निदिया लागी' तथा जैनेन्द्र कुमार की 'अपना अपना भाग्य' कहानियाँ इस तथ्य को पुष्ट करती हैं। प्रेम चन्द का प्रचुर साहित्य इस संघर्ष से अनुप्राणित था। हास्य व्यंग्य पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। अन्नपूर्णानन्द ने अपनी एक कहानी में एक अमीर का चित्र उतारते हुए कुछ ऐसे नग्न सेवकों की चर्चा की है जो उसके थूकने के लिए अपने पेट पर कनस्तर बाँध कर चलते थे। राह चलते, अव्यवस्थित रूप से, थूकने पर अनेक बार पीक उनके पेट पर बहकर कनस्तर में जाती थी! इस प्रकार पूँजी-पतियों पर व्यंग्य प्रखर होता गया।

दूसरे वर्ग में सेक्स का द्वन्द्व उत्प्रेरित हुआ। इसकी हास्य सम्बन्धी चर्चा हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। इस साहित्य का प्रभाव जी० पी० की

नारी विषयक धारणा पर स्पष्ट रूप से प्रकट है। योनि पर आधारित महत्त्व-पूर्ण पद्य-साहित्य विशेषकर अंचल का रहा। इसमें स्थूलता ही अधिक दिखाई पड़ती है—

"तुम्हें न जाने दूँगी अब तो,
मेरे सरस बटोही।
देखूँ कैसे भाग सकोगे,
हे मेरे निर्मोही।
भ्रमित मृगी सी भटक रही मैं,
तृषा दग्ध चाहों में।
अब तो कस लो धृष्ट मुझे,
अपनी गोरी बाहों में॥"

उक्त साहित्य के सृष्टा यथार्थवाद पर बहुत जोर देते रहे। वे प्रगल्भ जीवन के गोपनीय से गोपनीय रहस्य खोलने में ही सन्तुष्ट दिखाई पड़े। मानव कामेच्छा की प्रबल श्रृंखलाओं में इतना बंदी है कि वह पशु संसार में भी उसकी तुष्टि खोजता है। इसका प्रकाशन पहाड़ी जी की 'हिरन की आँखें' ने किया। गद्य के क्षेत्र में इस प्रकार के साहित्य में यशपाल का नाम उल्लेखनीय है। 'मैं ढोंग नहीं कर पाता' की आड़ में जी० पी० ने भी अपनी रचनाओं में, यथार्थ के अंकन के मिस, ऊँचे-नीचे सभी भावों का समावेश किया।

जब हम इतरेतर साहित्य की छाया हास्य के प्रयोग पर दिखाते हैं, हमारा यह तात्पर्य कदापि नहीं रहता कि यह प्रभाव की क्रिया एक ही दिशा में उन्मुख रहती है। जिस प्रकार कभी समाज साहित्य का निर्माण करता है और कभी साहित्य समाज का, उसी प्रकार हास्य और इतरेतर साहित्य भी अन्योन्याश्रित हैं। जिस प्रकार हीन स्त्रियों और लम्पट पुरुषों के कुत्सित जीवन का अंकन अपने प्रहसन 'चौपट चपेट' में पं० किशोरी लाल गोस्वामी ने किया था, उसी प्रकार समाज के पाखण्डपूर्ण निन्दनीय और गोपनीय रहस्यों का उद्घाटन करने वाले पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र के उपन्यास 'दिल्ली का दलाल' 'सरकार तुम्हारी आँखों में' और 'बुधुवा की बेटी' लिखे गए। प्रगतिवादी साहित्य में सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि वह व्यक्ति के पतन का कारण समाज को मानता है। अपनी सामाजिक दयनीय और क्रूर परिस्थितियाँ ही हमें, इसके अनुसार, कुत्सित कर्मों की ओर प्रेरित करती हैं।

आगे चल कर कुछ कवि प्रगतिवादी और कुछ प्रगतिशील कहलाने लगे। स्वतंत्रता के बाद आर्थिक, मार्क्सवादी, और राजनैतिक कवि पृथक हो गए।

भौतिक वादी संघर्ष पर जोर देने वाले प्रगतिवादी रहे और समय के अनुरूप परिवर्तित नियमों में विश्वास रखने वाले प्रगतिशील ।

इधर तो स्वतंत्रता-संग्राम अपना समस्त पौरुष बटोर कर, जिसके साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता था, उस विशाल सत्ता के विरोध में खड़ा हो गया था, और, उधर द्वितीय विश्व-समर अपनी दानवता लेकर आरम्भ हुआ । युद्ध ने समाज की नैतिकता को बहुत भ्रष्ट कर दिया था । चोर बाजारी, घूसखोरी अधिकारी वर्ग के दुर्व्यवहार और अनाचार तथा धनाढ्य वर्ग के अबाध ऐश्वर्य और भोग में लिप्त जीवन ने समाज में हल-चल मचा दी थी । छल प्रवंचना, प्रतिशोध, विश्वासघात और स्वार्थरत जीवन इस काल का इतिहास है । स्वभावतः शासक वर्ग इस युद्ध में जनता का सहयोग न पा सका । जो कुछ जनबल और धनबल उसे उपलब्ध हुआ भी, शोषण और आतंक के बल पर । जनता और शासक का हृदय कभी मिल न सका । भर-पेट सूखी रोटी और लज्जा की रक्षा मात्र के लिए दो हाथ वस्त्र की माँग लेकर भारतीय अहिंसा के नारे लगाते रहे और प्रतिउत्तर में लाठी-गोली की बर्बरता तथा नजरबंदी और कारावास के कठोर दण्ड मिलते रहे ।

जब स्वातंत्र्य के भूखें भारतीय अपने उत्सर्ग और बलिदान से उस वर्ग विशेष की आँखें खोल सके, जो झूठे अधिकार, पदवी और सनदों की लालसा से अंग्रेजों का सहयोग देता था, अपनी संस्कृति को भूल, सुख-सम्भोग की आकांक्षा से अपने देश बन्धुवों का तिरस्कार करता जा रहा था, तभी अंग्रेजी शासन की चूलें हिल सकीं । शान्ति के आगे बर्बरता और अत्याचार ने मस्तक झुका दिया । पशुबल ने आत्मा की शक्ति से पराजय मानी । भारतीय आदर्श ने नवीन इतिहास का निर्माण किया । बिना हिंसा के देश स्वतंत्र हुआ ।

परन्तु यह स्वतंत्रता भी एकदम सुख-समृद्धि का स्वप्न सत्य में परिणत न कर सकी । देश के दो खण्ड हुए थे और लाखों शरणार्थियों के आगमन से आज के भारत में एक उथल-पुथल और नई समस्या का जन्म हुआ । दलित देश को उठाने में जनता की अपनी सरकार भी काँप गई । सतत लगन और अथक परिश्रम के होते हुए भी वह आदर और सम्मान न पा सकी ।

जी० पी० ने समसामयिक दो महायुद्ध और अधिकार की मतवाली जनता का प्रचण्ड राजद्रोह देखा है । बीच बीच में अनेक दुर्भिक्ष भी पड़ते रहे, जो युग की आर्थिक समस्या को और भी जटिल बना देते थे । उनका पूरा जीवन देश के संघर्षों का साक्षी है । लोगों के स्वार्थ बदलते रहे और राजनैतिक

पार्टियों की भाँति अनेक वाद आते गए। 'कम्यूनिज़म' के साथ मार्क्सवादियों का सम्बन्ध जोड़ा गया और गाँधी से सर्वोदय की भावना चली।

इटली के विद्वान क्रोचे (Croce) के पद चिन्हों पर चलने वाले कतिपय साहित्यकार किसी भी वस्तु को सुन्दर अथवा कुरूप नहीं मानते। उनके अनुसार शैली द्वारा ही उसका रूप निर्धारित होता है। अनगढ़ शैली में पोषित सुन्दर वस्तु भी भद्दी रहेगी। भावों की अभिव्यंजना पर ही विषय की सार्थकता निर्भर है। इन कवियों का न कोई विशेष वर्ण्य विषय होता है और न किसी विशेष तथ्य का प्रकाशन। इस प्रकार के साहित्य को अभि-व्यंजनावाद के नाम से अभिहित किया गया है।

कुछ कवि व्यक्तिगत विचार-धाराओं के माध्यम मे कविता कर रहे हैं। इनकी कविता में समाज की वर्त्तमान व्यवस्था के प्रति विद्रोह की झलक मिलती है। इन विचार धाराओं को साहित्य शास्त्री व्यक्तिवाद के अन्तर्गत मानते हैं।

इसी बीच प्रयोगवादी अपनी एक खिचड़ी अलग पकाए चले जा रहे हैं। प्रत्येक मानव के बोलने के 'लहजे' की भाँति वे युग का एक स्वर खोज रहे हैं। इनके कुछ प्रयोग अवश्य ही बहुत अच्छे हैं। जैसे 'छायावादी' इस नामकरण से प्रसन्न नहीं थे वैसे ही यह कवि भी 'प्रयोगवादी' कहलाना नहीं चाहते। यह धीरे-धीरे जनता से दूर जा रहे हैं, पर वे कह सकते हैं कि हम निजी अभिव्यक्ति करते हैं न कि 'फ़र्माइशी'। प्रयोगवाद की स्फूर्ति गद्य एवं हास्य के क्षेत्र में भी स्थान बना रही है इसका प्रमाण प्रभाकर माचवे की 'खरगोश के सींग,' सदृश रचनाएं हैं।

संसार की माया, छलना और प्रवंचना से दूर कतिपय हालावादी कवि केवल मस्ती का ही राग सुनाते रहे हैं। यह उमर ख़ैयाम की नीति का भारत में प्रादुर्भाव, युग की विशेषता है। हो सकता है इसका बीज सूफ़ियों की 'साक़ी' और 'प्याले' की चर्चा में रहा हो, पर इन कवियों ने उस भावना को एक नवीन वस्त्र पहनाया। जीवन के संघर्षों से निराश प्राणी मद की छाया चाहता है। हालावाद के कवि को न धर्म से मोह है न संसार से; वह केवल मस्त रहना जानता है, अलमस्त, बेसुध। सौन्दर्य, रस, विजया और यौवन सदैव उसे पुलकित करते रहते हैं। पीने वालों की उसकी कल्पना में कमी नहीं और न पीने का कोई निषेध। उसके उपवन की वसन्तश्री कभी समाप्त नहीं होती; पतझड़ वहाँ लेशमात्र नहीं भटकता—

"पैजनियों की झन्कार लिए,
उठते यौवन का भार लिए,
पीने वालों का प्यार लिए,
विजया की मंजु बहार लिए,

बन में बसन्त छवि छाई है।
नलिनी ने आज छनाई है,
भ्रमरावलि पीने आई है।।" (अभिराम)

भले ही हम इसे 'विजयावाद' 'हालावाद' अथवा 'शराबवाद', कुछ भी कहें, इसमें मस्ती की प्रधानता है। हालावादी प्रवृत्ति बच्चन से चली और उनकी 'मधुशाला' के पश्चात् ही जैसे शांत भी हो गई : हां, भग्नावशेष-रूप में अपना प्रतिबिम्ब अनेक रचनाओं पर डाल गई। सामाजिक पलायनवाद का साहित्यक प्रतिबिम्ब इस हालावाद में ही प्रधान रूप से देखने को उपलब्ध हुआ।

यह मस्ती हास्य-प्रांगण में एक विचित्र रूप धारण कर अवतीर्ण ज्ञात होती है। किसी भी सामान्य वर्ण्य अथवा गम्भीर वस्तु-स्थिति को लेकर हल्के ढंग से विनोदपूर्ण चित्र (Sketch) उतारे जाते हैं। कृष्ण चन्द्र, शरद जोशी, गोपाल प्रसाद व्यास, सआदत हसन मिण्टो, फ़िक्र तौसवी, शौकत थानवी तथा मुश्ताक अहमद यूसुफ़ी आदि के अनेक लघु चित्र इस श्रेणी में आते है। इन चित्रात्मक वर्णनों में प्रताप नारायण मिश्र की लघु निबन्धों की शैली पर रेखा चित्रों का आवरण चढ़ा भास होता है। इस दिशा में उर्दू शैली से अभिभूत लेखक वर्ग विशेष अग्रसर है। सम्भवत: यह सम्बन्ध इस साहित्य की मूल प्रेरणा में मधुबाला और मधुशाला के होने का परिणाम है।

जैसा हम पिछले अध्याय में हास्य के प्रसंग में कह आए हैं, हास्येतर साहित्य में आज विरोध, विद्रोह और उग्रता की शक्ति उतनी भयंकर नहीं जितनी हास्य के क्षेत्र में है। फिर भी आर्थिक दृष्टिकोण लेकर वह यदा कदा सामने आती रही—

"अरे चाटते झूठे पत्ते,
जिस दिन मैंने देखा नर को,
उससे सोचा क्यों न लगा दी,
जाय आग इस दुनिया भर को।" (नवीन)

इस प्रकार की उक्तियाँ जब हम देखते हैं तो विचार करते हैं कि इनका रचयिता उच्छृंखल होगा। किन्तु उसकी रचना को हम यह कह कर टाल नहीं सकते। यह भाव केवल कल्पना-प्रसूत नहीं। ऐसे दारिद्र्य का वीभत्स रूप वर्त्तमान वास्तविक जीवन में देखने को मिलता है।

उपर्युक्त विचार धाराओं में स्थापित्व किन्हें प्राप्त होगा, हम नहीं कह सकते। साथ ही यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जी० पी० का युगीन साहित्य इन्हीं रूपों में समिति नहीं रहा। भाव-परम्परा से हम यह भ्रम मान लेते हैं कि साहित्यकार क्रम से आए और वैसे ही भाव भी। परन्तु यह सभी समानान्तर चलते हैं। अस्तु, यह कह देना कि इस युग में प्राचीन साहित्यिक परिपाटी पर कोई रचना नहीं हुई, भ्रामक ही नहीं, वरन, अपरिपक्व बुद्धि का सूचन भी होगा। प्राचीनतम वीर काव्य की परम्परा में श्याम नारायण पाण्डेय की 'हल्दी घाटी' और 'जौहर' ऐसे ग्रन्थ लिखे गए। परम्परागत प्रणाली में पं० वंशीधर शुक्ल का आज भी भोला भगवान् महादेव का उपहास मिलता है। भक्ति-काल की सम्वेदना और भारतेन्दु युग की समानता की धारा आज फिर बढ़ती जा रही है। साहित्य अधिक से अधिक जन सम्पर्क में आना चाहता है। यह पथ बहुत कुछ आशा और प्रकाश से पूर्ण है, क्योंकि आन्दोलन और परिवर्त्तन के प्रदर्शन की अधिकाधिक भावना में, साहित्य को दीर्घायु प्रदान करने वाली, जगत् और जीवन के नित्य स्वरूप की अनुभूति, साहित्यकार नहीं जगा पाते हैं।

२

जीवन परिचय

चौक शिकारपुर, पटना के एक वकील, श्री बुलाकी लाल, के पुत्र श्री रघुनन्दन प्रसाद जी बिहार प्रान्त के सामान्य निम्न मध्यम वर्ग के कायस्थ-कुल में उत्पन्न हुए थे। अपने बाल्यकाल में ही पिता की अकस्मात मृत्यु से व्यथित, रघुनन्दन प्रसाद जी को जीविकोपार्जन निमित्त, पैतृक भूमि पटना त्याग कर छपरा में श्वसुर की छत्रछाया में आश्रय लेना पड़ा। यहीं, २३ अप्रैल सन १८६० ई० के दिन आपको पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई।

इस समय यह कौन अनुमान कर सकता था कि, अपने आगमन से एक निम्न मध्यम परिवार के एक छोटे से वृत्त को उल्लसित कर देने वाला यह नन्हा शिशु हिन्दी-साहित्य के व्यापक क्षेत्र को अपने हास्य के वारि विन्दुओं से ओत-प्रोत और आप्लावित कर देगा।

अभी इस बालक की आयु केवल ७ वर्ष की थी कि उसके पिता की नियुक्ति गोरखपुर के रेल के कार्यालय में साधारण कर्मचारीवत हो गई और वे अस्थायी रूप से वहीं जा बसे। यह बालक पिता के स्नेह से वंचित हो, अपने नाना मुंशी राम सहाय लाल जी की स्नेह भरी छाया में पहुंचा। इन दिनों मुंशी रामसहाय लाल जी हथुवा स्कूल में चित्रकारी (Drawing) के अध्यापक थे और उन्हीं की संरक्षता में जी० पी० की प्रारम्भिक शिक्षा जैसी-तैसी चलती रही।

सन् १६०० ई० में जी० पी० के पिता का पुन: स्थानान्तरण हुआ और वे गोण्डा चले आए। यहाँ आकर आपने, पुत्र-मोह-वश, जी० पी० को भी ननिहाल से बुला लिया। तभी दस वर्ष की आयु में नियमित शिक्षा का श्री गणेश हुआ। राजकीय विद्यालय (Government School) में जी० पी० ने प्रवेश किया।

इस समय जी० पी० बिहार से आये थे। अस्तु, उनका रहन-सहन, बोल-चाल, सभी कुछ उत्तर प्रदेश के अधिकांश निवासियों से पूर्णत: भिन्न था। न वे उस समय गोण्डा की अवधी का प्रयोग कर पाते थे, और, न उर्दू पर ही कुछ अधिकार था। स्वभावत: आप सभी की रीति-रिवाज और बोली ध्यान से समझने की चेष्टा करने लगे। इस प्रकार, अन्य सभी के व्यवहारों और भाषाओं के ज्ञान के साथ ही आपकी पर्यवेक्षण शक्ति (Observation Capacity) की अभिवृद्धि होती गई।

प्राय: देखा गया है कि साहित्यिक अभिरुचि रखने वाले कलाकार अपने बाल्यकाल में बहुत गम्भीर तथा अन्य बाल-सुलभ आमोद-प्रमोद से दूर रहते हैं। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण उदाहरण हमको कबीर में मिलता है। आनन्दातिरेक में चहक-चहक कर खेलने वाले बच्चों को बालक कबीर दूर से, किसी निर्जन वृक्ष की छाया में बैठकर, केवल उदासीन भाव से देखकर ही संतोष पा जाता था, और इसी कारण, वह उन चंचलता की प्रतिमूर्तियों की उपेक्षा और उपहास का भाजन बन गया था। हमारी कल्पना में ही, साहित्यकार की एक मूर्ति ऐसी बन गई हैं, जो संसार में रहकर भी, उससे पृथक ही अपना राग बजाती है – क्षीणकाय, अव्यवस्थित-वसन-धारिणी, निजी शृंगार से उदासीन, खोई खोई सी, भूली भूली सी, भावुकता, कल्पना और कोमलता की एक पुंजीभूत मंजूषा। यद्यपि साहित्य मनीषियों में इस रूप के अपवाद भी मिलेंगे, हमारी धारणा का मूल आधार एक तथ्य है। जो व्यक्ति अपनी शारीरिक निर्बलता से, बाल्यकाल में, अपने अन्य समवयस्कों की भांति, ऊधम से वंचित रह जाता है, उसकी अन्य मानसिक शक्तियां अधिक सजग, सबल, सचेष्ट और संगठित हो जाती हैं। अपने संगठित रूप में वे किसी एक विशिष्टता की ओर उन्मुख हो जाती हैं।* हमारे बीच, कुछ ऐसी ही परिस्थितियों में, कला के किसी एक अंग के, सफल आराधक का कभी कभी आर्विभाव हो जाता है।

जी० पी० भी अपने विद्यार्थी-जीवन के शैशव में बहुत निर्बल और गम्भीर थे। खेल-कूद में भाग नहीं ले पाते थे। विवशता स्वरूप आपके मनोरंजन का साधन केवल किस्से-कहानी अथवा वैज्ञानिक खेल ही रहे। जी० पी० के जीवन में इन्हीं साधनों से साहित्यिक प्रेरणा की प्रथम रश्मि आई।

तेरह वर्ष की आयु में, आठवीं कक्षा में पढ़ते हुए, जी० पी० के स्वाभाविक संकोच ने, साहित्य से एक अद्‌भुत कलाकार के प्रारम्भिक प्रयासों

---

* मनोवैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली में इसे (Sublimation) कहा गया है।

को छीन लिया। कहानियों का लिखना, और बिना किसी को दिखाए उन्हें नष्ट कर देना, एक साधारण सी बात थी। हम यह तो नहीं कह सकते कि वे कहानियां साहित्य की मणि-माणिक्य ही होतीं, परन्तु हां, वे एक मौलिक सृष्टा के आरम्भिक विकास के मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक अध्ययन में प्रवृत्त, विद्यार्थी के लिए, प्रथम आधार सोपान अवश्य स्थापित करतीं।

अंग्रेजी शासन में, राज्याश्रय तो दूर, भला हिन्दी से सहानुभूति रखने वाला ही कौन था! अंग्रेजी ही का बोलबाला था और वही शिक्षा-संस्थाओं में प्रमुख भाषा थी। मुग़ल साम्राज्य के भग्नावशेषों की प्रतीक स्वरूप, फारसी और उर्दू गौण भाषाओं का दायित्व निभा रही थीं। नवीं कक्षा तक दूसरी भाषा (Secondary Language) उर्दू और फारसी होते हुए भी अपनी संस्कृति की जिज्ञासा वश, जन भाषा हिन्दी के अस्तित्व मात्र के अभाव में, जी० पी० ने संस्कृत का अध्ययन आरम्भ कर दिया।

सन् १९०७ ई० में जी० पी० ने एन्ट्रेन्स (Entrance) की परीक्षा में सफलता पाई। इस वर्ष तक गोण्डा में ही एक निजी मकान भी बन गया था- जिसने स्थायी रूप से वहीं जीवन-निर्वहण का शिलान्यास किया।

आगे की शिक्षा की अभिलाषा से जी० पी० ने लखनऊ के सुविख्यात कैनिंग कालेज (Canning College) में विद्याध्ययन आरम्भ किया। यहाँ पारिवारिक नियन्त्रण कुछ ढीले पड़े। और, अपनी वर्षों से दबी रुचि का प्रथम प्रकाशन, आपने सन् १९११ ई० में विद्यालय की ओर से 'गोलागंज थिएटर हाल' में स्वलिखित प्रहसन में, 'टेसू' का अभिनय करके किया।

इस सौंदर्य और कला के रंगस्थल, अचरज और विडम्बना से पूर्ण, उद्यानों के नगर, लखनऊ में ही जी० पी० के जीवन की सौंदर्य पारखी प्रतिभा और साहित्यिक कला का विकास हुआ। पारिवारिक सुख-सम्भोग की वाटिका लगी। विडम्बना और नियति के प्रहार हुए।

लखनऊ-जीवन में, सन् १९११ ई० में, साक्षात् आनन्द में स्वच्छन्द प्रकृति के योग सदृश, प्रसन्न-वदना श्रीमती लल्ली देवी के साथ आपका विवाह सम्पन्न हुआ। हास्यानुरागिनी वधू की संगति ने आपकी मनमौजी सजीवता (जिन्दादिली) में और भी जीवन डाला।

अपने इस उपवन की हरीतिमा, सौरभ और प्रतिष्ठा का अभी कोई अनुभव भी न हुआ था कि अदृष्ट के क्रूर हाथों का प्रहार हुआ।

वड़े उत्साह उमंग से जी० पी० की बहिन का विवाह किया गया था। दूसरी नन्हीं बहिन की, चेचक के प्रकोप से, अकस्मात मृत्यु के कारण नव-विवाहिता की 'विदाई' स्थगित कर दी गई। फिर भी, हिन्दू परिवार के नेता की भांति पता नहीं पुत्री के हाथ पीले हो जाने से कितनी शान्ति और संतोष की प्राप्ति हुई होगी। किन्तु संसार सृष्टा की कुछ और ही इच्छा थी। गौने के पूर्व ही इसे विधवा बनना पड़ा।

इधर जी०पी० अपने विद्यालय के प्रोफ़ेसर ब्राउन साहब के प्रोत्साहन से नाटकों के अभिनय एवं निदर्शन में सक्रिय भाग ले रहे थे। लेखनी की सेवा में इतने व्यस्त हुए कि बी० ए० की परीक्षा में असफल हो गए। जी० पी० की असफलता एवं पुत्री के वैधव्य का एक विकट परिस्थित में अवसान हुआ। अनित्य जीवन की विडम्बना निर्दय नृत्य कर उठी। जी० पी० के हृदय पर बज्राघात हुआ। केवल ४३ वर्ष की अवस्था में, २३ नवम्बर, सन् १९१२ ई० को यकायक आपके पूज्य पिता का देहान्त हो गया। पारिवारिक उत्तरदायित्व जी० पी० के अनुभवहीन कन्धों पर बोझ बन गिरा।

इस कुअवसर पर ईश्वर की निर्मम माया ही कहें, इस निधन के तीन दिन बाद, आपको एक सहोदरा, योगिनी, का भार नियति ने और सौंपा।

जी० पी० के युग में रीति कालीन समृद्धि इतिहास की कहानी बन गई थी। अब साहित्यकों को आश्रय देने वाला कौन था ? और उधर नियति भी अपनी कठोरताओं से थकी नहीं थी। जीवन के प्रत्येक चरण पर एक न एक ठेस लगती ही गई। मनोविज्ञान की दृष्टि से, जब किसी पर आपत्ति पर आपत्ति आती ही जाती है; तब जीवन के अभाव उसके हृदय की हलचल की अभिव्यक्ति के लिए किसी न किसी कला का मार्ग खोल देते हैं। बरबस, जी० पी० साहित्य-क्षेत्र में डूबते चले गए।

जीवन के आघात जी० पी० का साहस भंग न कर सके। समस्त परिवार (जिसके सदस्य आपके अबोध अनुज, दो सहोदराएं, माता, पत्नी और नानी थे) के सभी प्रबन्धों का उत्तरदायित्व होते हुए भी इस सरस्वती के आराधक ने सन् १९१३ ई० में बी० ए० (B, A.) की परीक्षा में सफलता पाई। आपके विषय, अंग्रेजी, संस्कृत और दर्शन थे,* जिनका संयोग मात्र आपकी परिश्रमशील प्रकृति का द्योतक है।

---

* इस अध्याय के सभी तथ्य स्वयं जी० पी० द्वारा उद्घाटित हैं।

तत्पश्चात् धनोपार्जन की अभिलाषा से आपने, वेनामेकर गर्ल्स हाई स्कूल (Venamaker Girls High School), इलाहाबाद, में संस्कृत के अध्यापक का पद ग्रहण किया। साथ ही 'यूनीवर्सिटी स्कूल आफ् ला' (University School of Law) में पढ़ते भी रहे, और, सन् १९१५ ई० में वकालत की परीक्षा पास की।

सन् १९१५ई०में आप गोण्डा चले आए और वहाँ वकालत आरम्भ कर दी। इधर लगभग चार वर्ष से आपकी रचनाएँ भी निरन्तर छप रही थीं। भौतिक तुष्टि का माध्यम वकालत बनी थी और मानसिक शान्ति का साहित्य। यहीं से जी० पी० के जीवन में एक आंतरिक संघर्ष का बीज पड़ा। हृदय साहित्य का आलिंगन नहीं छोड़ता था और परिवार की आवश्यकताएँ उससे विमुख होने को बाध्य करती थीं। प्राय: हृदय की ही जीत होती थी। परिणाम स्वरूप आपकी वकालत नाम मात्र ही की रह गई।

जी० पी० की भावना जिसे समाज की क्रूरता समझती है, उसका बन्धन कभी मानने वाली नहीं। यद्यपि उस युग के लिए यह एक अनोखा और बड़े साहस का कार्य था, जी० पी० ने अपनी उस निरीह बहिन का, जिसने विवाहित जीवन की किंचित मात्र ऊष्मा का अनुभव नहीं किया था, समाज द्वारा आरोपित झूठा कलंक धो दिया। प्राचीनता की लकीर पीटने वालों में यह विधवा-विवाह उस नगर की दैनिक चर्चा का विषय था।

मानुषिक नियंत्रणों को हम चाहे जब भंग कर दें, परन्तु ईश्वरीय विधान अटल है। इस नवीन दम्पत्ति ने केवल एक कन्या लज्जावती, को जन्म दिया था कि उसे ससार-पथ में पूर्णत: अज्ञान, अपनी वेदना की अभिव्यक्ति में असमर्थ, माता, पिता दोनों, के स्नेह से वंचित होना पड़ा।

माता के इस आकस्मिक निधन के कारण लज्जावती को कभी स्नेह के अभाव का अनुभव न करना पड़ा : जी० पी० के अनुराग और श्री मती लल्ली देवी के सहज वात्सल्य ने उसकी पूर्ति की। जन साधारण के सम्बन्धों के अनुसार मातुल कहलाने वाले जी० पी० ने पिता के अनुरूप, लज्जावती का विवाह किया। परन्तु इस दिशा से भी उनकी आशायें छिन्न भिन्न हो गईं। एक पुत्र तथा दो पुत्रियाँ छोड़कर, लज्जावती का असमय देहावसान हो गया।

दूसरी सहोदरा, जुग्गल, का विवाह किया, जिसके चार पुत्र और पांच पुत्रियाँ हैं। अनुज भगवती प्रसाद का भी विवाह किया, जिनके एक पुत्र विजय कुमार हैं।

जी० पी० दम्पति के केवल एक कन्या, शकुन्तला, हुई। अकेली संतान होने के कारण अपने माता पिता का समस्त स्नेह शकुंतला ने पाया। जी०पी० के निजी जीवन की वही निधि थी। उसका भी विवाह डा० सदा शिव शरण के साथ बड़े उत्साह से किया गया। किन्तु अनेक ठेसों में एक का और योग हुआ और विवाह के अल्प समय पश्चात् उसका ४ जुलाई, सन् १६४१ई० को स्वर्गवास हो गया। श्री मती लल्ली देवी के लिए यह शोक असह्य था और आज तक उनका व्यथित हृदय फिर जी खोल कर हँस न पाया। इसी वर्ष १३ अक्टूबर को जी० पी० की वृद्धा माता का स्वर्गवास हो गया।

जी० पी० की सहन शक्ति और कर्मठता आपके जीवन के पारिवारिक अंग को कभी सुखमय न बना सकी। उसकी चुनौती तो उस महान शक्ति से थी जिसके आगे सभी मस्तक झुका देते हैं। बारम्बार चोट खाने पर भी आप इस पारिवारिक संग्राम में पीछे नहीं हटे। हिन्दू के लिए कन्या दान एक यज्ञ का अनुष्ठान है। एक कन्या का ही विवाह कर डालने पर लोग कहते हैं कि 'गंगा नहा लिए।' जी० पी० ने अपनी दो सहोदरा, भांजी और पुत्री का विवाह किया, और वह भी उस परिस्थिति में जबकि प्रायः नींव डालने के बाद ही आपके कल्पित भवन ढहते रहे, हृदय पर पत्थर रखकर किया। एक व्याघात के आँसू सूख नहीं पाते थे कि मृगतृष्णा सी आशा पुनः पुनः मुस्कराने का प्रयत्न करती। प्रति उत्तर में केवल निराशा ही हाथ लगती और बरबस जी० पी० को हँसने के क्षण केवल साहित्य-प्रांगण में मिले। यहीं जी० पी० का हृदय कुछ हल्का होता।

सन् १६४४ ई० में सरकार द्वारा आपकी नियुक्ति रेव्न्यू आफिसर (Revenue Officer) के पद पर हुई। धनोपार्जन की समस्या से कुछ विराम मिला : परन्तु पाँच वर्ष बाद ही अधिक आयु होने के कारण अवकाश ग्रहण करना पड़ा।

जी० पी० का हृदय वकालत के लिए पूर्णतः अनुपयुक्त था, अस्तु जीवन भर केवल लेखनी का आधार लेने की अभिलाषा बनी रही। परन्तु अनेक लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यिकों की भाँति इन्हें भी जीविकोपार्जन में इससे कुछ सहायता प्राप्त न हुई। निदान, जीविका का मुख्य साधन सर्वे-कमीशन

(Survey Commission) रहा। अपने पूज्य नाना से इसका कार्य सीखा था और फिर स्वयं निपुणता प्राप्त की। *

जी० पी० का जीवन जहाँ निराशाओं के विरुद्ध घोर संघर्ष की कहानी है वहीं हास्य विनोद की एक राशि भी। दैनिक जीवन में सदैव आप जी० पी० को प्रसन्न मुद्रा में पायेंगे। आपके सम्भाषण की प्रकृति ही परिवर्तित हो गई है। साधारण वार्त्ता के बीच बीच चुटकियों और टुकड़ों का प्रवाह भी मचलता रहता है।

जी० पी० से प्रस्तुत लेखक की प्रथम भेंट की कहानी सदैव उसके मानस पटल पर ताजी रहेगी। आचरण से सुशिक्षित, हृदय से उदार और वार्त्तालाप में मुंहफट उस हास्यावतार की भंगिमा मात्र देखकर हँसी आ जाना स्वाभाविक था। पीछे अल्मारी में भारतीय और विदेशी अनेक छोटी और मोटी पोथियों की पृष्ठभूमि सी लगी थी, जिसके आगे जी० पी० की लेखनी निरन्तर चलते रहने की साक्षी-रूप अव्यवस्थित लेखन सामग्री बिखरी थी। जिज्ञासु दृष्टि का केवल छोटा सा उत्तर था—'फ़ुरसत के चन्द मिण्टों में कुछ न कुछ लिखना ही पड़ता है'।

मेरी उनकी वार्त्ता का क्रम चल रहा था और समीप ही, सम्भवत: वकालत से संबन्धित दो चार व्यक्ति और उपस्थित थे—जिनमें एक ग्रामीण स्त्री भी थी। 'चोर के घर छिछोर' और 'मरदानी औरत' की चर्चा सुनते ही उससे न रहा गया और बड़े उपेक्षा भरे स्वर में बोली—'यू कुल हमरे तौ समझेन नाहीं परत। दयू जानै कौन वाधवाई बाँचत हौ।' 'मरदानी औरत' की व्याख्या छोड़कर तुरन्त जी० पी० का उत्तर आया—'यू कुल तुहरेंन लीला आय।' सभी लोग ठठा कर हँस पड़ं, यद्यपि वह बहुत गम्भीर हो गई।

प्रत्युत्पन्नमति जी० पी० की एक और विनोदपूर्ण घटना के उल्लेख का लोभ संवरण करना कठिन है। एक बार कलकत्ते में आप एक प्रतिष्ठित प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता के यहाँ बैठे थे। कुछ साहित्यकारों को सूचना थी कि आप पधारे हैं। भेंट करने को एक एक करके आने लगे। वास्तविक साहित्यकारों के हृदय में कोई भेद नहीं रहता है, क्योंकि उनकी भावुकता कोमलता के अधिकाधिक निकट पहुंचती जाती है। कोई आकर कहता—कहो भाई लतखोरी लाल' और कोई कहता 'अरे भई दिलजले क्या हाल है ?'

---

* इस विषय पर आपने अंग्रेजी में एक पुस्तक (Survey and Demarcation) भी लिखी।

तभी दो छात्राएं आईं और इन्हीं दो पुस्तकों की माँग की। विक्रेता महोदय ने उन्हें सूचित किया कि पुस्तकें अभी हैं नहीं, और शेष सभी लोग मौन साधे रहे। उनके चले जाने पर सभी के व्यवहार पर जी० पी० ने असन्तोष प्रकट किया। आपके विचार से उन्हीं दो छात्राओं की सच्ची सहानुभूति आपके साथ थी। ऐसा रूखा उत्तर उन्हें उस अवस्था में नहीं मिलना चाहिए था, जब कि जी० पी० से वे स्वयं भेंट कर सकती थीं। इस पर सबने एकमत से यही कहा कि वर्त्तमान युग की महिलाओं से अनायास ही परिचय कर लेना असम्भव ही नहीं, विपदाओं से मुक्त भी नहीं है। जी० पी० ने इसका विरोध किया और परिणाम स्वरूप आपकी परीक्षा की योजना बनी।

मार्ग पर बाहर निकलते ही एक सुसज्जित संभ्रान्त स्त्री देख पड़ी और सबने व्यंग्य किया कि—'इससे परिचय करो तो जानें।' जी० पी० तुरन्त उसके साथ हो लिए और एक जेवरों की दूकान में घुस गए। अनेक प्रकार के हारों को देखने के पश्चात जी० पी० ने, जब कि निकट ही वह भी आभूषण देख रही थी, उस अपरिचिता के हार की ओर संकेत करके कहा 'यह बहुत अच्छा लगता है। इस किस्म का हो तो दिखलाइए।'

महिला ने अनायास ही जिज्ञासा की—'किसके लिए आप ले रहे हैं?' 'अपनी श्रीमती जी के लिए' जी० पी० ने उत्तर दिया। उसने वह हार उतार कर आपके हाथ पर रख दिया और कहा 'इससे मिलाकर—भली प्रकार देख कर—ऐसा ही कोई ले लीजिए'। आगे की वार्त्ता में जी० पी० की स्वाभाविक प्रवृत्ति संयत न रह सकी—

'अरे! इसकी तो चमक ही जाती रही! मेरे हाथ में तो यह मिट्टी है! इसका सौन्दर्य वहीं था।'

'सबको एक से जेवर सूट (Suit) नहीं करते। आप श्रीमती जी का रूप रंग, डील-डौल बतलाइए : लाइए, मैं आपकी ओर से सलेक्शन (Selection) कर दूं।'

'आपसे छिपाना क्या? मगर डील डौल क्या बतलाऊँ!'

'आखिर'

'आपको देखकर उनकी याद हो आई।'

नारी की जन्मजात लज्जा से सिकुड़ कर उसके कपोलों पर संकोच की लाली बिखर पड़ी। आभूषण विक्रेता मुस्करा दिया।

परिणाम यह हुआ कि उसने जी० पी० का परिचय प्राप्त किया तथा जलपान का निमन्त्रण दिया। इस अल्प समय की घनिष्टता से जी० पी०

अपनी सफलता पर प्रसन्न अवश्य हुए परन्तु यह वह आज भी नहीं मानते कि महिलाओं से परिचय आपदा से मुक्त है, क्योंकि कुछ ही दिन बाद आपके पास २५०) की माँग के साथ हार का पार्सल आ गया !

साहित्यिक दृष्टिकोण से हम जी० पी० के जीवन को चार प्रमुख खण्डों में विभाजित कर सकते हैं। (१) प्रवेश (२) विकास (३) तारुण्य, और (४) संध्या।

(१) प्रवेश :

सन् १९११ ई० से सन् १९२० तक का वह समय है जब जी० पी० ने साहित्य में प्रवेश किया था। फ्रांस के विख्यात लेखक मोलियर का आप पर बहुत प्रभाव पड़ा था। मोलियर के आधार पर लगभग आपकी सभी रचनाएँ इसी युग की हैं। इस समय की विशेष उल्लेखनीय आपकी दो रचनाएँ हैं। 'उलटफेर' मौलिक नाटक हास्य का उत्तम उदाहरण है और कोमल भावनाओं के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से 'नोंक झोंक' अद्वितीय है। इस समय तक आपका अनुभव और प्रयोग अपरिपक्व थे अस्तु अन्य रचनाओं में न अधिक शैली की पुष्टता है और न कला का विकास। साधारण हास्योपयुक्त कथानकों को लेकर एक प्रकार से निर्जीव हँसी के उपकरण जुटाए गए हैं।

(२) विकास :

लगभग सन् १९२० ई० से सन् १९३० तक आपके विकास का युग था। इस समय की आपकी बहुमुखी रचनाएँ हैं और इनमें एक अनुभवी लेखक का कौशल लक्षित होने लगा है। इस समय की प्रधान रचना 'गंगा जमुनी' है। विश्व की विडम्बना के घात प्रतिघात से जी० पी० का हृदय विह्वल हो गया था। करुणा की एक अजस्त्र धारा का इसी युग से जी० पी० के हास्य में योग होता है। श्रृंगार अपने समस्त प्रेम, विलास और वासना आदि भृत्यों के साथ मुखरित होता जाता है। हास्य का उद्गम प्राय: शारीरिक वासना का आधार लेता जाता है।

(३) तारुण्य :

सन् १९३० ई० से सन् १९४० ई० तक का समय जी० पी० के रचनाकाल का तारुण्य है। इस युग में, जिस प्रकार जीव का यौवन किसी भी बाँध का सत्कार नहीं करता, जी० पी० की रचनाएँ भी हृदय की नैसर्गिक धारावत हैं। उच्छृंखलता की कमी नहीं। संयम का कोई अधिकार नहीं।

लेखक-रूप में आपकी प्रतिष्ठा हो चुकी थी। सम्पादकों से तथा हिन्दी जगत से आप अप्रसन्न थे ही, जो इच्छा हुई लिख डाला। इस समय की रचनाओं में हास्य के नाम पर शृंगार का वीभत्स रूप अवतीर्ण हुआ। इसी युग में आपकी प्रधान रचनाएँ 'दिलजले की आह' और 'लतखोरी लाल' संशोधन लेकर सम्मुख आईं।

इसी समय में धीरे धीरे जी० पी० की रचनाओं में गम्भीरता का पुट भी बढ़ता गया। हास्य का सृजन करते करते एक क्षण में गम्भीर हो जाने की प्रवृत्ति आई। 'साहित्य का सपूत' आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं।

इसी काल में आपने साहित्यिक क्षेत्र में अधिकाधिक भाग लिया। २० नवम्बर सन् १९३२ ई० में पटना कालेज के हास्य-रस सम्मेलन, ५ मई सन् १९३३ ई० में द्विवेदी मेला, प्रयाग, के काव्य परिहास सम्मेलन और ८ अक्टूबर सन् १९३३ ई० में परिहास सम्मेलन, कलकत्ता, में आपने सभापति का पद ग्रहण किया। हिन्दुस्तान एकेडेमी के प्रयाग सम्मेलन और गोण्डा के ६, फरवरी सन् १९३६ ई० में शिक्षक सम्मेलन के आपके भाषण विख्यात हैं। साहित्य की दृष्टि से जी० पी० के चरम उत्कर्ष का यही समय था।

'गंगा जमुनी' में जी० पी० करुणा का प्रदर्शन कर ही चुके थे। 'दिल की आग' में प्रेम-क्षेत्र की गहनतम् समस्याओं को लेकर चले। धीरे-धीरे हास्येतर विषयों की ओर अग्रसर होते जा रहे थे। 'हवाई लीला' आदि ऐसे ही उदाहरण हैं। नाटकों से भी मोह छूटता जा रहा था। 'विलायती उल्लू' के ढंग पर 'भय्या अकिल बहादुर' में उपन्यास लिखने का प्रयत्न किया।

संशोधित 'मिट्टी का शेर' के अतिरिक्त मोलियर का अनुसरण समाप्त कर दिया था। हाँ यत्र तत्र व्यंग्यादि में उसकी छाप आती रही। इधर बंगला के डी० एल० राय (D. L. Roy) और बंकिम बाबू की रचनाओं में पर्याप्त आनन्द मिला था। पं० रतन नाथ 'शरशार' की कृतियाँ, विशेषकर उनका 'खोजी का चरित्र', बहुत प्रिय रहीं। अंग्रेजी के लेखकों में, ओस्कर वाइल्ड, गोल्ड स्मिथ, शेरिडन और शा की रचनाओं से विशेष रुचि थी। कहीं कहीं तो जी० पी० का व्यंग्य पूर्णत: अंग्रेजी के इन लेखकों की जूठन है।

हिन्दी का जहाँ तक सम्बन्ध है, श्री किशोरी लाल गोस्वामी, श्री देवकी नन्दन खत्री तथा जासूसी पुस्तकों के लेखक, श्री गोपाल राम गहमरी, की रचनाएँ बहुत रुचिकर रहीं और जी० पी० की अनेक रचनाओं में उनकी पृष्ठभूमि है।

सन् १९४० ई० से सन् १९५० ई० तक का समय वह है जब जी० पी० ने प्रकाशकों से अप्रसन्न होकर प्रायः लिखना ही बन्द कर दिया था। इधर सम्पादकों से रुष्ट थे ही, सरकारी पद भी मिल गया, बस, साहित्य से मुख मोड़ने का धरातल पा गए। हृदय से अपने पद के उत्तरदायित्व के निभाने में लग गए। जनप्रिय अधिकारी होने के नाते आपके पदत्याग के अवसर पर अनेक संस्थाओं ने सरकार से आपकी सेवाओं का क्रम न तोड़ने की माँग की थी।* यह दस वर्षों की साहित्यिक उदासीनता जी० पी० को हमारे क्षेत्र से बहुत दूर कर देती है। सभी साहित्य-प्रेमियों को यह विश्वास हो गया था कि अब उन्हें गुदगुदाने वाले इस कलाकार के जीवन के इस अंक का पटाक्षेप हो गया।

(४) संध्या :

सन् १९५१ ई० से आपको आकाश वाणी का निमंत्रण मिला और अनेक वार्त्ताएँ भी प्रसारित हुईं। अनेक पत्रिकाओं के आग्रह से पुनः लिखना प्रारम्भ किया। तब से अनेक रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं तथा कुछ निकट भविष्य में छपने वाली हैं।

लगभग पाँच वर्ष से आपने एक नवीन प्रयोग आरम्भ किया है: सम्पादक को पत्र, पूर्व पत्र का उत्तर और उसी में आप कहानी का भी समावेश करते हैं।

कभी-कभी आग्रहवश साहित्यिक आयोजनों में भी सम्मिलित होना पड़ता है। २८ अगस्त १९५५ ई० को 'भारतीय संस्कृति संसद' कलकत्ता के भारतीय भाषाओं के 'हास्य सम्मेलन' में हिन्दी के हास्य प्रतिनिधि रूप में आपने भाग लिया।

जी० पी० का साहित्य में यह पुनरागमन, साहित्यिक जीवन की संध्या स्वरूप है। अब की रचनाओं में न वह भावों का वेग है और न वह यौवन

गोण्डा के वकालतखाने (Gonda Bar Association) में ४ जनवरी सन् १९४९ को इस आशय का प्रस्ताव स्कीवार किया गया था। कुछ अंश का उद्धरण उपयुक्त होगा—

" The members of the Gonda Bar Association, most respectfully, request the Government to retain the services of Sri G. P. Srivastava ... "

की मस्ती। हास्य का ढीला-ढाला रूप, अतीत के हास्य की धुँधली छाया सा, यत्र-तत्र दिखाई पड़ता है। आयु के बोझ से लेखनी करुणतम और गम्भीर हो उठती है। परन्तु जहाँ मध्यान्ह की चमकती, उज्ज्वल धूप के समान खिल-खिलाती हँसी का अभाव है वहीं ढलते सूर्य की सुनहली आभा की भाँति जीवन के अनुभव और दर्शन की कल्याणकारिणी अनुभूति भी।

हमको आश्चर्य तब होता है जब ऐसे हास्यप्रेमी और मिलनसार व्यक्ति से सहानुभूति रखनेवालों का कहीं पता नहीं चलता। मित्र-मण्डली के विषय में पूछने पर जी० पी० की सच्ची हृदय-वाणी ने उत्तर दिया—'हमारे मित्र कोई नहीं, सब मतलबी दोस्त हैं।' आपके विषय में ऐसा ज्ञात भी हुआ कि वास्तव में जी० पी० की किसी से घनिष्टता नहीं। बहुधा आपकी भेंट, नमस्कार और कुशल क्षेम तक सीमित रहती है। यदि स्वार्थवश कोई आगे बढ़ा भी तो 'जहाँ नाहीं रूख, तहाँ राड़ै रूख' के भाव से। अपवाद-स्वरूप, स्वर्गीय रायसाहब राम बिहारी वकील, के आप अभिन्न मित्र थे, और उनसे पर्याप्त प्रोत्साहन एवं प्रश्रय भी प्राप्त करते रहे। परन्तु, हाँ, अल्प संभाषण में भी हास्य का प्रतिबिम्ब पड़ ही जाता है।

सत्य के प्रकाशन में जी० पी० को तनिक भी संकोच नहीं होता, भले ही वह मर्यादा के बन्धनों को ढहा दे। साहित्यिक क्षेत्र में अपने परिचितों के विषय में आपने बताया—"श्री रूप नारायण पाण्डेय और प्रेमचन्द से एक वार भेंट हुई सब एक दूसरे की 'हाँ' में 'हाँ' मिलाते रहे। श्री दुलारे लाल भार्गव बातों से पेट भर देते थे। हाँ, पं० कृष्ण बिहारी, श्री शम्भूदयाल जी तथा श्री जगत मोहन लाल जी, सहपाठी थे और उनसे यदा कदा प्रोत्साहन भी मिला।"

जीवन के कटु अनुभवों ने जी० पी० को समाज क्या, सम्पूर्ण विश्व के विद्रोही के रूप में खड़ा कर दिया है। आपके साहित्य की शैली से हमारा ऐसा अनुमान होता है कि इसका शिल्पी अवश्य ही कोई मायावी जगत् की मोहिनी मधु-विथिकाओं में भटका, रसिक नायक है। परन्तु जी० पी० का जीवन स्वयं एक, विडम्बना है। हास्य के अवगुंठन के उघारने पर एक, संसारी प्रवंचना से खीझा, जीवन से उदास, अरमानों से निराश, आहों से भरे 'दिल जले' के दर्शन होते हैं। हास्य की अनुरंजिनी छाया के पार्श्व में संसार की समस्त संचरण-प्रणाली के प्रति तीखा क्षोभ है—'विष रस भरा कनक घट जैसे'—परन्तु यह विप उपचार की औषधि है, विनाश का बीज नहीं।

सन् १९४० ई० से सन् १९५० ई० तक का समय वह है जब जी० पी० ने प्रकाशकों से अप्रसन्न होकर प्रायः लिखना ही बन्द कर दिया था। इधर सम्पादकों से रुष्ट थे ही, सरकारी पद भी मिल गया, बस, साहित्य से मुख मोड़ने का धरातल पा गए। हृदय से अपने पद के उत्तरदायित्व के निभाने में लग गए। जनप्रिय अधिकारी होने के नाते आपके पदत्याग के अवसर पर अनेक संस्थाओं ने सरकार से आपकी सेवाओं का क्रम न तोड़ने की माँग की थी।* यह दस वर्षों की साहित्यिक उदासीनता जी० पी० को हमारे क्षेत्र से बहुत दूर कर देती है। सभी साहित्य-प्रेमियों को यह विश्वास हो गया था कि अब उन्हें गुदगुदाने वाले इस कलाकार के जीवन के इस अंक का पटाक्षेप हो गया।

(४) संध्या :

सन् १९५१ ई० से आपको आकाश वाणी का निमंत्रण मिला और अनेक वार्त्ताएँ भी प्रसारित हुईं। अनेक पत्रिकाओं के आग्रह से पुनः लिखना प्रारम्भ किया। तब से अनेक रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं तथा कुछ निकट भविष्य में छपने वाली हैं।

लगभग पाँच वर्ष से आपने एक नवीन प्रयोग आरम्भ किया है : सम्पादक को पत्र, पूर्व पत्र का उत्तर और उसी में आप कहानी का भी समावेश करते हैं।

कभी-कभी आग्रहवश साहित्यिक आयोजनों में भी सम्मिलित होना पड़ता है। २८ अगस्त १९५५ ई० को 'भारतीय संस्कृति संसद' कलकत्ता के भारतीय भाषाओं के 'हास्य सम्मेलन' में हिन्दी के हास्य प्रतिनिधि रूप में आपने भाग लिया।

जी० पी० का साहित्य में यह पुनरागमन, साहित्यिक जीवन की संध्या स्वरूप है। अब की रचनाओं में न वह भावों का वेग है और न वह यौवन

गोण्डा के वकालतखाने (Gonda Bar Association) में ४ जनवरी सन् १९४९ को इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया गया था। कुछ अंश का उद्धरण उपयुक्त होगा—

" The members of the Gonda Bar Association, most respectfully, request the Government to retain the services of Sri G. P. Srivastava

की मस्ती । हास्य का ढीला-ढाला रूप, अतीत के हास्य की धुँधली छाया सा, यत्र-तत्र दिखाई पड़ता है । आयु के बोझ से लेखनी करुणतम और गम्भीर हो उठती है । परन्तु जहाँ मध्यान्ह की चमकती, उज्ज्वल धूप के समान खिलखिलाती हँसी का अभाव है वहीं ढलते सूर्य की सुनहली आभा की भाँति जीवन के अनुभव और दर्शन की कल्याणकारिणी अनुभूति भी ।

हमको आश्चर्य तब होता है जब ऐसे हास्यप्रेमी और मिलनसार व्यक्ति से सहानुभूति रखनेवालों का कहीं पता नहीं चलता । मित्र-मण्डली के विषय में पूछने पर जी० पी० की सच्ची हृदय-वाणी ने उत्तर दिया—'हमारे मित्र कोई नहीं, सब मतलबी दोस्त हैं ।' आपके विषय में ऐसा ज्ञात भी हुआ कि वास्तव में जी० पी० की किसी से घनिष्टता नहीं । बहुधा आपकी भेंट, नमस्कार और कुशल क्षेम तक सीमित रहती है । यदि स्वार्थवश कोई आगे बढ़ा भी तो 'जहाँ नाहीं रूख, तहाँ राड़ै रूख' के भाव से । अपवाद-स्वरूप, स्वर्गीय रायसाहब राम बिहारी वकील, के आप अभिन्न मित्र थे, और उनसे पर्याप्त प्रोत्साहन एवं प्रश्रय भी प्राप्त करते रहे । परन्तु, हाँ, अल्प संभाषण में भी हास्य का प्रतिबिम्ब पड़ ही जाता है ।

सत्य के प्रकाशन में जी० पी० को तनिक भी संकोच नहीं होता, भले ही वह मर्यादा के बन्धनों को ढहा दे । साहित्यिक क्षेत्र में अपने परिचितों के विषय में आपने बताया—"श्री रूप नारायण पाण्डेय और प्रेमचन्द से एक वार भेंट हुई सब एक दूसरे की 'हाँ' में 'हाँ' मिलाते रहे । श्री दुलारे लाल भार्गव बातों से पेट भर देते थे । हाँ, पं० कृष्ण बिहारी, श्री शम्भूदयाल जी तथा श्री जगत मोहन लाल जी, सहपाठी थे और उनसे यदा कदा प्रोत्साहन भी मिला ।"

जीवन के कटु अनुभवों ने जी० पी० को समाज क्या, सम्पूर्ण विश्व के विद्रोही के रूप में खड़ा कर दिया है । आपके साहित्य की शैली से हमारा ऐसा अनुमान होता है कि इसका शिल्पी अवश्य ही कोई मायावी जगत् की मोहिनी मधु-विथिकाओं में भटका, रसिक नायक है । परन्तु जी० पी० का जीवन स्वयं एक, विडम्बना है । हास्य के अवगुंठन के उघारने पर एक, संसारी प्रवंचना मे खीजा, जीवन से उदास, अरमानों से निराश, आहों से भरे 'दिल जले' के दर्शन होते हैं । हास्य की अनुरंजिनी छाया के पार्श्व में संसार की समस्त संचरण-प्रणाली के प्रति तीखा क्षोभ है—'विष रस भरा कनक घट जैसे'—परन्तु यह विष उपचार की औषधि है, विनाश का बीज नहीं ।

जी० पी० को सच्चे मित्र नहीं मिलते और समस्त विश्व से वे खीझे रहते हैं। इसके कुछ कारण उनके जीवन की कतिपय दुर्बलताएँ भी हैं। अंग्रेजी शासन के अधिकारियों का उपहास करते हुए भी वे आजन्म 'अफसर परस्त' रहे हैं। जी० पी० ने लिखा है कि—

'गुस्से की आग खुशामद ही के पानी से बुझती है। (भय्या अकिल बहादुर', पृष्ठ ६४)

पर वास्तव में वे दया और आश्रय की अभिलाषा से 'खुशामद' की सरिता बहाते रहे। उन्हें अधिकांश प्रोत्साहन नगर के सरकारी अधिकारीवर्ग से ही प्राप्त हुआ, जिनकी प्रशंसा में जी० पी० व्यस्त रहते थे। इस दिशा में वे बहुत कुछ अवसरवादी रहे हैं। जिस शासन और सत्ता को उन्होंने पुष्ट होते देखा उसी की वन्दना करने लगे। अंग्रेज अफसरों के आप मुँह-लगे भृत्य थे। जन शासन की रण भेरी सुनकर जन- तन्त्रात्मक 'हजामत' ऐसी रचनाएँ लिखने लगे। इसके लिए हम जी० पी० को दोषी नहीं ठहरा सकते। हम भारतीय साहित्यिक प्रतिभा के प्रति उदास थे। कैनिंग कालेज के ब्राउन एवं कैमरन साहब सदृश विदेशी विद्वानों ने ही जी० पी० को साहित्य-साधना में प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया।

साहित्यक क्षेत्र में अपनी, बाल प्रयास द्वारा प्रस्तुत, रचनाओं का आदर न देख कर जी०पी० ने अपने साहित्य का स्तर ऊँचा करने के विपक्ष में साहित्यिकों पर व्यंग्य बाण छोड़ना आरम्भ कर दिया। इसमें पक्षपात प्रधान था। समाज से क्षोभ के कारण जी० पी० अन्य किसी का आदर करना न सीख पाए। और, कदाचित् यही कारण है कि अन्य किसी ने आपका आदर नहीं किया। चारा ही क्या था। किसी नायक की स्तुति के स्थान पर हास्य तो विद्रूपताओं एवं दुर्गुणों का ही भंडाफोड़ करता है। इतना अवश्य है कि उसे तीक्ष्ण अस्त्र के स्थान पर कोमल सुधारक बनाया जा सकता था।

जी० पी० ने साहित्यिक साधना में संतोष नहीं सीखा। साहित्य में पदार्पण के पीछे भौतिक सुख की आकांक्षा, प्रबल थी। धन और यश उन का मुख्य प्रयोजन था। उनकी अभिलाषा एक निजी प्रेस खोलने की भी थी, और वह भी कदाचित् धनोपार्जन की ही इच्छा से। अपनी सेवाओं का मनवांछित मूल्य न पाकर जी० पी० का चरित्र एक रूठे और चिढ़े व्यक्तित्व की झाँकी देता है। उनकी साहित्यिक समस्याओं में लेखक के पेट का प्रश्न

प्रधान है। * विशेष रूप से जी० पी० सम्पादकों से बहुत जले हैं और उन्हें सर्वत्र धूर्त बताया है।

जी० पी० की रुचि वासनात्मक अवश्य है। इसका हम अधिक विस्तार से विवेचन आगे करेंगे। यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त है कि 'प्राणनाथ' ऐसी रचना में, जिसका स्वर बड़ा गम्भीर है, जी० पी० अवसर पाते ही अपनी श्रृंगारी प्रवृत्ति का परिचय दे देते हैं—

"एक तो यों ही नमकीन और उसमें मिर्च पड़ी हुई है। उमा वास्तव में उमा ही थी। वह कटीली आँखें, वह रसीली चितवन, सच तो यह है कि वह साक्षात रति थी।" (पृष्ठ २१)

'चपलाओं की चुहलें' चित्रित करने को वे सर्वत्र उतावले दीखते हैं। जहाँ तहाँ चुम्बन के लिए उनकी दृष्टि लालायित दीखती है। यहाँ तक कि उन्होंने अपनी एक कहानी ही 'चुम्बन' पर लिख डाली।

जी० पी० को अपनी रचनाओं और अपने कौशल पर पर्याप्त गर्व है। अनेक रचनाओं में वे आत्म प्रशस्ति सी करते जान पड़ते हैं। †

जी० पी० के संस्कार कायस्थ परिवार के होने के कारण, उनकी स्वाभाविक बुद्धि उर्दू और मुसलमानी संस्कृति की ओर अधिक झुकी है। यह प्रवृत्ति उनके हिन्दी साहित्य को संकुचित और हिन्दी भाषा-भाषी और हिन्दू संस्कार वाले सहृदयों के लिए अप्रिय बनाती है। 'चुम्बन' में वे 'कारूँ की दौलत' पर लात मारते हैं। क्या 'कुबेर की सम्पत्ति' यहाँ वही कार्य नहीं कर सकती थी।‡ यह उनके संस्कारों का प्रभाव है। इसी प्रकार मुँहफट होने का दम भर कर जी० पी० अश्लीलता का निरंकुश प्रचार भी अनेक स्थलों पर कर गए हैं।

जी० पी० हृदय से दृढ़ आस्तिक हैं। इसका प्रमांण उन पात्रों के सम्भाषण हैं जिन्हें वे सद्गुणों से भरना चाहते हैं—

"लाल०—बेशक, आदमी को हर हालत में चाहिये कि उसी परमात्मा का भरोसा करे जब वह रखवाला है तब दुनिया में कौन किसी को सताने वाला है?" (उलटफेर पृष्ठ ९०)।

---

* देखिए 'भय्या अकिल बहादुर' पृष्ठ १०६।

† इस प्रसंग में देखिए 'प्राणनाथ' पृष्ठ २४८। 'उलटफेर' पृष्ठ ४,५ तथा अन्य अनेक रचनाएँ।

‡ देखिए 'नोक झोंक' पृष्ठ ७७।

जी० पी० ने कोई महाकाव्य नहीं लिखा। जी० पी० किसी दर्शन अथवा सिद्धान्त के प्रेणता नहीं। जी० पी० की रचनाओं में वह रण भेरी नहीं कि **'कायर सुनै, सूर हुइ जाय।'** वह मधुरा भक्ति नहीं जो हठीले आराध्य के मान-मनावन में रैन-दिन तल्लीन रहे। वह सौन्दर्य बोध नहीं जो नायिकाओं के कोमलतम अंगों-प्रति-अंगों को उघारा करे। जी० पी० का प्रयोजन तो जीवन के द्वन्दों और संघर्षों से क्षण मात्र के लिए विराम देना है। बसन्त के शीतल, मन्द सुगन्ध, समीरण के भाँति जी० पी० का साहित्य जिधर जाता है, अपने रस-प्लवान से आनन्द भरी गुदगुदी, मोहक मादकता और आलस्य-जनित विराम बिखेरता चलता है।

इसलिए नहीं कि वे हमारी श्रद्धा पा चुके हैं, इसलिए नहीं कि वे हास्य-सम्राट हैं, इसलिए नहीं कि वे हिन्दी के मोलियर हैं, वरन् इसलिए कि आज ७२ वर्ष की आयु में इस वयोवृद्ध ने पुनः लेखनी सँभाली है, जी०पी० हमारी शुभकामनाओं और साधुवाद के अधिकारी हैं। वास्तव में गोण्डा नगर पालिका ने 'जी० पी० श्रीवास्तव मार्ग' नामकरण द्वारा साहित्यकार के सम्मान में स्तुत्य कदम उठाया है।

तृतीय खण्ड

जी० पी० श्रीवास्तव

की

हास्य रचनाएँ

१—प्रमुख रचनाएँ,

२—जी० पी० के साहित्य की आलोचनात्मक व्याख्या, तथा

३—उपसंहार।

१

प्रमुख रचनाएँ

प्रारम्भ में जी० पी० अपनी उदीयमान प्रतिभा लेकर साहित्य में पदार्पण का विफल प्रयास कर चुके थे। आपकी मौलिक कृतियाँ तत्कालीन अग्रगण्य साहित्यकारों से सम्मान न पा सकीं। इन साहित्य के कर्णधारों में इतना औदार्य भी नहीं था कि इस हतोत्साह बालक को प्रोत्साहित करते, उसकी बाँह गहते। अस्तु हिन्दी साहित्य के अनेक लेखकों की भाँति जी० पी० की अकिंचन दृष्टि विदेशों के द्वार खटखटाने लगी। अपनी प्रतिभा के विकास के लिए हास्य के क्षेत्र में लब्धकीर्त्ति फ्रान्सीसी लेखक मोलियर * का जी० पी० को मुखापेक्षी होना पड़ा। और, इस प्रकार आपको हिन्दी लेखक-वर्ग में प्रवेश का अवसर मिला।

प्रारम्भ में मोलियर के रूपान्तर, और बाद में, मौलिक रचनाएँ जी० पी० की प्रतिभा से समुन्नत हुईं। आपकी रचनाओं को हम मुख्य ६ वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) नाटक,
(२) उपन्यास,
(३) कहानी,
(४) वार्त्ताएँ,
(५) हास्येतर शिक्षा संबंधी रचनाएँ, और
(६) विविध रचनाएँ।

साहित्य के इन विभिन्न अंगों का कोष जी० पी० प्रायः हास्य की मुद्राओं से ही भरते रहे, जो स्वयं एक नवीनता थी। विदूषकों आदि के

---

* देखिए परिशिष्ट १।

द्वारा यत्र तत्र हँसी के अवसर साहित्य में आते अवश्य थे, परन्तु इस प्रकार हास्य रस की स्वतन्त्र रचनाएँ प्रस्तुत करने का श्रेय जी० पी० को ही है। उपर्युक्त विभाजन के अनुसार आपकी रचनाओं का विवरण हम संक्षेप में इस प्रकार दे सकते हैं—

नाटक

यों तो द्विवेदी युग में मिश्रबन्धु, अपने नाटकों में मर्यादित और उत्कृष्ट हास्यपूर्ण स्थलों की अवतारण कर चुके थे, परन्तु, अब तक स्वतन्त्र रूप से हास्य-नाटक लिखने का कदाचित एक ही प्रयत्न हुआ था, और वह भारतेन्दु की 'अन्धेर नगरी' है। इसका रूप भी बहुत कुछ बालोपयोगी सा रह गया है। जी० पी०, जैसा हम पहले कह चुके हैं, अनेक बार साहित्य-देवालय की देहली पर मत्था टकरा कर रह गए थे। अस्तु, इस बार पण्डा और पुजारी के स्थान पर मोलियर के अवलम्ब और सम्बल पर आश्रित, कतिपय अनूदित नाटक लेकर, सन्मुख आए। इन्हीं रूपान्तरों में अपनी लेखनी माँजकर मौलिकता पर चरण बढ़ाया। इस आधार पर हम आपके नाटकों को दो मुख्य विभेदों में रख सकते हैं—

(क)

इसमें मोलियर का आधार लेकर लिखे गए रूपान्तरों को हम रखते हैं। इस वर्ग के मुख्य उदाहरण यह हैं—

(१) मार मार कर हकीम

मोलियर का प्रहसन 'ले मेडेसिन मल्ग्रे लुइ' (Le Medicine Malgre Lui) बहुत विख्यात है। इसके अनेक भाषाओं में कई कई अनुवाद किए गए हैं। हिन्दी में श्री लल्ली प्रसाद पाण्डेय द्वारा अनुवादित 'ठोक पीटकर वैद्यराज' प्रकाशित हुआ था।

सन् १९११ ई० में फील्डिंग के 'माक् डाक्टर' (Mock Doctor) के आधार पर जी० पी० ने 'मार मार कर हकीम' लिखा था। बाद में 'डाक्टर अण्डर कम्पलशन' (Doctor Under Compulsion) और 'डाक्टर इन्सपाइट औफ हिमसेल्फ' (Doctor Inspite ofHim-

self) दो और अनुवादों के आधार पर सुधारा। सन् १९१३ ई० में यह 'इन्दु' में धारावाहिक रूप में छपता रहा।

सन् १९१७ ई० में यह 'आँखों में धूल' और 'हवाई डाक्टर' के साथ प्रकाशित हुआ। यह तीनों मोलियर की रचनाओं के रूपान्तर हैं। 'आँखों में धूल' लामर मेडेसिन (L'amour Medicin) और 'हवाई डाक्टर' 'ले मेडेसिन वोलेन्ट' (Le MedicinVolant) के आधार पर है।

इसकी भूमिका स्वरूप श्री सी० जे० ब्राउन ने जी० पी० और उनकी कृति का अंग्रेजी में संक्षिप्त परिचय दिया है। आपकी सम्मति से श्रीवास्तव जी का हास्य मुख्यतया युवक विद्यार्थी वर्ग की वस्तु है : यद्यपि सभी इससे आनन्द ले सकते हैं।

'मार मार कर हकीम' में खूसट बेग, एक वृद्ध है, जो लालच बख्श की कन्या शबनम से विवाह करना चाहता है। इस विवाह के प्रस्ताव के विरोध में शबनम मौन धारण कर लेती है और उसके किसी रोग के कारण गूंगा हो जाने के भ्रम से हकीम उपचार के लिए बुलाया जाता है। लालच बख्श के नौकर बौड़म और चरकट, भ्रम में पड़कर, एक लकड़हारे, टर्रे खाँ को मार मार कर हकीम बनने के लिए बाध्य करते हैं। शबनम के प्रेमी युवक दिलदार से मिलकर टर्रे खाँ उसका विवाह शबनम से कराता है और इस प्रकार वह पुनः बोलने लगती है।

'आँखों में धूल' में गोबरचन्द अपनी प्रौढ़ा पुत्री केतकी का विवाह नहीं करता। केतकी की सखी, चंचल, के प्रपंच से, केतकी का प्रेमी, मोहन, डाक्टर बनता है। केतकी रोगिणी बनकर मोहन से उपचार कराती है। बीमारी के निदान के लिए, नकली विवाह की आवश्यकता बता कर, मोहन और केतकी का विवाह होता है। गोबरचन्द देखता ही रह जाता है।

'हवाई डाक्टर' में भी एक युवती नयना बीमारी का झूठा बहाना कर, एक वृद्ध से विवाह न करके, अपने प्रेमी दिलपसन्द से, एक झूठे डाक्टर, घनचक्कर, का सहारा लेकर विवाह करती है।

विदेशी आधार शिला होते हुए भी अपना निजी रंग देने की इसमें लेखक की मौलिकता है। केवल शब्दानुवाद अथवा भावानुवाद से मोलियर

की यह रचनाएँ मृत्त हो जातीं। अपने देश के वातावरण के ढाँचे में हास्य के सृजन के कारण प्राय: सम्पूर्ण रचनाएँ नवीन हो गई हैं।

(२) नकदम

सन् १९१८ ई० में जी० पी० ने 'नाक में दम' और 'जवानी बनाम बुढ़ापा' दो प्रहसन मोलियर के आधार पर लिखे थे। दूसरे प्रहसन का शीर्षक 'मियाँ की जूती मियाँ के सर' भी था।

सन् १९२० ई० में गोण्डा और फैजाबाद में 'नाक में दम' का अभिनय भी हुआ, जिसमें जी० पी० ने खप्तुलहवास का नाट्य किया था।*

सन् १९.८ ई० में गोण्डा-प्रदर्शनी में अभिनय के लिए लेखक ने इन दोनों को एक में ढाला। नाटक दिखाते समय की कठिनाई तथा जनता की रुचि का भी ध्यान रक्खा गया। इस प्रदर्शन में स्वयं जी० पी० ने भकभकानन्द की अनुकृति की, जिसकी सफलता पर स्वर्ण पदक इन्हें प्रदान किया गया।† इसी मिश्रित प्रहसन का सन १९५१ में 'नकदम' के नाम से प्रकाशन हुआ।

'नकदम' में वासनाग्रस्त, अधेड, गोबरचन्द, एक फैशन में उद्भ्रान्त, पांशुला स्त्री, मैडम लीला, से विवाह करता है। लीला गोबरचन्द के धन का अपव्यय करती है, और अपने अनेक युवक प्रेमियों के साथ भोग विलास में रत रहती है। रोक टोक करने पर स्वयं गोबरचन्द की निन्दा होती है उनके बेमेल विवाह का दुष्परिणाम दिखाया जाता है। समाज में इस 'दहिने माँ नाटा मचियावा, और बाँये मचा पछइहाँ' का अनुसरण करने वालों की गाड़ी दलदल में अवश्य फँसती है, और उनके प्रति जी० पी० का यह हास्य मिश्रित विरोध अवश्य ही सराहना के योग्य है।

एरिस्टोटिल (Aristotle) के विरोधियों को मृत्यु दण्ड की आज्ञा दिलवाने का पेरिस विश्वविद्यालय ने संकल्प कर लिया था। किन्तु वास्तव में मोलियर हास्य-सृष्टा होने के साथ ही उदारता, सहिष्णुता और मानवी चेतना का प्रेरक था। उसके हास्य-व्यंग्य ने विद्यालय के अधिकारियों

---

* स्वयं जी० पी० द्वारा उद्घाटित तथ्य।

† स्वय जी० पी० द्वारा उद्घाटित तथ्य।

की आँखें खोलीं और वे पश्चाताप करते हुए इस भीषण बर्बरता से विमुख हुए थे।

मोलियर के इसी विचार संघर्ष के आधार पर 'नकदम' में तत्त्वज्ञानियों का उपहास भी सम्मिलित कर लिया गया है। यहाँ थोड़ा सा विषयांतर जान पड़ता है।

(३) साहब बहादुर

सन् १९२५ ई० में मोलियर की एक रचना का रूपान्तर जी० पीने० 'साहब बहादुर' उर्फ 'चड्ढा गुलखैरू' के नाम से प्रस्तुत किया।† वक्तव्य के रूप में 'कुछ मेरी भी सुन लीजिए' के अन्तर्गत आपने स्वीकार किया है कि इसकी रचना में अंग्रेजी अनुवाद 'द शापकीपर टर्न्ड जेन्टिलमन ('The Shop-keeper Turned Gentleman') और 'द वुड् बि जेन्टिलमन' ('The Would Be Gentleman') की सहायता ली गई है।

इसी प्रसंग में आप आगे लिखते हैं—

'इसके आधार पर श्रीयुत लक्ष्मी प्रसाद पाण्डेय लिखित 'राव बहादुर' नामक नाटक हिन्दी में एक और भी है। और उर्दू में भी 'मोलियर' के इस नाटक का कुछ अंश बहुत दिन हुए एक किताब में देखा था। शायद उसका नाम 'नये बिगड़े' था या कुछ और अस्तु। हमारे यह 'साहब बहादुर' साहब

* मोलियर ने अपने साहित्य में दो चरित्रों, पैन्क्रे और मारफूरिए, द्वारा तत्त्वज्ञानियों की इतनी खिल्ली उड़ाई थी कि उसके कारण फ्रान्स में एक सम्पूर्ण क्रान्ति हो गई थी और अरिस्टाट्लि से मतभेद करने वाले मृत्यु दण्ड से मुक्त कर दिए गए थे।

† १४ अक्टूबर सन् १६७० ई० को 'Chambord' में और उसी वर्ष २३ नवम्बर को 'Palais Royal' में मोलियर के प्रसिद्ध नाटक 'Le Bourgoise Gentilhomme' का अभिनय हुआ था, जिसमें स्वयं मोलियर Bourgoise का रूप धारण करते थे। इसके दूसरे अभिनय से प्रसन्न होकर सम्राट लुई (King Luis xiv) ने कहा था—'Indeed Molier you have never yet done any thing which has amused me more, and your piece is excellent.'

सभी से न्यारे दुनियाँ में एक निराले जीव हैं। यह अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी इन सभों से अलग पकाते हैं।'

वास्तविकता यह है कि इसकी रचना से लगभग बीस वर्ष पूर्व मोलियर की मूल पुस्तक का अनुवाद श्री हरिश्चन्द्र आनन्द राव तालचेरकर ने किया था, जिसका रूपान्तर सन् १९२४ ई० में श्री लल्ली प्रसाद पाण्डेय ने 'राव बहादुर' के नाम से प्रकाशित कराया।

'साहब बहादुर' में एक पदवी और शान के लोलुप हजामत बेग की पुत्री गुलनार का विवाह उसके प्रेमी यूसुफ़ से दिखाया गया है। अपनी झूठी शान के कारण हजामत बेग गुलनार का विवाह एक नवाब हुसेन से करना चाहता था। स्वयं अपनी पत्नी बेज़ार बीवी से उदासीन होकर एक वेश्या दिलवर बेगम से वह विवाह करना चाहता था। झूठी पदवी और इज्ज़त का अभिनय करके, हजामत बेग को धोखे में डालकर, यूसुफ़ का नौकर फ़ितरत, अपनी चालाकी से, गुलनार और यूसुफ़ का तथा नवाब और दिलवर का विवाह कराता है। इसमें दो समानान्तर कथानक चलते हैं। हजामत बेग की सेविका सौसन, से फ़ितरत का विवाह होता है।

इसमें जी० पी० ने नवाब और दिलवर के विवाह द्वारा वेश्याओं के सम्मानित पत्नी रूप में स्वीकार करने की रीति दिखाकर समाज की एक बड़ी समस्या का समाधान सुझाया है।

'राव बहादुर' की कथा और उसके विन्यास से तुलना करने पर जी० पी० की रचना में कुछ अधिक मौलिकता नहीं दृष्टिगत होती। यह सिद्ध है कि सम्पूर्ण नाटक की वही रूप रेखा है जो 'राव बहादुर' की। हाँ, इसमें हास्य का तनिक और भी विकृत रूप छलक आया है, जो उसे शिष्ट साहित्य से दूर ही ले जाता है।

'राव बहादुर' का समाज हिन्दू परिवार के निकट होने के कारण 'साहब बहादुर' के यावनी वातावरण से पृथक सा ज्ञात होता है। 'राव बहादुर' का नायक हिन्दू है और हजामत बेग मुसलमान। इसी प्रकार पात्रों की पदवी तथा नामकरण आदि में अन्तर है।

भाषा के प्रयोग में दोनों का ही शरीर कहीं कहीं वीभत्सता को छू गया है। उदाहरणार्थ जी० पी० के पात्र स्वतंत्रता से 'मरदूद' तथा 'दहिजार'

आदि अशिष्ट शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार 'राव बहादुर' में भगुवा का स्वगत भाषण केवल एक शब्द के कारण निम्न कोटि का हो गया है—'यहु गँड़िहा का सार दमड़ी का चहत है' (अंक ३, दृश्य २)।

द्विवेदी युग में हास्य विषयों में राय बहादुरों, आनरेरी मजिस्ट्रेटों तथा अन्य राजभक्तों का उपहास विशेष स्थान रखता है। उसी परम्परा की स्पष्ट छाप इन दोनों ही रचनाओं पर है। पदवी के लोलुप और अपनी सत्ता के प्रदर्शन में विक्षिप्त पुरुष की बुद्धिहीनता का अंकन है। वैसे दोनों ही कृतियाँ रोचक हैं परन्तु एक के पठन के पश्चात दूसरी नीरस लगने लगती है और उसमें प्रतिकृति का आभास मिलता है। अस्तु जी० पी० का यह बाल-प्रयास समस्त गुणों से युक्त होने पर भी साहित्यिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है।

(४) चाल बेढब

यह भी मोलियर का रूपान्तर है। इसका रचनाकाल सन् १९११ ई० के लगभग था, किन्तु सुधार का सन् १९३५ ई० में प्रकाशन हुआ। साहित्यिक दृष्टि से इसका अधिक महत्त्व नहीं।

(५) लाल बुझक्कड़

सन् १९२९ ई० में मोलियर के एक नाटक का जी० पी० ने केवल मूल भाव लेकर उसे भारतीय वस्त्र पहिनाने का प्रयत्न किया। इस रचना का सन् १९३६ ई० में 'लालबुझक्कड़' के नाम से प्रकाशन हुआ। *

'लाल बुझक्कड़' में एक धनी सेठ, दौलत राय, के पुत्र का एक महाजन की पुत्री सुशीला से प्रेम दिखाया गया है। साथ ही एक युवक बसन्त-लाल, एक गोबरधनदास की पुत्री मालती के प्रेम की उपेक्षा कर सुशीला

* मोलियर का नाटक 'L' Etourdie' सन् १६५५ ई० में Lyons और सन् १६५८ ई० में पेरिस के अभिनयों द्वारा पर्याप्त ख्याति पा गया था। 'The Blunderer or the Mishaps' के नाम से अंग्रेजी में इसके अनेक अनुवाद हुए। प्रसिद्ध नाटककार जांन ड्राइडेन (John Dryden) ने 'Sir Matin Marrall' में इसका आधार लिया। मोलियर की इसी रचना का आधार 'लाल बुझक्कड़' में लिया गया है।

पर आसक्ति ढारता है। मालती इसका बदला बसन्तलाल की सौन्दर्य-लिप्मा और वासना का रहस्य खोल कर, उसे नीचा दिखाकर लेती है। लज्जित होकर बसन्त लाल मालती के सन्मुख समर्पण करता है।

लाल बुझक्कड़ का अनेक संघर्षों के बाद सुशीला से विवाह होता है। इसमें सबसे अधिक रोमांचकारी यह बात है कि मानिक, सुशीला और नन्द-लाल का पिता है, परन्तु उनमें से कोई एक दूसरे के सम्बन्ध को नहीं जानता। अन्त में इस रहस्य को खोलकर जी० पी० ने जीवन की विडम्बना का बड़ा सजीव परिपाक दिखाया है।

इसमें कतिपय असाधारण वृत्तियों वाले पात्रों को लेकर उनके व्यवहार से हास्य का प्रादुर्भाव किया गया है। लाल बुझक्कड़ अपने को बहुत चतुर समझता है परन्तु उसका प्रत्येक कार्य उल्टा सिद्ध होता है। मानिक चन्द एक ऐसा धन लोलुप है जो थोड़े से रुपयों के लिए अपनी प्रतिष्ठा क्या, सर्वस्व बेच देने को तत्पर है। तिगड़म अपनी प्रवंचनाओं से सभी को ठगने का दम भरता है। मित्र, प्रबन्धी लाल उसका सहयोगी तथा उसके चरित्र का पूरक है। मैना कुटनी का चरित्र बहुत कुछ समाज में ऐसी स्त्रियों के अस्तित्व पर व्यंग्य है। कुछ कुछ इसी के पद-चिन्हों पर चलने वाला रमदेई का जीवन है। दरोगा और छोकड़े के वार्त्तालाप में सरकारी पद की प्रभुता से मदान्ध व्यक्ति, और एक मसखरे बालक का चरित्र दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त लगभग शेष सभी पात्र जन-जीवन के बीच से लिए गए हैं।

इसका सबसे मार्मिक अंश तीसरे अंक के सातवें दृश्य का वह भाग है जहाँ मालती और सुशीला का वार्त्तालाप होता है। हास्य की हल्की रेखा के साथ ही हृदय वेध जाने वाला कथोपकथन है। जैसे—

"सुशीला—**बसन्त लाल ? मैंने तो यह नाम कभी सुना ही नहीं, मैं उन्हें क्या जानूं ?**

मालती—**तुम न जानो न सही; पर तुम्हारा हृदय तो उन्हें जानता है।**

सुशीला—**हाय बहिन, दूसरों की भीख पर बसर करने वाली के पास हृदय कहाँ होता है ?**

मालती—**क्यों ? क्या बदले में यह लोग इसे दान कर देती हैं ?**

सुशीला—**यदि भिखारिणी में यह शक्ति होती तो सबसे पहले मैं इसे नन्द-लाल जी के चरणों पर न्योछावर करती।**

मालती—**तब क्या वह कहीं जबरदस्ती छिन गया या उसे कोई चुरा ले गया ?**

सुशीला—**बहिन ! बहिन ! हाथ जोड़ती हूं, दिल में चुटकियाँ न लो, बस बस दया करो मुझे इस तरह न मारो। मैं तो आप ही मर रही हूँ।**

मालती—**किस पर ? वही तो पूछ रही हूं।"**

इस नाटक का आशय मात्र मोलियर का है, अन्यथा शेष कृति मौलिक ही है। मोलियर के नाटक का अस्थि-पंजर लेकर उस पर निजी प्रतिभा से जी० पी० ने सुन्दर शरीर की सृष्टि की है।

(६) मिट्टी का शेर

यह एकांकी, मोलियर के 'स्कवेरेल' (Squarelle) प्रहसन के आधार पर सन् १९१२ ई०में लिखा गया था। यह आरा के मासिक 'मनोरंजन' में छपा भी था। इसी का संशोधित रूप बाद में सन् १९४२ ई० में पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ। इस रचना का महत्व साहित्यिक दृष्टि से कुछ अधिक नहीं है।

(ख)

मोलियर से पथ निर्देशन पाकर जी० पी० ने, एक सिद्ध-हस्त हास्य-लेखक की भाँति, साहित्य-क्षेत्र में अपनी रचनाओं को रक्खा। अधिकतर नाटकों का ही रूपान्तर किया था। फलस्वरूप नाटकों की ही रचना प्रारम्भ की। इस प्रकार लगभग दस वर्ष तक जी० पी० निरन्तर एक के बाद एक नाटक लिखते रहे। इनमें महत्त्वपूर्ण यह हैं—

[१] उलट फेर

नाटकों का जहाँ तक संबंध है, जी० पी० की यही सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसका प्रकाशन सन् १९१८ ई० में हुआ। इसके आरम्भ में परिचय स्वरूप श्री ड्यूहर्स महोदय का एक अंग्रेजी लेख है। * इसमें नाटक की संक्षिप्त

---

* R. P. Dewhurst महोदय, पहिले गोण्डा में जज थे तथा बाद में इंगलैण्ड में 'Classical Languages' के अध्यापक रहे। इन्हीं के अनुरोध पर उलटफेर की रचना की गई थी।

रूप रेखा दी गई है। यह विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इसमें सारांश के अतिरिक्त अलोचना रूप में अधिक नहीं।

इसका अभिनय गोण्डा और बलरामपूर में हुआ जिसमें स्वयं जी० पी० अलल्टप्पू और बम्बूबख्श की अनुकृति करते थे।*

इसमें एक डिप्टी कलक्टर, मिर्ज़ा अलल्टप्पू, अपने अधिकार के मद और अन्याय से एक वकील लालचन्द्र को दण्ड देता है। समय और घटनाओं के उलटफेर से अलल्टप्पू को वकील बनना पड़ता है और लालचन्द्र मुन्सिफ़ हो जाता है। लालचन्द्र के न्यायालय में, अलल्टप्पू अपराध करता है, परन्तु एक मानव के नाते, लालचन्द्र, उसे क्षमा कर देता है। मुख्य कथानक के विकास के लिए, प्रकरी और पताका की भांति, अनेक अन्य छोटे-छोटे कथानक लिखे गए हैं। खुराफ़ात हुसैन, एक सिरिश्तेदार, फ़ितरत अली, एक चपरासी, और मुख्तार हुसैन, एक अवैतनिक मजिस्ट्रेट का मुख्तार, अपने भ्रष्ट और पतित चरित्र के कारण जाल और व्यभिचार में दक्ष हैं। दिल-फ़रेब वेश्या के प्रेम के, यह तीनों ही प्रतिद्वन्दी हैं, और, उसके मोह-पाश में विंधकर अपना सर्वनाश करते हैं।

इसका विषय मुकदमे बाजी में व्यस्त जगत है। चपरासी से लेकर जज तक का उपहास किया गया है। हमारे देश की अनपढ़ जनता किस प्रकार मुकदमों के जंजाल में फँसकर स्वयं अपना विनाश करती है इसका अच्छा उद्घाटन किया गया है। अधिकारी वर्ग किस प्रकार भ्रष्टाचार और स्वार्थ में रत रहता है इसकी झाँकी दी गई है। इस न्याय-जगत का प्रत्येक सदस्य छोटे से छोटे अकोर और स्वार्थसिद्धि के लिए विषधर अजगर की भाँति जबड़े फैलाए रहता है। यहाँ तक कि अपने ग्राहक को प्राण-दण्ड की आज्ञा हो जाने पर भी चिराग़ अली वकील कहते हैं—

'हाँ हाँ, फाँसी सज़ा हुई हमारी बदौलत। इसको गनीमत जानो। अगर हम इतनी कोशिश नहीं करते तो, न जाने क्या हो जाता। समझे? लाओ शुकराना।'

उक्त नाटक का बहुत कुछ सौन्दर्य इसकी भाषा पर निर्भर है। सभी पात्र अपनी-अपनी अभ्यस्त भाषा में नैसर्गिक प्रवाह से बोलते हैं। ग्रामीण जनता की अवधी का बड़ा ही प्राकृतिक रूप सामने रक्खा गया है। एक-एक वाक्य से यह आभास मिलता है कि लेखक ने पर्याप्त ध्यान देकर इन चरित्रों

* स्वयं जी० पी० द्वारा उद्घाटित तथ्य।

की भाषा का वास्तविक जगत में अध्ययन किया है उदाहरणार्थ निरहू के वाक्य—

"हो लेओ। जानो रुपयवा इनके मिलबे न करी। अरे! खूबे जीव लगाएके पैरवी करो, ममलवा जीतौ कि पहिलवे रुपयवा ले लेबो। रुपयवा मिली मिली, कहूं जाई न। कि नाहीं भाई घिरराऊ? एं?"

स्पष्ट रूप से प्रयत्क्ष कर देते हैं कि जी० पी० का ग्राम-भाषा पर अद्-भुत अधिकार है।

जी० पी० के अन्य नाटकों के रूप से इसमें एक पृथक विलक्षणता है। भारतीय प्राचीन परिपाटी के अनुसार नाटक का आरम्भ मंगलाचरण के रूप में प्रार्थना से होता है। सूत्रधार, विदूषक तथा नट प्रस्तावना सामने रखते हैं। कदाचित् यह जी० पी० के अपनी पुरातन सांस्कृतिक प्रथाओं के प्रति मोह के कारण है।

[२] मरदानी औरत

सन् १९१६ ई० में लगभग ४ वर्ष तक जी० पी० के अनेक लेख यत्र तत्र पत्रों में छपते रहे, जिनमें कथोपकथन का पर्याप्त प्रयोग था। इनके प्रकाशन में जी० पी० को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा था। दग्ध हृदय की दाह को प्रगट करने का एक मात्र माध्यम, अपनी लेखनी का भरोसा लेकर जी० पी० ने इन लेखों को एक में गूंथकर 'मरदानी औरत' की रचना की।

इसमें एक साधारण लेखक, मदन, का एक धनी युवती, मोहनी, से प्रेम दिखाया गया है। दोनों के आर्थिक स्तर की भिन्नता के कारण, मदन निराश जीवन व्यतीत करता है और भ्रम से कारावास की यातना सहता है। उसकी एक रचना की अद्भुत सफलता से, एक नाटक कम्पनी को अथाह लाभ होता है। इस प्रकार, पुरस्कार रूप में मदन को भी सम्पत्ति प्राप्त होती है। उसका मनोरथ पूर्ण होता है और मोहनी से उसका विवाह होता है। इस कथानक को बढ़ाने के लिए जी० पी० अपनी रुचि-वश साहित्य जगत के सम्पादक, समीक्षक, और प्रकाशक आदि, अनेक पात्रों का नीचा आचरण दिखाते हैं। सुखिया में एक वेश्या के गुण आरोपित करते हैं। दूसरी ओर लेखिका बनने की धुन में एक नारी, सत्यानाशी अपने सतीत्व की रक्षा में भी विफल जान पड़ती है। इसके प्रारम्भिक दृश्यों के मरदाने आचरण

ने ही, नाटक के शीर्षक की व्युत्पत्ति की होगी। अन्त में इसे अनुभव होता है, और यह स्वीकार करती है कि स्त्री के परम आभूषण उसकी नार्योचित लज्जा और शील आदि ही हैं।

इसमें साहित्य-संसार के नारकीय संचरण का चित्र खींचा गया है। विशेषकर सम्पादकों से जी० पी० बहुत रुष्ट हैं। उनकी कुबुद्धि और लालच पर पद-पद पर कटु व्यंग्य किए गए हैं। पेटूलाल और बण्टाधार की वार्त्ता बहुत कुछ गाली-गुफ्ता के स्तर पर पहुंच गई है—

"पेटू०—**अरे! चोर लुटेरे गिरहकट या डाकू भी अपने को बताते तो हम बेखटके मान लेते। मगर पढ़े लिखों को तुम कैसे धोखा देते हो भाई? तुम तो कुछ भी पढ़े नहीं हो। खत तक लिखना नहीं जानते हो।**

बण्टा०—**तभी तो शम्पादक बन गए। लेखक बनते तो लेख लिखना पड़ता। कवि बनते तो कविता करनी पड़ती और शम्पादक बनने में मजे से बैठे-बैठे तोंद फुलानी पड़ती है। जबशे शम्पादक बने हैं तब से शाढ़े शत्रह इंच तोंद बढ़ गई है। चाहे नाप के देख लो।**"

लेखकों के भी दो रूप दिखाए गए हैं। एक ओर मदन का संघर्षी जीवन है, जिसमें साहित्य के लिए तपस्या और त्याग का भाव सन्निहित है। दूसरी ओर सत्यानाशी का घृणित जीवन है, जो लेखिका बनने के मद में अपने पावन नारीत्व तक को ठोकर मार देती है।

इसकी भूमिका 'दिल का बुखार' में जी० पी० ने साहित्यिक व्यभिचारियों के प्रति अपना रोष जी खोलकर व्यक्त कर दिया है। जहाँ इसमें ऐसे दुराचारी व्यक्तियों की आँखें खोलने का मीठा उपाय किया गया है वहीं अनेक स्थलों पर व्यंग्य और आक्षेप, पक्षपाती पृष्ठभूमि के कारण, शिष्टता की परिधि लाँघ गए हैं।

[३] दुमदार आदमी

यह पाँच निम्नलिखित एकांकी प्रहसनों का संग्रह सन् १९२५ ई० में प्रकाशित हुआ—

(क) दुमदार आदमी—ड्यूहर्स्ट महोदय के अनुरोध पर, गोण्डा के वकीलों ने, नाटकों के अभिनय में भाग लेना स्वीकार किया था। परन्तु जनता, इस समाचार से ही, वकीलों का उपहास करने लगी। कई दिन पूर्व, इनका राह चलना कठिन हो गया। हर ओर 'अब वकील अठन्नी पर नाचेंगे' के छींटे कसे जाते थे।

तभी यह प्रहसन लिखा गया और २६ अक्टूबर सन् १९१७ ई० को 'राम लीला ग्राउण्ड' गोण्डा, पर मुख्य नाटक के पूर्व दिखाया गया। इसमें स्वय जी० पी० ने दुमदार आदमी का अभिनय किया था। *

कुछ, अभिनेताओं को हतोत्साहित करने के लिए, और कुछ एक नवीन आयोजन का आनन्द लेने के लिए, उत्सुकतावश, अगणित दर्शक आ गए थे : मंच पर अपना ही उपहास देख सब शांत रह गए।

तत्पश्चात् इसका लखनऊ और इलाहाबाद आदि नगरों में भी सफल अभिनय हुआ। इसका प्रकाशन सन् १९१८ ई० में काशी की 'गल्प माला' और 'कैनिंग—कालेज—मैगज़ीन' में हुआ था।

इसमें अभिनेताओं का उपहास करने वाले एक व्यक्ति, निपोड़शंख, की खिल्ली उड़ाई गई है। यह पहिले अभिनेताओं की भर्त्सना करता है, और, बाद में स्वयं अपनी स्त्री, नटखट, के आग्रह पर औरत का नाट्य करता है। इसे अपनी पत्नी समझकर सेवक, महरा, मारता है। तभी, महरी आकर इन दोनों पर झाड़ू की वर्षा करती है। सब रहस्य खुलने पर निपोड़ लज्जित होकर अपनी धूर्त्तता स्वीकार करता है। यदि इसे देख कर ताना मारने वाले लज्जित होकर रह गए हों तो आश्चर्य नहीं।

(**ख**) **गड़बड़झाला**—इसका रचनाकाल सन् १९१२ ई० है और तभी यह 'इन्दु' में छपा था। †

इसमें, जाति के कृत्रिम लांछनों के कारण, एक सज्जन, बिगड़े दिल, अपनी कन्या का विवाह नहीं कर पाता है। मनहूस लाल स्वयं उसकी पुत्री से विवाह करने की कामना से, कन्या और उसके पिता पर झूठे सच्चे कलंक लगाता है। साथ ही मनहूस का अवारा पुत्र कम्बख्तलाल भी बिगड़े दिल की रूप और शीलवती कन्या का पाणिग्रहण करना चाहता है। इन दोनों को छकाने के लिए, बिगड़े दिल, दोनों से विवाह का वचन देकर किसी प्रकार (इसका जी० पी० उचित स्पष्टीकरण नहीं कर पाए हैं) मनहूस के सेवक बुद्धू को नारी वेष में एक मकान पर भेज देता है। अपनी अपनी रखैल समझ

---

* स्वयं जी० पी० द्वारा उद्घाटित तथ्य।

† १३ दिसम्बर सन् १९१९ ई० को इसका अभिनय P. L. D. Club गोण्डा द्वारा किया गया था जिसमें जी० पी० ने बुद्धू का कार्य किया था।

कर बाप-बेटे दोनों एक समय पर उससे केलि करने पहुंचते हैं और सम्पूर्ण भेद खुलने पर पछताते हैं।

समाज में प्रचलित कुप्रथाओं के विरुद्ध इसमें कटु व्यंग्य मुखरित हुआ है। जाति-पाँति के कृत्रिम ठेकेदार अपने छल से किस प्रकार स्वार्थ-सिद्धि और व्यभिचार का प्रकोप बढ़ाते हैं इसका अंकन किया गया है।

(ग) **कुरसी मैनः**—गोण्डा के तात्कालिक डिप्टी कलक्टर, श्री ए०डी० पन्त (जो बाद में इलाहाबाद के एडमिनिस्ट्रेटर के पद से वृद्धावस्था के कारण विराम पाए,) के आग्रह से सन् १९२१ ई० में इसकी रचना हुई थी, और 'चाँद' तथा 'गोण्डागजट' में प्रकाशन हुआ।

जन सेवा का झूठा व्रत दिखाकर, जो पद-लालित्यवश, नगर पालिका के सदस्य बनने का उपक्रम किया करते हैं, उनकी मूर्खता और काली करतूतों का इसमें उद्घाटन किया गया है। अपने कुचक्रों से गब्बू लाल, धोती प्रसाद, गड़बढ़चन्द और झपसट नाथ मुकरजी, सब सदस्यता के इच्छुक, किस प्रकार एक दूसरे के विध्वंस का प्रबन्ध करते हैं इसका रोचक चित्रण हुआ है।

(घ) **पत्र-पत्रिका-सम्मेलन**—सन् १९२४ ई० में विजयादशमी के विशेषांक के लिए इसे 'वर्त्तमान' के सम्पादक ने लिखवाया था। इसके संशोधन में उन्होंने इसका रूप ही विकृत कर डाला और यह 'समाचार पत्रों के सम्मेलन' के नाम से छपा।

अपने सम्पूर्ण रूप में यह सन् १९२५ ई० में 'चांद' में छपा।

इसका विषय साहित्यिक है, और, इसमें अनेक पत्र पत्रिकाओं ने अपने वास्तविक नामों से वार्त्ताएँ प्रस्तुत की हैं। इसके अन्तर्गत 'प्रकृति' 'हास्य' 'स्वाभाविकता' और 'कला' आदि के मुख से वार्त्तालाप के मिस साहित्यिक समस्याओं को उठाकर उनका समाधान किया गया है।

जिस प्रकार पन्त जी ने अपने 'बादल' में लिखा है—

'धीरे धीरे संशय-से उठ,
बढ़ अपयश-से शीघ्र अछोर,
नभ के उर में उमड़ मोह-से
फैल लालसा-से निशि भोर;'—

उसी प्रकार अनेक आधुनिक कवियों ने अमूर्त्त मानवी भावनाओं एवं वासनाओं को साकार रूप प्रदान किया है। प्रसाद और महादेवी के ऐसे सहस्रों उदाहरण मिलेंगे। छायावादी काव्य की यह एक प्रधान विशेषता रही है।

बहुत कुछ उसी शैली का सा रूप जी० पी० के इस प्रहसन में है। अनेक साहित्यिक भावपरक साधनों को मूर्त्त रूप में दिखाया है। उस युग का बिरला कलाकार छायावाद के प्रभाव से अछूता रहा होगा। समय की शैली के अनुरूप जी० पी० का यह प्रहसन बहुत कुछ स्वस्थ कल्पना, और मानसिक प्रवृत्तियों एवं भावनाओं के मानवीकरण पर आधारित है।

(ङ) **न घर का न घाट का**—सन् १९३५ ई० में 'चाँद' के शिशु-अंक में सन्तान-निरोध पर गर्भ-सम्बन्धी एक लेख निकला था, जिससे बहुत से पाठक अप्रसन्न हो गए। अस्तु उसके पक्ष में यह प्रहसन, उक्त पत्र के सम्पादक, श्री आर० सेहगल, के अनुरोध पर लिखा गया। इसमें सन्तान निरोध पर किए गए आक्षेपों का उत्तर देने का प्रयास है।

क्योंकि यह प्रहसन, एक मत के भार से दबकर लिखा गया था, इसमें जी० पी० की कुशल लेखनी बहुत ही शिथिल, और एक पक्षीय होने के कारण नेत्रहीन सी जान पड़ती है। उस लेख की पुष्टि में तर्क पर तर्क और गुण पर गुण का व्याख्यान रूखा हो गया है। इसमें जी० पी० का वह रूप नहीं जैसा उन सरीखे एक कुशल साहित्यकार के अन्य ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

[४] मोहनी या झड़ूले नन्द

यह प्रहसन अपनी 'गंगा-जमुनी' प्रेमोपन्यास पर किए गए आक्षेपों के उत्तर स्वरूप लिखा गया था। इसमें आलोचकों पर व्यंग्य प्रहार किया गया है। इसमें जी० पी० का रूप बहुत कुछ हठीला सा जान पड़ता है।

[५] साहित्य का सपूत

पटना के सम्मेलन मे, वहाँ के विख्यात विद्वान श्री सच्चितानन्द सिन्हा के आग्रह पर इसे सन् १९३२ ई० में लिखा। यह 'मरदानी औरत' की भाँति हिन्दी संसार की कुरीतियों पर लिखा गया है। इसमें साहित्यिक कर्णधारों के व्यक्तिगत जीवन के अतिरिक्त समसामयिक प्रचलित शैलियों का भी उपहास किया गया है। यह पहले 'भविष्य' में छपा भी था। दूसरे संस्करण में इसका संक्षेप कर दिया गया है।

[६] लोक परलोक

सन् १९३९ ई० का एक चित्रपट की शैली पर लिखा गया नाटक है। इसमें सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक समस्याओं का समावेश करने का प्रयास हुआ है।

[७] लक्कड़ बघ्घा

यह निम्नलिखित तीन प्रहसनों का संग्रह है—

(क) **लक्कड़ बघ्घा**—यह कोआपरेटिव कमिश्नर, श्री पी० एम० खरे, के आग्रह पर सहयोगी समितियों के उत्थान के लिए लिखा गया और सन् १९२७ ई० में 'जैसी करनी वैसी भरनी' के नाम से छपा था। बाद में इसका संशोधन करके 'लक्कड़ बघ्घा' के नाम से प्रकाशन हुआ, साथ ही दो प्रहसन और जोड़ दिए गए।

इसमें घृणित उपायों और षड्यन्त्रों से मनमाना ब्याज वसूलने वाले एक महाजन सूदीमल का पतन दिखाया गया है। सुधार चन्द्र साहा एक बंगाली डाक्टर है जो सहकारी समिति का प्रचार कर, निर्धन व्यक्तियों के ऋण की समस्या सुलझाता है, और सूदीमल की दुर्गति होती है।

(ख) **भारत माता की जय**—सन् १९४७ ई० में स्वतन्त्रता दवस पर अभिनय के लिए, प्रधान अध्यापिका, सेक्सेरिया कन्या पाठशाला, गोण्डा, श्रीमती एल० पी० चैटर्जी, के आग्रह से लिखा गया था।

श्री नगेन्द्र के 'उपन्यास' की भाँति इसमें अनेक दिवंगत आत्माएँ आ आ कर अपनी कल्याणी वाणी से उपदेश देती हैं। लाजपत राय, गंगाधर तिलक, गोखले, शौकत और मुहम्मद अली के साथ ही उर्दू के प्रसिद्ध कवि, चकबस्त भी अवतरित होते हैं।

(ग) **करिया अच्छर भैंस बराबर**—सन् १९४७ ई० के साक्षरता दिवस के अभिनय के लिए शिक्षा-विभाग-सभा, गोण्डा, के अनुरोध पर लिखा गया था। इसमें निरक्षरता को दूर करने का प्रोत्साहन दिलाया गया है, और, साथ ही उसकी उपस्थिति में क्या क्या विपत्तियाँ संलग्न रहती हैं यह भी दिखाया गया है।

इसमें रामदीन, एक दिहाती, अनपढ़ होने के कारण, मनीआर्डर भी अवसर पर नहीं ले पाता है और एक ढाई, हजार रुपए पुरस्कार वाला प्राइज़ बाँड, डाकिए को उत्कोच रूप में दे देता है। बौड़म, अपनी निरक्षरता के कारण लखनऊ के स्थान पर गोरखपुर का टिकट ले लेता है। लोकई बीस रुपए के दस्तावेज़ के स्थान पर सौ रुपए के कागज़ पर अंगूठा लगा देता है। इस प्रकार निरक्षरता से दुखित यह लोग साक्षरता-प्रचार समिति के सदस्यों का प्रवचन सुनकर पढ़ने पढ़ाने के लिए तत्पर होते हैं और 'करिया अच्छर भैंस बराबर अब मत कहना जी' का गीत गाते हैं।

इसमें ग्राम्य-जीवन और समाज का बड़ा ही सच्चा चित्र उतारा गया है।

[८] बौछार

सन् १९५३ ई० में पाँच प्रहसनों का संग्रह इस नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें निम्नलिखित नाटक हैं—

(क) बौछार—गोण्डा के जिलाधीश श्री एस० एन० निगम, प्रदर्शनी के संयोजक श्री राम बिहारी वकील, और सुल्तानपुर के कन्या विद्यालय की प्रधान अध्यापिका, श्रीमती कमला देवी पाण्डेय, के निरन्तर अनुरोध से कि कुछ घूसखोरी पर लिखा जाय, जी० पी० ने इसकी रचना की। उधर प्रदर्शनी में इसके अभिनय में भाग लेने की आपके प्रिय भांजे चि० फूल की बड़ी उत्कट अभिलाषा थी। अस्तु इसमें एक बालक पात्र की प्रतिष्ठा की गई।

जी० पी० ने सन् १९५३ ई० की प्रदर्शनी के लिए इसे अपनी रुग्णावस्था में लिखा था। इसमें अकोर-उत्कोच और चोरबाजारी पर तीव्र व्यंग्य किया गया है। इसका रूप-रंग बहुत कुछ आपकी प्राचीन रचनाओं की भाँति है। बहुत कुछ इसमें 'उलट फेर' के सदृश दृश्य-विधान है। इसमें घूसखोरी में मस्त, जुरमानाराम, एक सरपंच का पतन दिखाया गया है। अन्त में फूल का चरित्र कुछ अस्वाभाविक हो गया है।

(ख) हाकिम—हाकिम अथवा पैदायशी मजिस्ट्रेट सन् १९३५ ई० की रचना है। इसका अभिनय सन् १९४४ ई० में गोण्डा में हुआ था जिसमें स्वयं जी० पी० ने मजिस्ट्रेट का कार्य किया था।

इसमें घमण्डी अधिकारी वर्ग की झूठी हेकड़ी का चित्र खींचा गया है। आकाशवाणी, बम्बई, से इसका संशोधित रूप प्रसारित भी किया गया था।

(ग) हजामत—यह सन् १९३८ ई० की रचना है। इसमें अंग्रेजी सत्ता के बल पर झूमते एक दरोगा, तीसमारखाँ, का हास्यास्पद रूप सामने आता है। अपने देश और अपनी जनता पर, अधिकार के गर्व से, यह निकृष्ट से निकृष्ट अत्याचार करने को उद्यत रहता है: यद्यपि स्वयं महान मूर्ख और कायर है। अंग्रेजी प्रभुता के उन्नायक, अत्याचारी पदाधिकारी वर्ग के प्रति

विद्रोह की एक भावना इसमें परिलक्षित है, जो भारतेन्दु युग से बढ़ती चली आ रही थी।

(घ) **भूलचूक**–दिल्ली की 'जगदीश फिल्म कम्पनी' के आदेश पर जी० पी० ने इसे लिखा था। तभी से आपको प्रतिन्यास (Cenario : Silent Picture) लिखने की रीति ज्ञात हुई। परन्तु, व्यवस्थापक की अचानक मृत्यु के कारण संस्था ही टूट गई। फिर आपने स्वयं इसे सन १९२८ ई० में छपवाया। 'बौछार' में यह भी संकलित कर दिया गया।

इसमें एक डाक्टर की विधवा पुत्री, सुशीला, का एक व्यक्ति, रामदास, से प्रेम दिखाया गया है। वह प्रेम करती है परन्तु छिप-छिप कर। रामदास भ्रम से एक शक्कीमल, के घर को सुशीला का घर जान कर, वहाँ आता जाता है और शक्कीमल अपनी पत्नी पार्वती के चलन पर सन्देह करता है। भेद जानने के लिए शक्की अपनी दासी महरिन को उत्कोच का लालच देता है और इस प्रकार पार्वती उसके चलन पर सन्देह करती है। अन्त में अनेक व्यक्तियों की भूल के कारण सब भेद खुलता है और सुशीला तथा रामदास का विवाह होता है।

आपकी अनेक रचनाओं में विधवा-विवाह की पुष्टि की गई है। स्वयं अपनी सहोदरा का आपने विधवा-विवाह किया था। इसका विषय यही है। सुशीला के गुप्त प्रेम के मनोवैज्ञानिक उद्घाटन में आपको बड़ी सफलता मिली है। वस्तुत: जी० पी० की दृष्टि नारी की कोमलतम भावनाओं का कोना-कोना परख सकी है।

(ङ) **चोर के घर छिछोर**–मूलतः यह भी एक मूक-चित्र के रूप में सन् १९३६ में लिखा गया था। इसमें एक कलयुगी मक्कार साधू के कुचक्र, और अपने पुत्रों द्वारा लूटमार, का दुष्परिणाम दिखाया गया है। चोरों का कपटी पिता, बापू, अपने चार पुत्र कल्लू, मल्लू, नागू और फागू द्वारा लूटमार कराता है और स्वयं साधु वेष धारण किए रहता है। एक चतुर व्यक्ति, चण्टराम, को अपने कुचक्र में फंसा कर ये लुटेरे ठग लेते हैं। चण्टराम इसका प्रतिकार लेने के लिए सुन्दरी और वैद्य बनकर इन पांचों ठगों के सब धन का अपहरण करता है और मारता पीटता ऊपर से है।

'लम्बा तिलक, मधुरी बानी। दगाबाज की यही निशानी' के पूर्णावतार 'बापू' महात्मा को उल्टे जब एक मनुष्य ठग लेता है तब स्वभावत: हमारी हंसी नहीं रुकती।

'बौछार' में सम्पादिका श्रीमती कमला देवी पाण्डेय ने जी० पी० और उनकी सफलताओं का संक्षिप्त परिचय दिया है : जो कि बहुत कुछ अपने गुरुदेव की उपासना के मन्त्रों सा ज्ञात होता है। यह कोई साहित्यिक आलोचना अथवा किसी मान्य कसौटी पर परीक्षण नहीं है। जी० पी० की धर्म पत्नी को यह समर्पित किया गया है।

(९) भक्तिन

इसमें निम्नलिखित तीन प्रहसन संग्रहीत हैं—

(क) मिर्चानन्द—शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर सन् १९५३ ई० में लिखा गया था। सन् १९५४ ई० के 'हिन्दुस्तान' के होलिकांक में प्रकाशित हुआ था।

(ख) भक्तिन—दाम्पत्य जीवन के संघर्षों पर सुधारात्मक दृष्टि से सन् १९५६ ई० में इसकी रचना हुई थी।

(ग) घर का मैनेजर—विवाह दहेज एवं बेकारी (Unemployment) की विषमताओं पर सन् १९५६ ई० की रचना है।

उपन्यास

हिन्दी में उपन्यासों का आगमन सर्व प्रथम अनुवाद रूप में हुआ। कुछ विदेशी और अधिकतर बंगला के उपन्यासों का रूपान्तर हुआ था। इन उपन्यासों में बहुधा प्रेम का आधार होता था। इनका वाह्य आकार बहुत कुछ लम्बी आख्यायिका अथवा जीवन चरित्रों का सा होता था।

वास्तव में उपन्यास की परिभाषा कोई ऐसी नहीं जो सभी को मान्य हो। कहानी का ही परिष्कृत और दीर्घ रूप उपन्यास होता है। परन्तु कहानी जहाँ एकांगी होती है; उसका सम्बन्ध जीवन की किसी एक घटना मात्र से होता है; वहीं उपन्यास नायक के सम्पूर्ण जीवन का व्योरा होता है। यदि पूर्ण जीवन का विश्लेषण न भी हो सके तब भी कम से कम आरम्भ से मुख्य लक्ष्य-प्राप्ति तक का विवरण पूर्ण होना चाहिए। फिर भी कतिपय रचनाओं के विषय में यह निर्णय करना कि वे उपन्यास हैं अथवा जीवन चरित्र, बहुत कठिन है।

जी० पी० ने उपन्यासों का रूपान्तर भी किया और मौलिक रचनाएं भी। अस्तु इनका विभाजन हम दो श्रेणियों में कर सकते हैं—

(क)

इस श्रेणी में हम जी० पी० के उन उपन्यामों को रखने हैं जो अन्य रचनाओं के आधार पर अनूदित हैं—

(१) प्राणनाथ

सन् १९१२ ई० में दो वर्ष तक यह क्रमशः 'स्त्री दर्पण' में छपता रहा। बाद में इसका प्रकाशन पुस्तकाकार रूप में हुआ।

इसका तृतीय खण्ड जी० पी० की मौलिक रचना है और शेष श्री दत्त जी की रचना का रूपान्तर।

इसका विषय विधवा विवाह पर आधारित है।

इसके पहिले और दूसरे परिच्छेद, 'अनाथ बालिकाएँ' और 'वहिनें' में बंगाल के एक छोटे गाँव तालपोखर की दो बहिनों के निरीह जीवन का संकेत दिया गया है। जिसमें से बड़ी, विन्दु, विवाहिता है और छोटी सुधा, विधवा। तीसरा परिच्छेद 'स्त्री' दरिद्रता में भी सुख की विन्दु की गृहस्थी दिखाता है। चौथा परिच्छेद भविष्य की परछाईं'' विशेष रूप से विन्दु की चचेरी बहिन उमा की, धनवान होते हुए भी, दयनीय दशा दिखाता है। पाँचवें परिच्छेद 'नए इरादे' में एक मुख्य पात्र शरत का परिचय मिलता है, जो इस दीन गृहस्थी को कलकत्ते चलने का सुझाव देता है। गाँव का पारस्परिक मोह और स्नेह का जीवन छठे परिच्छेद 'गरीबी मे मित्र' में दिखाया जाता है। सातवाँ परिच्छेद 'लड़कपन की सखियाँ' आर्थिक भिन्न स्तरों पर होते हुए भी अनेक सखियों का परस्पर स्नेह दिखाता है। आँठवें परिच्छेद 'माँ बेटे' में शरत और उसकी माँ का थोड़ा जीवन दिखाया जाता है। यहाँ उपन्यास का प्रथम भाग समाप्त होता है। दूसरे भाग के पहिले परिच्छेद 'सोते कानों में मीठी भनक' में विन्दु की गृहस्थी कलकत्ते में दिखाई गई है। दूसरे

---

*अंग्रेजी और बंगला के विख्यात लेखक श्री रमेश चन्द्र दत्त के उपन्यास 'The Lake of Palms' के आधार पर इसकी रचना हुई है।

परिच्छेद 'कलकत्ते की बात' में शरत और सुधा के प्रेम का सूत्रपात होता है, और उमा के पति धनेश्वर के पतित जीवन का आभास दिया जाता है। तीसरे परिच्छेद 'अंधेरा घर' में विन्दु और उमा की भेंट होती है। यहीं पारिवारिक-जीवन और धन-वैषम्य की समस्याओं पर विचार होता है। चौथे परिच्छेद 'पूजा' में शरत विन्दु से सुधा के प्रणय की भिक्षा माँगता है। पाँचवे परिच्छेद 'दिवाली' में विन्दु और उसका पति हेम, शरत को सुधा से विवाह की अनुमति और वचन देते हैं। छठे परिच्छेद 'माता की आज्ञा' में शरत अपनी वृद्धा माता के अनुरोध से, कि वह विधवा विवाह न करे, हतचेतन हो जाता है। सातवें परिच्छेद 'उमा की कथा' में उमा के हृदय की ऊहा-पोह दिखाई जाती है, वह गौतम के महाभिनिष्क्रमण की भाँति सुख-ऐश्वर्य से भरे घर का त्याग करती है। यहाँ दूसरा भाग समाप्त होता है। तीसरा भाग जी० पी० की स्वभाविक प्रवृत्ति दिखाता है। पहिले परिच्छेद 'भयानक दृश्य' में एक मठ के गुप्त, अबलाओं पर नारकीय बलात्कार का चित्र उतारा गया है। इसके बाद 'अचरज', 'अचरज पर अचरज', 'भेद की बातें', 'गुप्त स्थानों में प्रवेश', 'फँस गए', और 'तहस नहस' में मठ और पण्डों का षड़यन्त्र और दुरभिसंधि द्वारा पापी जीवन का रहस्य खोला गया है। इसमें जी० पी० छद्म वेश और घटनाओं के अद्भुत संयोग पर आश्रित रहते हैं। इसके बाद चौथा भाग आरम्भ होता है। पहिले परिच्छेद 'ताल' में शरत की माँ पाश्चाताप करती है। और दूसरे 'ढाढ़स' में विधवा विवाह की पुष्टि की जाती है। तीसरा परिच्छेद 'महत्त्व' समसामयिक शासन और जागीरदारी आदि के उत्तराधिकारियों की चर्चा करता है। चौथे परिच्छेद 'मेहमानदारी' में प्रेम-विवाह (Love Marriage) की पुष्टि की जाती है। पाँचवें परिच्छेद 'पाश्चाताप' में हम धनन्जय का पश्चाताप शरत की बहिन काली के घर पर देखते हैं। काली के पति जगत किशोर की सहायता से वे उमा की खोज आरम्भ करते हैं। छठे परिच्छेद 'खोज' में धनन्जय का दर दर भटक कर उमा का ढूंढ़ना दिखाया गया है। सातवें परिच्छेद 'खूबसूरत योगिन' में उमा और धनन्जय का संवाद गृहस्थ संयत, और पलायनवादी साधु सन्यासी जीवन पर प्रकाश डालता है। गृहस्थ जीवन अधिक श्रेयकर ठहरता है और उमा पुन: उसमें प्रवेश करती है। अन्तिम परिच्छेद 'सुखद-मिलन' में सुधा और शरत की प्रणय-लीला और सुख-सम्भोग दिखाया जाता है। हेम और विन्दु भी सुखी हैं। इसके अन्तिम वाक्यों में श्री दत्त की नारी भावना मुखरित हो गई है। सुधा को शरत अपने जीवन का सुख, सहारा और दिलासा बताता है। नारी पुरुष के सामंजस्य की यह वही भावना है जो प्रसाद जी की कामायनी बताती है।

दत्त जी की शैली और गम्भीरता के अनुसार 'प्राणनाथ' की रूप रेखा शांत और शालीन है। इसमें हास्य का प्रखर रूप कहीं भी नहीं। मूलतः हम इसे हास्य रचना कह भी नहीं सकते। केवल तृतीय अंक के अतिरिक्त हम कहीं यह सन्देह नहीं कर सकते कि यह जी० पी० की रचना है।

तृतीय भाग को जी० पी० ने वक्तव्य में 'रेशम में टाट का जोड़' बताया है। विनयशीलता की बात अलग रखकर भी, हम यह तो निस्संकोच कह ही सकते हैं, कि यह तृतीय अंक चाहे रेशम हो अथवा टाट, है शेष खण्डों से पूर्णतः भिन्न।

इस भाग के दो ही चार पृष्ठ पढ़ कर तुरन्त पता चल जाता है कि इस पटके का जुलाहा कोई और है। वही जी० पी० के स्वाभाविक विकृत हास्य की झाँकी है। स्वाभाविकता का कोई बन्धन नहीं। स्टेशन पर अकेली तारिणी को पुरी जाते देख भी राजा के ससुराल वाले कुछ सन्देह नहीं करते। जी० पी० की कोई मुख्य रचना ऐसी नहीं जिसमें छद्म वेश का प्रयोग न हुआ हो। अवसर पाते ही यहाँ भी यह उथला हास्य आ गया।

इस भाग का समस्त वातावरण एक प्रकार की चकाचौंध से पूर्ण है। अंग्रेजी के रोमान्सवादी कवियों का सा जादू का संसार बसाया गया है। * इस अंश को हम जासूसी कहानियों और उपन्यासों की परम्परा में सम्मिलित कर सकते हैं।

(२) विलायती उल्लू

अंग्रेजी साहित्य में हास्य लेखकों ने शर्मीले चरित्रों का पर्याप्त उपहास किया है। जब संकोच और लज्जा झेंप की अवस्था को पहुंच जाते हैं तब निस्सन्देह उनका वाहक हास्यास्पद हो उठता है।†

---

* कीट्स आदि के भयानक रोमांचकारी वर्णनों की भाँति मठ का गुप्त रहस्य खोला गया है। अंग्रेज कवियों के 'सुरा, सुन्दरी और तलवार' के ग्रीक संस्कृति से प्रभावित चित्रण बहुत कुछ ऐसे ही होते हैं।

†पाश्चात्य लेखक मैकेंजी का 'The Bashfulman' ऐसे ही लजीले नायक का उपहास करता है।

अंग्रेजी साहित्य के हास्य का यह अस्त्र जी० पी० को बहुत रुचिकर जान पड़ा और उसके आधार पर सन् १६३२ ई० में 'विलायती उल्लू, की रचना की ।

इसमें अनेक ऐसी कहानियों का संग्रह है जो एक झेंपू व्यक्ति का जीवन चरित एक सूत्र में पिरोकर उपन्यास बनाती हैं ।

इसका नायक, टाम गाबुल, पहले परिच्छेद, 'डिनर' में अंग्रेजों के सामूहिक भोज की रीतियों से अनभिज्ञ होने के, और अपने संकोची स्वभाव के, कारण, एक दावत में अपनी मूर्खता दिखाता है । दूसरे परिच्छेद 'टी पार्टी' में गाबुल झेंप के कारण अनेक युवतियों के सामने अपनी छिपी जगह, अलमारी के नीचे, से निकाला जाता है । वह विष खाने का निर्णय करता है और धोखे से शरबत पीता है । इस पर भी डाक्टर आदि उसका उपचार करते हैं । तीसरे परिच्छेद 'प्रेम प्रस्ताव' में वह अपनी प्रेयसि, फ्लोरा, से प्रेम प्रस्ताव का अवसर पाता है । परन्तु अपनी मूर्खता के कारण एक नाले में गिर पड़ता है । पुन: अपने घर पर फ्लोरा के सामने वह अपनी धूर्त्तता प्रदर्शित करता है और फाँसी लगाकर मरने का निश्चय करता है । अपना अन्त निकट समझ कर यह प्रेम का प्रदर्शन कर देता है । चौथे परिच्छेद 'पिकनिक' में यह फ्लोरा को सैर कराने साथ ले जाता है और एक तालाब में गिर पड़ने से सभी एकत्रित नर-नारियों के उपहास का भाजन बनता है । 'पाँचवें परिच्छेद, 'प्रेम-भेंट' में गाबुल भ्रम से अपनी फटी पतलून फ्लोरा को भेंट करता है । छठे परिच्छेद 'प्रेम-मिलन' में गाबुल फ्लोरा को घोड़ागाड़ी पर बिठाल कर एक दावत में ले जाना चाहता है परन्तु वहरास्ते में गिर पड़ती है और यह सारा दिन भटकता रहता है । संध्या के झुटपुटे में यह फ्लोरा के धोखे से एक वृद्धा, श्रीमती टेनी का चुम्बन करता है और उसे एक लिखित प्रेम पत्र देता है । इसका रहस्य खुलने पर और भी लज्जित होता है । सातवें परिच्छेद 'बाल-डान्स' में गाबुल उतावली में पहले अपने पिता और फिर होटल के खानसामा के साथ नृत्य करता है । आठवें परिच्छेद 'परदेश यात्रा' में गाबुल दूसरे स्थान के किसी होटल में भ्रम से एक विवाहिता स्त्री पर बलात्कार करने के झूठे मुकदमें में अपराधी ठहराया जाता है और वहाँ से भी भागता है । नवें परिच्छेद 'सफरी प्रेमिका' में रेल में गाबुल से एक युवती से प्रेम हो जाता है । यह छल से गाबुल का धन हर लेती है और अपना नवजात छोटा बच्चा इसे थमा देती

है। अन्तिम परिच्छेद 'दुमकटी हथिनी' में गाबुल धोखे से अपने प्रेम-समर्पण का पत्र एक कुरूपा फैटी, को दे देता है और बाध्य होकर उससे विवाह करना पड़ता है।

(ख)

इस श्रेणी में जी० पी० के मौलिक उपन्यास आते हैं—

(१) भड़ाम सिंह शर्मा

सन् १९१५ ई० में जी० पी० ने इसकी रचना की और दो वर्ष तक निरन्तर यह इन्दौर के 'नवजीवन' में धारावाहिक रूप से छपता रहा। इसका बेदुम का लेख लखनऊ की 'कैनिंग कालेज मैगज़ीन', काशी की 'गल्प माला' और मेरठ की 'ललिता' में भी छपा था।

इसका विषय आर्य समाजी है। इसमें एक उपदेशक महोदय की धूर्त्तता को प्रधानता दी गई है। इसमें अनेक स्वतंत्र आख्यायिकाएं हैं जो जीवन चरित्र के रूप में एक उपन्यास बनाती हैं।

इसके पहिले और दूसरे परिच्छेद में रेल में कुछ यात्रियों का परिचय कराया जाता है। इन्हीं में एक उपदेशक, श्री भड़ाम सिंह शर्मा, भी हैं। एक काशी के चौबे भी सामने आते हैं। कुछ युवक छात्र इनका और एक सम्पादक जी का उपहास करते हैं। ये सब आपस में एक दूसरे की कटु आलोचना करते रहते हैं। तीसरे और चौथे परिच्छेद में यह चौबे जी छात्रों के बहकाने में आकर स्त्री रूप धारण करने को सहमत होते हैं और उपदेशक जी अपनी मूर्खता से नगर में मारे पीटे जाते हैं। पाँचवें से नवें परिच्छेद में इन छात्रों के षड़यंत्र से छद्म-वेषी चौबे जी का इन उपदेशक महोदय से विवाह कराया जाता है और ये बनारस के लिए रेल से प्रस्थान करते हैं। दसवें परिच्छेद में बनारस पहुंचकर चौबे जी रहस्य समझ पाते हैं और भड़ाम सिंह को छोड़ कर भागते हैं। ग्यारहवां परिच्छेद कुछ अप्रासांगिक सा जान पड़ता है। इसमें साहित्य क्षेत्र के सम्पादक और लेखक आदि पर चोटें कसी गई हैं। यह जी० पी० की आप बीती यंत्रणाओं के कारण ही आया है अन्यथा इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं जान पड़ता। जी० पी० का क्षोभ यदा कदा ऐसे दृश्य डालता चलता है। अन्तिम, बारहवें, परिच्छेद में उपदेशक जी की दुर्गति का उद्घाटन कर एक सच्चे उपदेशक का आदर्श बताया जाता है।

(२) गंगा जमुनी

यह भी अनेक प्रेम कथाओं का संग्रह है, जो एक उपन्यास की रचना करती हैं। यह पहले 'पागल' के नाम से छपता था और बाद को रहस्य खुला कि इसके भी रचयिता जी० पी० हैं। इसका रचनाकाल सन् १६२२-२५ ई० है।

इसका विषय मनोवैज्ञानिक है। प्रेम के विभिन्न सोपान दिखलाए हैं। बाल्य-काल, युवा और वृद्धावस्था में प्रेम का प्रादुर्भाव कैसे होता है, स्पष्ट किया गया है।

'जूलियट' की कहानी ऐसे ढंग से लिखी गई है कि एक प्रेमिका के पत्रों से सम्पूर्ण कथा आ जाती है। प्रेमी और प्रेयसि से न कभी भेंट होती है और न बातचीत; परन्तु प्रेम का जन्म हो जाता है। इसके ३-४ पत्र 'गल्प माला' में छपे थे तभी सम्पादक ने रोक दिए : क्योंकि पाठक बिगड़ रहे थे। इस माला द्वारा एक 'रजत पदक' जी० पी० को प्राप्त हो चुका था।

हास्य की दृष्टि से यह कृति महत्त्वपूर्ण नहीं। बहुत थोड़ा सा हास्य है और वह कदाचित् जी० पी० की वृत्तियों के प्रतिबिम्ब स्वरूप।

(३) लतखोरी लाल

यह रचना जी० पी० की ख्याति का मूल स्तम्भ है। इसकी रचना सन् १६३० ई० में हुई थी। इसे जी० पी० ने 'दिल की आग' के साथ साथ लिखा था। इसका प्रथम अंश सन् १६१२ ई० में लिखा गया था जिसका अनुवाद 'रानी' में निकला था।

इसमें युवावस्था के अनियंत्रित उच्छृंखल भावों का उन्मुक्त वेग, और उनसे उद्भूत संकट का दिग्दर्शन कराया गया है। इसका बहुत सा अंग अश्लील हो गया है।

इसके पहिले भाग 'जेण्टिलमैनी की धूम' में नायक लतखोरी लाल फैशन में उद्भ्रान्त होकर मसखरे मित्रों के भड़काने से अपनी ही स्त्री को रुष्ट कर देता है। दूसरे भाग 'गवने के मजे' में वह एक वेश्या से सम्भोग के हाव भाव सीखने जाता है और वहाँ आग लग जाने से सारा रहस्य खुल जाता है।

तीसरे भाग 'ससुराल की बहार' में लतखोरी बड़ी तय्यारी के साथ ससुराल जाता है। वहाँ अनेक रुकावटों के बाद अन्त में उसका अपनी पत्नी से साक्षात्कार होता है। अन्धेरे में उसे चोर समझ कर तलखोरी उस पर चढ़ बैठता है और रहस्य खुलने पर दुम दबा कर नौ दो ग्यारह हो जाता है। चौथे भाग 'शान की खातिर' में लतखोरी मोटर साइकिल चलाने में दक्ष न होते हुए भी उस पर सवार होने के कारण अनेक संकटों में फँस जाता है। इस पर एक अंग्रेज अफसर की आया भगाने का अपराध लगाया जाता है और घर पर सकुशल लौटना तक दूभर हो जाता है। पाँचवें भाग 'परदेश की लीला' में लतखोरी परदेशों में अज्ञात वास करता है। अपना परिचय छिपाने के लिए यह युवती वेश धारण करता है और अनेक विपदाओं में फँसता है। इस परिच्छेद में समाज में स्त्री के क्रय-विक्रय और बलात्कार आदि की समस्या को जी० पी० ने प्रखरतम रूप से मुखरित किया है।* अन्तिम परिच्छेद 'लाहौल विलाकूवत' में हिन्दू समाज में विवाह सम्बन्धी कुरीतियों पर प्रकाश डालकर, नारी के कतिपय जन्मजात गुणों का रोचक वर्णन किया गया है। अन्त में नायक लतखोरी का उसकी प्रेमिका से मिलन होता है।

इसका रूप बहुत कुछ जीवन चरित्र के अधिक निकट है। श्री अन्नपूर्णानन्द जी के 'महाकवि चच्चा' तथा निराला जी के 'कुल्ली भाट' की शैली का विधान बहुत कुछ इसके समानान्तर है।

इसका, 'लाहौल विलाकूवत' का वह अंश जहां पर स्त्री-शास्त्र की चर्चा की गई है बहुत मार्मिक बन पड़ा है। नारी के प्रेमी हृदय का जी० पी० ने वास्तव में बड़ा सच्चा रूप सामने रक्खा है। स्त्री की परिणय-सम्बन्धी प्रत्येक मुद्रा का आपको पूर्ण ज्ञान है। क्या समर्पण, क्या रूठना और क्या परिरम्भन, सभी परिस्थितियों का मनोवैज्ञानिक उद्घाटन है। इस क्षेत्र में हम जी० पी०

---

* नारी की स्वाधीन सत्ता की आवश्यकता और उसके पीड़ित जीवन की ओर जी० पी० निरन्तर उसी प्रकार संकेत करते रहते हैं जिस प्रकार प्रेम चन्द के अनेक जगत विख्यात उपन्यास। समाज के शरीर में वेश्या वृत्ति उसी प्रकार मानी गई है जैसे प्राणी के शरीर पर नासूर। समाज को अपने इस भीषण दुर्दान्त रोग से बचने का उपचार भी जी० पी० ने एक आध अवसर पर सुझाया है। 'साहब बहादुर' में दिलवर बेगम और नवाब का विवाह इसका प्रमाण है।

को रीतिकालीन नायिका-भेद-मर्मज्ञों की कोटि में पाते हैं। परन्तु आपके अध्ययन सदैव स्थूलता और वीभत्सता को छू जाते हैं।

(४) स्वामी चौखटानन्द

इसका आरम्भिक अंश सन् १९१३ ई० में लिखा गया था जो 'इन्दु' में प्रकाशित हुआ था। इसका अनुवाद 'वीस्मी सदी' नामक गुजराती पत्रिका में 'स्वामी जा ना प्रेम पाठ' के नाम से सचित्र छपा था।

बाद में सन् १९३७ ई० में इसे पूर्ण कर, एक उपन्यास का रूप दिया जो सन् १९४० ई० के बाद 'चाँद' में छपा।

इसमें एक सनकी चरित्र को बिना वार्त्तालाप कराए प्रेम में डाला गया है। प्रेम का रहस्य और मनोविज्ञान दिखाया गया है।

(५) भय्या अकिल बहादुर

इसका रचनाकाल सन् १९३७-३८ ई० है। प्रकाशन सन् १९४२ ई० में हुआ।

इसमें, एक स्वयं को बहुत बुद्धिमान समझने वाले धूर्त्त, भय्या अकिल बहादुर, का अनेक भारत के विख्यात नगरों में अनुभव दिखाया है। कलकत्ता, लखनऊ, बम्बई और हरद्वार के साथ ही 'मुश्किल' में इन महाशय की अवस्था दिखाई गई है।

भय्या अकिल बहादुर ग्राम निवासी हैं, अस्तु कलकत्ते का व्यस्त और संघर्षी जीवन आपको बहुत क्लेश देता है। वहां पारस्परिक स्नेह का उतना बन्धन नहीं जितना भौतिकता का भार है। लखनऊ के स्वाभाविक जीवन में किस प्रकार नवाबी जीवन की विनोदी प्रकृति कूट कूट कर भरी है, इसका प्रदर्शन अकिल बहादुर और उनके मित्र लम्बरदार साहब के प्रति किए गए उपहास में लक्षित होता है। 'मुश्किल' में लम्बरदार साहब खिजाब के प्रयोग से ढली जवानी लौटा कर विवाह का उपक्रम करते हैं और अकिल बहादुर इसे कोई रोग जान कर उनके उपचार का प्रबन्ध। रहस्य खुलने पर अकिल बहादुर को गाँव छोड़ना पड़ता है। अकिल बहादुर 'बम्बई' की ओर प्रस्थान करते हैं और रेल में उन्हें एक सुन्दरी वेश में क्लीव से साक्षात्कार होता है जो इनका सहारा लेकर अनेक धनाढ्यों को बम्बई म ठगता है। यह स्वयं धोखे

में रहे आते हैं और रहस्य खुलने पर बम्बई से भागते हैं। बम्बई से भागते समय रेल में आप एक नेता को धोखा देकर उसके स्थानापन्न बनते हैं और रहस्य खुलने पर वहां से भी भाग खड़े होते हैं।

इसमें संयोग का बहुत हाथ है। आरम्भ से अन्त तक अकिल बहादुर दैवयोग से प्रत्येक विपदा से बाल बाल जान बचा कर भागते दिखाई पड़ते हैं।

हरद्वार के प्रसंग में, 'फ़ीलपाया राज की कहानी' अधिकांश में भारतेन्दु की 'अन्धेर नगरी' की प्रतिकृति है। इस प्रकार से उसे अपने साँचे में ढालने की जहाँ जी० पी० की कुशलता का संकेत मिलता है वहीं उनकी अन्य साहित्य-कारों की कृतियों को अपना बनाने की अनाधिकार चेष्टा का आभास भी।

व्यापक दृष्टि से जीवन चरित्र उपन्यास का एक अंग है। भारतीय पौराणिक वृहत कथाएँ और विदेशी जीवन चरितों (Biographies) के सम्मिश्रण से उपन्यास का जन्म हुआ है, और हमारे हिन्दी के जीवन चरित्रों का भी। वैसे जीवनी में नायक प्राय: वास्तविक जगत से लिया जाता है और लेखक का अधिकतर उससे निर्जी सम्पर्क होता है जब कि उपन्यास का नायक काल्पनिक होता है और उसमें जीवन के अनुभव का महत्त्व रहता है। हमारे देश के अधिकांश उपन्यास लम्बी लम्बी आख्यायिकाओं के परिष्कृत रूप में किसी काल्पनिक नायक अथवा नायिका का जीवन चरित्र देते हैं। इसी प्रकार जी० पी० के यह उपन्यास काल्पनिक जीवनी को प्रधानता देते है : न उनमें अंग्रेजी के उपन्यासों की भांति तारतम्य है और न घटनाओं का सम्बद्ध विकास।

कहानियाँ

हिन्दी में हास्य रस की कहानी का जन्मदाता हम जी० पी० को मान सकते हैं। २०वीं शती के आरम्भिक दस-बारह वर्ष के जीवन में कहानी का परिष्कार तो निस्सन्देह हुआ था परन्तु स्वतन्त्र रूप से हास्य-कथा का कोई चिन्ह तक न था। भारतेन्दु युग में निबन्धों और कविताओं में हास्य प्रधान रचनाएँ हुई थीं परन्तु कहानी का तब कोई अस्तित्व नहीं था। सर्व प्रथम जी० पी० की कहानी 'पिकनिक' सन् १९१२ ई० में 'इन्दु' के अप्रेल अंक में निकली।

यद्यपि कहानियाँ हिन्दी साहित्य में कुछ अनूदित आई थीं, जी० पी० ने मौलिक रचनाएं प्रस्तुत कीं; कदाचित् अन्य भाषाओं में भी हास्य-कहानियों के अभाव के कारण। कहानियों का प्रकाशित विख्यात संग्रह आपका केवल एक है, और एक अप्रकाशित—

(१) लम्बी दाढ़ी

जी० पी० की कतिपय कहानियाँ 'इन्दु' और 'मनोरञ्जन' दोनों में छपी थीं। 'इन्दु' ने हास्य रस की रचनाओं पर एक स्वर्ण पदक पुरस्कार स्वरूप देने का निश्चय किया था जो आपकी इन कहानियों पर प्रदान किया गया।

इनमें से ६ को संगृहीत करके सन् १९१३ ई० में 'लम्बी दाढ़ी' का पुस्तक-रूप दिया गया। आगे के संस्करणों में चौधरी जगत मोहन लाल 'रवाँ' (इलाहाबाद) के कुछ पद भूमिका-स्वरूप जोड़ दिए गए। जी० पी० की प्रशंसा से ओत प्रोत यह पद साहित्यिक महत्त्व के नहीं ही कहे जायेंगे।

किसी एक व्यक्ति तक अपना प्रेमोपहार सीमिति न रख कर श्री मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी' ने समस्त रसिक वर्ग को इसका अपण कर अपनी उदारता का परिचय दिया है।

इसकी कहानियाँ यह हैं—

(क) मौलवी साहब, उर्फ़, जनाब मौलाना बरबाद अली बाही-तबाही——इसके ३ मुख्य खण्ड किए गए हैं—'मकान पर बुरे फँसे', 'मकान से भगा दिया', और 'स्कूल से अब पीछा छूटा'। इसमें एक पुराने मौलवी साहब का उपहास किया गया है। बच्चों की स्वाभाविक चंचलता का विद्रोह जिस प्रकार ऐसे शिक्षक-वर्ग के प्रति हुआ करता है उसी का हास्यमय चित्रण है।

यह पुराने मौलवी साहब पहले खण्ड में एक बालक को घर पर पढ़ाते मिलते हैं। यह बालक आत्म कथा के रूप में कथानक का विकास करता है। कभी अपनी बिल्ली और कभी अपने कुत्ते को सिखा कर यह मौलवी साहब से छेड़-छाड़ करता है। जाड़े की रात में मौलवी साहब को यह पानी से स्नान कराता है। आगामी खण्डों में कुछ दिन बाद इन्हीं मौलवी साहब से इस बालक की शिक्षालय में मुठभेड़ होती है और अनेक प्रकार से वह इनको

कष्ट देता है। मौलवी साहब अपनी धूर्त्तता से विद्यार्थियों को उत्तीर्ण और असफल करते रहते हैं।

(ख) पण्डित जी, उर्फ़, महामहोपाध्याय पण्डित चापर करन अगड़म-बगड़म—मौलवी साहब के ढंग पर इसमें प्राचीनता के पुजारी एक पण्डित जी का उपहास है। समय की प्रगति मे पिछड़े रहने के कारण यह वर्ग किस प्रकार भारतीय संस्कृति का विनाश कर रहा है इसका इस कहानी में अच्छा निदर्शन हुआ है।

यह पण्डित जी इसी में संस्कृत का कल्याण समझते हैं कि उसके समझने वाले विद्वान इने गिने हों। केवल दमड़ी लाल और भगवानदीन दो भोंदू विद्यार्थियों पर आपकी आस्था है और उन्हें सब अन्य विद्यार्थी बराबर चिढ़ाते रहते हैं।

इसका सबसे मर्मिक अंश वह है जहाँ पण्डित जी इन्सपेक्टर के आने पर घबराहट और यश के खुमार में उसका अभिनन्दन करने के लिए पार्वती की स्तुति पढ़ने लगते हैं। यन्त्रवत जड़ता का यह अच्छा उदाहरण है।

(ग) मास्टर साहब, उर्फ़, बाबू झपसट नाथ एफ़० ए० फेल—अपने अंग्रेजी के नाम मात्र के ज्ञान पर दीवाने एक अध्यापक की मूर्खता का इसमें प्रकाशन है।

यह मास्टर साहब छात्रों के उपहास के ही नहीं, प्रधान अध्यापक और इन्सपेक्टर आदि की भी दिल्लगी का लक्ष्य बने रहते हैं।

(घ) कालेज-मैच— कुछ विद्यार्थी समय से बहुत पीछे रह कर मूर्ख बने रह जाते हैं और कुछ अपनी आधुनिकता के उछाह में संरक्षकों की गाढ़ी कमाई पर पानी फेरते हैं। अति हर वस्तु की बुरी होती है। एक प्राचीनता की लकीर पीटने में मस्त है और दूसरा उसके विपरीत फ़ैशन से उद्भ्रान्त। ऐसे ही दो चरित्रों का इसमें अंकन है।

जो विद्यार्थी आत्मकथा के रूप में कथा का प्रवचन करता है वह एक मैच खेलने के लिए सवा दो सौ रुपए केवल कपड़ों पर व्यय करता है और उनसे कुछ लाभ भी नहीं उठा पाता। अपनी हास-विलास की धुन में वह उन्हें भी नष्ट कर देता है। दूसरी ओर पण्डित राम दास छुआछूत आदि से

इतने संकीर्ण-हृदय के दिखाए गए हैं जो सहपाठियों से मिल जुल कर दो डग भी जीवन नहीं चला सकते ।

(ङ) **चचा भतीजे**— 'प्रेम और सुन्दरता' से चिढ़ने वाले, अपने संयम के प्रदर्शन में भूले, जब स्वयं प्रेम का शिकार बन जाते हैं तब यदि उन पर हमको हँसी आए तो आश्चर्य ही क्या । ऐसे ही एक छात्र का इसमें उपहास है । कहानी के अन्त में उसके चाचा का भी उपहास सम्मिलित कर लिया गया है ।

यह छात्र, लाला साहब, पहिले 'प्रेम और सुन्दरता' के नाम से चिढ़ते हैं पर वासना की आग भड़कने पर एक कल्पित चमार की बेटी को हृदय दे बैठते हैं । इस चमार की पुत्री की ओर से अन्य छात्र झूठे प्रेम पत्र भेजते रहते हैं और एक दिन लाला साहब मिलनोत्कंठा से चमार के घर पहुंच जाते हैं । वहाँ चमार की स्त्री इन्हें न पहिचान कर देर से घर लौटा हुआ, अपना पति, समझ कर अच्छी मरम्मत करती है ।

(च) **एक अण्डर ग्रेजुएट की शादी**—इसमें एक नवयुवक का बेमेल विवाह और समाज की विवाह सम्बन्धी कुरीतियों पर कटाक्ष किया गया है ।

इसमें एक शिक्षित युवक का, प्राचीन परम्पराओं के बन्धन से, एक अशिक्षित किशोरी से विवाह होता है । विवाह के समय जाति पाँति के अगुआ बनने वाले हठी और ढोंगी व्यक्ति एक न एक बखेड़ा पैदा करते हैं । वर-वधू के चिन्तन और विचारों में आकाश-पाताल का अन्तर है और इसी कारण उनका भावी जीवन भी एक यातना बन जाता है ।

इन कहानियों के चरित्र प्राय: एक वर्ग-विशेष के प्रतीक हैं । केवल कल्पना का कौतुक नहीं है । आज से ५ वर्ष पूर्व मिडिल स्कूलों में 'मास्टर साहब' के न जाने कितने प्रतिरूप मिल जाते ।

अन्तिम दो कहानियों में स्थान स्थान पर उर्दू के शेरों का प्रयोग बड़ा मार्मिक हुआ है । हास्य में इनका प्रयोग नवीन और अनोखा है ।

इन कहानियों के आधार पर हम यह नहीं कह सकते कि जी० पी० प्राचीनता अथवा अर्वाचीनता के पक्ष पाती हैं । दोनों पक्षों की मूर्खता का उपहास है । 'हिन्दी बंगवासी' की सम्मति बहुत कुछ अंशों में सत्य है—

"हमें यह देख बड़ा ही आनन्द हुआ है कि इन उपदेशों को देते समय इन कहानियों के रचयिता महाशय इस अभागे देश के प्राचीन गौरव को बिलकुल भूल नहीं गए हैं।"

[२] रंग बिरंगी दुनियाँ

जी० पी० 'रंग बिरंगी दुनियाँ' के नाम से कुछ कहानियाँ एकत्रित करना चाहते हैं। इसका अभी प्रकाशन नहीं हुआ है। लगभग १५ कहानियाँ विविध विषयों पर हैं जिनका यह संग्रह होगा। इसमें आपकी विख्यात कहानी 'जवानी के दिन' भी संगृहीत होगी। इसमें आपकी एक पूर्व प्रकाशित पुस्तिका 'कम्बख्ती की मार' की भी कुछ कहानियाँ सम्मिलित कर ली गई हैं।

कमबख्ती की मार सन् १९३६-३८ ई० का निम्न गल्प-कथाओं का सांग्रह है—

(१) कम्बख्ती की मार,
(२) पते की बात,
(३) न कहने वाली बात
(४) तकदीर की बात,
(५) बेपर की बात,
(६) जवानी के दिन,
(७) बुढ़ापे की रात,
(८) नाजुक बदन, तथा
(९) एडिटर मियाँ की सूझ।

अपनी रचना के सृजन में कहानीकार को अन्य साहित्यकारों की अपेक्षा अधिक सतर्क रहकर कौशल से कार्य लेना पड़ता है। उसको अपनी बात बड़े सूक्ष्म एवं सयंत ढंग से कहनी होती है। उसे जीवन के व्यापक रूप का दिग्दर्शन कराने का अवसर नहीं वरन् जीवन की किसी एक घटना की झाँकी दिखाकर सन्तोष करना है। लेखक का कौशल तो इस बात में है कि वह अपनी बात कितने मर्मिक ढंग से कहने में सफल होता है।

क्योंकि कहानी केवल जीवन के एक अंग अथवा मनोभाव का प्रदर्शन करती है, उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास सभी उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। हम उसे सफल तभी कह सकते हैं जब उसमें एक

चिरन्तन सत्य का उद्घाटन होता है और वह हमारे मर्मस्थल पर सीधा बैठ कर मस्तिष्क पर एक स्थायी भाव छोड़ जाता है।

जी० पी० की कहानियाँ चरित्र के अंकन से उतनी प्रशस्त नहीं जितनी घटनाओं के आवर्त्तन से बोझिल होती हैं। इनके भार से दब कर अन्य विकास शिथिल पड़ जाते हैं, और उसमें संतुलन का अभाव आ जाता है। असंगत तथा अतिरंजित बातों के अधाधुन्ध समावेश से हास्य की कोटि नीचे गिरती जाती है। यही कारण है कि जी० पी० की कहानियाँ साहित्य में वह स्थान न बना सकीं जो आगे के लेखकों को प्राप्त हुआ। बेढब जी, श्री भगवती चरण वर्मा और विशेष रूप से श्री अन्नपूर्णानन्द, की साधारण कहानियाँ आपकी रचनाओं से कहीं अधिक सफल रहीं।

(४) वार्त्ताएँ

जी० पी० की वार्त्ताओं के दो रूप हैं—

(क)

(१) हास्यरस (भाषण)

समय समय पर विभिन्न साहित्यिक संयोजनों में जी० पी० के भाषण होते रहे। इनमें से ५ का संग्रह करके 'हास्य रस' के नाम से प्रकाशन हुआ। आपके भाषणों का केवल यही एक संग्रह है। भाषणों का इस प्रकार एकत्रित रूप में प्रकाशन हमारे साहित्य में अधिक प्रचलित नहीं। यदि सभी महान् विद्वानों के भाषण इस प्रकार छपने लगें तो निस्सन्देह यह बड़े लाभप्रद सिद्ध हों, तथा शीघ्र साहित्य में अपना स्थान बना लें। कुछ राजनीतिज्ञ नेताओं के भाषणों के यदा कदा संग्रह छपने लगे हैं। इसी प्रकार विविध कलाओं के अभिभावकों के भाषण अवशय शलाघ्य होंगे। 'हास्य रस' में ५ भाषण हैं—

(क) हास्यरस—५ मई सन् १९३३ ई० को द्विवेदी मेला के काव्य परिहास सम्मेलन के सभापति के आसन से जी० पी० ने 'हास्य रस' पर भाषण दिया। इसमें हास्य रस का वैज्ञानिक अन्वेषण विनोदी शैली में किया गया है। इससे केवल एक लेखक मात्र न होकर गहन विषयों में जी० पी० की पैठ और अध्ययन का संकेत मिलता है।

(ख) **हास्य का महत्त्व**—८ अक्टूबर सन् १९३३ ई० के परिहास सम्मेलन, कलकत्ता, के सभापति के पद से यह भाषण जी० पी० ने दिया था। इसमें हास्य के महत्त्व, उस पर आक्षेप, सुधार का ढंग और उसमें कला का प्रयोग आदि का गम्भीर अध्ययन 'हास्य रस' की भाँति विनोदी शैली में प्रस्तुत किया गया है।

(ग) **साहित्य का तमाशा**—इसमें कुछ अंश उस ओजस्वी निबन्ध का है जो २० नवम्बर सन् १९३२ ई० के पटना कालेज के 'हास्य-रस सम्मेलन में जी० पी० ने पढ़ा था। आप इस सम्मेलन के सभापति निर्वाचित किए गए थे। इसमें हिन्दी की, अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करने की, समस्या पर विचार प्रगट किया गया है। आपके मत से सभी बोलचाल के शब्द साहित्य में प्रवेश पाने के अधिकारी हैं——चाहे किसी भी भाषा की उपज हों।

(घ) **नाटक बनाम टाकी**—यह जी० पी० का हिन्दुस्तान एकेड्मी-सम्मेलन, प्रयाग, का भाषण है। इसमें नाटक के अवयव, उसका विकास, और उसमें हास्य के प्रयोग का सविस्तार विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण किया गया है।

(ङ) **शिक्षा के आवश्यकीय अंग**—६ फरवरी सन् १९३६ ई० के शिक्षा सम्मेलन, गोण्डा, में यह भाषण जी० पी० ने दिया था। इसमें मनोरंजक रीति से आरम्भिक शिक्षा के अनिवार्य अंगों का विवेचन किया गया है।

इन भाषणों से प्रत्यक्ष लक्षित होता है कि जी० पी० की अन्वेषण प्रतिभा असाधारण है। केवल भारतीय नहीं, विदेशी विद्वानों की आलोचनात्मक कृतियों के अध्ययन की भी स्पष्ट छाप है। परन्तु यह अध्ययन बहुत गहरा नहीं जान पड़ता। विशेषकर 'नाटक बनाम टाकी' में हास्य गौण है और साहित्यिक विश्लेषण उद्दीप्त। यहाँ जी० पी० का साहित्यनिर्माता रूप मौन है और विद्यार्थी रूप प्रखर।

(ख)

(१) आकाश पाताल (आकाशवाणी की वार्त्ताएँ)

सन् १९५० ई० में सर्व प्रथम जी० पी० को आकाशवाणी, लखनऊ, से अपनी हास्य वार्त्ता प्रसारित करने का निमंत्रण मिला। फिर इलाहाबाद में भी अवसर मिला। इन्हीं वार्त्ताओं ने जी० पी० को पुनः साहित्यिक क्षेत्र में अनायास ढकेल दिया। लखनऊ की पहिली वार्त्ता में जब आपने अनेक

पात्रों के स्वर में स्वयं सम्भाषण आरम्भ किया तब आकाशवाणी के अधिकारियों को यहाँ तक सन्देह हुआ कि प्रसारण-भवन में आपके साथ ही और व्यक्ति भी अवश्य रहे होंगे। * विभिन्न हास्य-कार्य-क्रमों में जी० पी० की ऐसी दस निम्नलिखित वार्त्ताएँ प्रसारित हो चुकी हैं—

(क) हँसे क्यों ?
(ख) मुंशी शिकायत राम।
(ग) आये शिकार करने, लौटे शिकार होकर।
(घ) भैंस चढ़ी बबूल पर गप गप गूलर खाय।
(ङ) लेने के देने पड़े। (इसका शीर्षक यों भी था—'लेने के देने पड़े, मजाक ही मजाक में')
(च) न हुए बीरबल अखबार के दफ्तर में।
(छ) गुरु घण्टाल।
(ज) सबसे बड़ी भूल।
(झ) सुनो जी गप। और
(ञ) छूमन्तर।

इनका प्रकाशन 'आकाश पाताल' के नाम से हो चुका है।

इन रोचक वार्त्ताओं का रुप-विधान पूर्णत: गल्पों की शैली पर किया गया है। साहित्य में गल्पों का कोई परम्परा-सम्बद्ध इतिहास नहीं। हिन्दी मे इनका स्थान नहीं के बराबर है। हाँ, श्री अमृत लाल नागर ने अवश्य इस प्रकार की 'नवाबी मसनद' और 'तुलाराम शास्त्री' की रचना की।

थके-माँदे, जीवन की याँत्रिक यंत्रणाओं से त्रस्त मानव को क्षण मात्र विराम देने के लिए गल्प अमृत के समान है। अल्प समय तक एक आवेश की भाँति गल्पें आनन्द देती हैं और पुनः स्मृति से उतर कर विलीन हो जाती हैं।

---

* इन वार्त्ताओं में स्वर और भाषा के परिवर्तित रूप ही वास्तव में हास्य के मुख्य आधार थे। अखिल भारतीय आकाशवाणी, लखनऊ केन्द्र के सौजन्य से साहित्यिक 'आज' में 'अगर बीरबल अखबार के दफ्तर में होते' जी० पी० की उपर्युक्त प्रसंग में 'घ' वार्त्ता, प्रकाशित हुई थी। इसमें तनिक सेठ जी का एक भाषण देखिए—

"ओ हो हो ! बड़ो शुन्दर और शच्चो। जब तक शेठाणी जी घघंट निकालती थी तब तक इनकी ओर बरोबर घूरो ही करतो थो। और जब शे मुँहफट हो गयी तब शे शूरत देखतो ही दादू शोगन्ध घिग्घी बन्ध जाए है। हा?"

उनका कोई ऐसा प्रभावात्मक उद्देश्य नहीं होता जिनमे उनका साहित्य शाश्वत रह सके। कल्पना की बिना सिर पैर की उड़ान की नीलियों पर तनी गल्पें भी आतिशबाजी के समान एक चमक दिखा कर सदा के लिए बुझ जाती हैं। इसी प्रकार जी० पी० की इन रचनाओं का प्रभाव क्षणिक होता है : उनका हृदय अथवा मस्तिष्क पर कोई स्थाई चित्रपट नहीं बनता।

(५) हास्येतर शिक्षा-सम्बन्धी रचनाएँ

जी० पी० ने कुछ ऐसी पुस्तकों की रचना की जो हास्य रस की कृति साहित्यिक दृष्टिकोण मे कदापि नहीं कही जा सकतीं।

यों तो व्यापक दृष्टि मे जो कुछ भी भाषा द्वारा व्यक्त किया जाय सभी साहित्य है। आज तक के सभी इतिहास, ज्ञान, विज्ञान, दर्शन आदि जितनी विद्याएँ है उनके समस्त ग्रंथ साहित्य के अंग है। परन्तु साथ ही शुद्ध साहित्य और इतरेतर साहित्य में महान अन्तर है।

विशिष्ट बात को एक प्रभावात्मक रूप देने में साहित्यकार का महत्त्व है। अपनी निजी अथवा वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना द्वारा वह आनन्द प्रदान करता है। वह एक सृजनात्मक प्रतिभा से युक्त व्यक्ति होता है। अनेक हृदयों में एक विशेष स्तर मे देखी हुई वस्तु द्वारा समान प्रभाव उत्पन्न करना साहित्यकार की कला है। वैज्ञानिक तथ्यों में सत्य का पूर्ण रूप प्रकाशित नहीं होता, वरन् एक सार प्रगट होता है। इतिहास की भाँति साहित्य क्रम का अनुयायी नहीं, उसे केवल विशिष्ट तथ्यों का संकेत मात्र करना होता है। अस्तु साहित्यकार की वाणी में एक विलक्षणता होती है, लालित्य होता है। वह रहस्य और सौन्दर्य का सृष्टा और साथ ही सत्य का वक्ता है।

जी पी० की शिक्षा सम्बन्धी यह रचनाएँ बहुत कुछ वैज्ञानिक बन कर रह गई हैं यद्यपि एक साहित्यकार की प्रतिछाया से वे सर्वत्र अप्रभावित नहीं। इनमें निम्नलिखित चार प्रधान हैं—*

---

* 'Survey And Demarcation' सन् १९४७ ई० में प्रकाशित यह अंग्रेजी की पुस्तक है। इसमें सर्वे से संबन्धित नाप-जोख के विस्तृत नियम स्पष्ट किए गए हैं। पुस्तक के वर्ण्य विषय का हिन्दी साहित्य से कोई सम्बन्ध नहीं है।

(१) कागजी करतब

सन् १९३० ई० की इस रचना में खेल-खेल में बच्चों को रेखा गणित पढ़ाने का आयोजन किया गया है। इस प्रकार की पुस्तकें हिन्दी में देखने को नहीं मिलतीं। अधिकतर अंग्रेजी में इस प्रकार की पुस्तकें उपलब्ध होती हैं जिनमें बच्चों का ज्ञान बढ़ाने के लिए मनोविनोद का सहारा लिया जाता है।

(२) हवाई लीला

इसमें वायु के रहस्यों का रोचक ढंग से उद्घाटन कर बच्चों को उसके आधार पर अनेक खिलौनों का ज्ञान दिया गया है। इसका रचनाकाल सन् १९३१ ई० है।

(३) उड़न खटोला

यह वैज्ञानिक शिक्षा की पुस्तक सन् १९५३ ई० में प्रस्तुत की गई। पतंग और कृत्रिम वायुयान द्वारा उड़न-कला का मर्म क्रम से बतलाया गया है। कुछ उड़ने वाले खिलौनों को बनाने के उपाय दिए गए हैं।

शुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण से उपर्युक्त पुस्तकों का कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

(६) विविध रचनाएँ

इस वर्ग में जी० पी० की वह रचनाएँ हम रख सकते हैं जिनकी शैली आपकी अधिकांश रचनाओं से और एक दूसरे से पूर्णतः भिन्न हैं। इनमें प्रधान यह हैं—

[१] नोंक-झोंक

यह सन् १९१९ ई० की रचना है। जी० पी० के विचार मे यह उनकी श्रेष्ठतम कृति है। इसमें कोमल भावनाओं (Tender feelings) का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसकी प्रस्तावना में, श्री ईश्वरी प्रसाद शर्मा ने, जो 'मनोरंजन' एवं 'धर्माभ्युदय' के सम्पादक रह चुके थे, कृति का संक्षिप्त परिचय दिया है। इसे ३ खण्ड में विभाजित किया गया है—

पहिले खण्ड में चार झाँकियाँ हैं—

(क) 'मैं न बोलूँगी या प्यारी का रूठना'—पहिले यह लेख सन् १९१२ ई० में 'इन्दु' में छपा था।

(ख) 'हमसे न बोलो या प्यारी का मचलना'—यह सन् १९१४ ई० में 'मासिक मनोरंजन', आरा, में छपा था।

(ग) 'सुनो तो या प्यारी का रोकना'—यह सन् १९१४ ई० में 'इन्दु' में निकला था।

(घ) 'उहुंक या प्यारी का स्वप्न'—सन् १९१४ ई० में 'इन्दु' में प्रकाशित हुआ था।

पहिली झाँकी, मिलने की तैयारी, दूसरी भेंट, तीसरी बिछुड़न और चौथी वियोग की है। इनमें दाम्पत्य जीवन की झाँकियाँ दिखाई गई हैं। अपने धर्म पति पर हृदय से अनुरक्त एक वधू का मान, समर्पण, संयोग और विरह, किस प्रकार भावों का आवेश पकड़कर, मचलता, झुँझलाता और इठलाता है इसका अच्छा विश्लेषण किया गया है। मिलनोत्कंठा से आतुर रमणी, संयोग से पूर्व रूठने के सौ सौ अभिनय करती है परन्तु मिलन का संकेत मात्र सारे भावावेश को मिट्टी के घरौंदे की भाँति ढहा देता है। लाख प्रयत्न करने पर भी रोष साथ नहीं देता : मुस्कान बरबस अधरों पर खेल जाती है। हृदयेश्वरी का मान कभी हृदय में नहीं आता। वह सब प्रदर्शन और झूठा अभिनय होता है। स्वयं 'हमसे न बोलो' का व्यंग्य कसती हुई पति-अनुरक्ता, एक क्षण में अपनी अभिलाषित इच्छा की पूर्ति हो जाने पर, प्राण प्यारे से 'हमसे न बोलो' सुनकर खीझ जाती है। परन्तु यह खीझ सदैव पावन है, सुखकारी है और सम्भोग-वर्णन में अनुपम आनन्द-वर्धिनी मुद्रा है। विलग होने की आशंका से कामिनी का हठ अपने प्रिय को केवल कुछ क्षणों के लिए और अपने समीप रोकने को सब कुछ कर सकता है। और अन्त में प्रेयसि का विरहदग्ध जीवन, तड़पन बन जाता है। उसके सभी रस-ऐश्वर्य भग्न हो जाते हैं।

इन लेखों की विशेषता यह है कि प्रेयसि नायिका भावावेश में स्वयं प्रलाप सा करती जाती है। उसकी वार्त्ता से दूसरे के भी कार्य-करण स्पष्ट हो जाते हैं।

'उहुंक' पर जी० पी० को बड़ा गर्व था। एक मित्र ने व्यंग्य किया कि 'इधर उधर तो सभी रचनाएँ छप जाती हैं, सरस्वती में प्रकाशित हो तो हम समझें।' जी० पी० ने इसे प्रकाशनार्थ भेजा परन्तु पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी

जी का उत्तर मिला—'**मेरी पत्रिका बहुत सी महिलाओं के पास जाती है।**' और इसी कारण इसके छपने में असमर्थता प्रगट की। इससे जी० पी० को बड़ा धक्का लगा और तभी से इस प्रकार के लेख लिखना समाप्त कर दिया।

'नोक-झोंक' का दूसरा खण्ड 'अच्छा' या 'अक्ल की मरम्मत' है। यह एक प्रहसन है।*

'अच्छा' में एक शिक्षित युवक बदहवास राय अपनी अशिक्षित स्त्री सुशीला से उदासीन रहता है। इससे दुःखित होकर सुशीला अपने मायके चली जाती है। दासी के संवाद से बदहवास राय भ्रम से यह समझता है कि सुशीला ने विष खाकर प्राण त्याग दिए। वह बहुत दुःखी होता है और इसके लिए अपने मित्र, रसिक, तथा पिता, झपसट राय, को अपराधी सिद्ध करने के लिए दरोगा, रोजनामचा अली को लेकर उपद्रव खड़ा करता है। रसिक के घर पर सब एकत्रित होते हैं। संयोग से सुशीला भी वहाँ उपस्थित रहती है। उसे जीवित देख कर सब रंग में भंग हो जाता है। इसका शीर्षक 'अच्छा' इस कारण रक्खा गया कि रसिक, बदहवास को नारी को प्रसन्न रखने का एक मात्र मंत्र 'अच्छा' बताता है। उसकी प्रत्येक माँग पर केवल 'अच्छा' ही लाभप्रद होता है। बदहवास दृढ़ निश्चय करके इसका प्रयोग करता है और सुशीला के यह कहने पर भी कि वह प्राणत्याग करने जा रही है केवल 'अच्छा' कहता है। इसी से दासी के सम्वाद में भ्रम उत्पन्न होता है।

इसका विषय सामाजिक है। बेमेल विवाह की आधार-शिला पर पूर्ण प्रहसन खड़ा किया गया है। इसमें आद्योपान्त घटनाओं के संयोग से हास्योत्पत्ति की गई है। अवस्था द्वारा उत्पादित हास्य की भरमार है। इसका रचना क्रम जी० पी० के अन्याय प्रहसनों की भाँति है।

तीसरे खण्ड में दो छोटी-छोटी भावुक आख्यायिकाएँ दी गई हैं—

* इसका अभिनय १६ अक्टूबर सन् १९१८ ई० में P. L. D. Club, गोण्डा, की ओर से हुआ था। जी० पी० स्वयं बदहवास राय का कार्य करते थे। इसका अभिनय अनेक स्थानों के अतिरिक्त २२ नवम्बर सन् १९१९ ई० में 'The M. C. D. Club', इलाहाबाद की ओर से हुआ था।

(क) **चुम्बन**—यह सन् १९१७ ई० में प्रयाग की पत्रिका 'मर्यादा' में छपी थी। यह जी० पी० की पहिली कहानी थी जिसका अनुवाद गुजराती पत्रिका में सचित्र छपा। सन् १९१९ ई० में बम्बई की 'बीस्मी सदी' में इसका अनूदित रूप प्रकाशित हुआ। अनुवाद स्वयं पत्रिका के सम्पादक हाजी मुहम्मद अल्लारखिया शिव जी ने किया था। इसके अनुवाद उर्दू में भी हुए थे।

इसमें एक युवा नायक और नायिका के आकस्मिक दृष्टि-मिलन से प्रम की दृढ़ता दिखाकर 'चुम्बन' पर अन्त किया गया है।

कहानी का विन्यास आत्म कथा के रूप में हुआ है। प्रारम्भ में नायक चुम्बन के सुख से मत्त दिखाई पड़ता है। इस चुम्बन का रहस्य खोलने के लिए वह बताता है कि सावन की हरियाली और पावस की रिमझिम में एक मेले में उससे एक मालिन की अतीव सुन्दरी बालिका से भेंट होती है। वह इसे अपनी अन्तिम माला देती है और प्रतिकार में यह उसे एक रुपया। माला का इतना अधिक मूल्य पाकर वह बालिका भावभरे नेत्रों से नायक को देखती है। मेला समाप्त हो जाता है पर वह दृष्टि नायक के हृदय को निरन्तर कुरेदती रहती है। दूसरे वर्ष पुनः उसी मेले में नायक जाकर उस बालिका की खोज करता हैं। मेला समाप्त होने पर पुनः उसका मिलन होता है और वह एक वर्ष पुरानी माला को प्रेम भेंट समझकर उस बालिका को दिखाता है। उसके अचरज की सीमा नहीं रहती जब वह बालिका भी अपने कण्ठाभूषण में उस रुपये को सुरक्षित दिखाती है। नायक विमुग्ध होकर आवेश में उसके कपोल चूम लेता है। यही वह चुम्बन था जिसके मद से वाचक कहानी के आरम्भ में प्रलाप सा करता है।

जीवन में, परिणय में, जहाँ हृदय पक्ष अधिक बलवान है, सभी तर्कों वितर्कों, क्रीड़ा और रोष, का अन्त किस प्रकार चुम्बन से होता है जी० पी० ने स्पष्ट किया है। प्रेम पागल होता है। इसके वाहक के जीवन में असंख्य अवसर ऐसे आते हैं जब मानसिक बुद्धि निर्णय नहीं कर पाती कि अब क्या करना अथवा कहना चाहिए। अपने प्रेम पात्र के सन्मुख हृदय सभी जागरुकता खो बैठता है। कदाचित् उसी अवसर के लिए चुम्बन का आविष्कार हुआ है। उस परिस्थिति विशेष में चुम्बन का महत्त्व दिखाना जी० पी० का लक्ष्य जान पड़ता है। आपने प्रारम्भ में ही कह दिया है—

'जुदा है नेमते दुनिया से लज्जत बोसये लबकी।
वह जोगी हो गया, जिसने यह मोहन भोग चक्खा है ॥'

(ख) झूठमूठ—इसका रचनाकाल सन् १९१७-१८ ई० है। यह नीमार के 'चन्द्र-प्रभा' और काशी की 'गल्प माला' में छपा था।

इसमें तीन परिच्छेदों में एक छोटी सी कथा दी गई है। पहिले दो परिच्छेदों में कवियों की परम्परागत कल्पना की वास्तविकता से दूरी पर व्यंग्य किए गए हैं। सुन्दरियों और प्रेम का जो मनोरम जगत आज तक कवि बसाते आए हैं क्या दैनिक जीवन में इसका एक अंश भी सत्य होता है! जी० पी० ने बड़े मीठे व्यंग्य से इसका चित्र उतारा है। तीसरे परिच्छेद में कथा का आभास मिलता है। जीती जागती प्रेयसि और कल्पना की नायिका में कितना अन्तर है इसका उदाहरण सामने आता है।

काव्य की नायिका सुन्दरी, अभिसारिका और चित्त को चंचल करने वाली कटाक्ष निपुणा है और केवल प्रणय सुख की संगिनि है और वास्तविक जगत की आदर्श प्रेयसि त्यागशीला, लज्जावती और सुख के साथ ही दुख में भी हाथ बँटाती है। वह अपने समर्पण के विषय में प्रश्न किए जाने पर केवल 'झूठमूठ' का उत्तर देती है।

यहाँ नारी के वर्णन में उसके सौन्दर्य पक्ष के अन्धकार में साहित्य-सृष्टा किस प्रकार नारीत्व की ज्योति को भूल गए हैं इसका स्पष्टीकरण होता है।

अपनी अर्धांगिनी के लिए इसका अनुवाद गोंडा के तत्कालीन जज श्री मनमोहन उपाध्याय ने बंगाली में किया था। किन्हीं रानी साहिबा ने भी इसके अनुवाद करने की अनुमति ली थी। पर इन अनुवादों का प्रकाशन न हो सका। कारण भारतीयों की ईर्षालु प्रतिस्पर्धा थी। अनेक राजपूत गृह-कलह के कारण भारत की मर्यादा न बचा सके थे। मुग़लों के आक्रमण ने उनकी बिखरी शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया था। कुछ उसी प्रकार की कुत्सित भावना भारत की विभाषाओं के क्षेत्र में थी। बंगला के कर्णधार हिन्दी की रचनाओं को आदर और सहिष्णुता की दृष्टि से नहीं देखते थे। उससे अपनी भाषा में अनुवाद से वे निजी मौलिकता के गौरव पर कलंक समझते थे। इसका प्रमाण यह तथ्य है कि हिन्दी में बंगाली अनेक कृतियों के अनुवाद मिलेंगे परन्तु आज से बीस वर्ष पूर्व के, हिन्दी की कृतियों के बंगाली रूपान्तर इने-गिने खोज करने पर प्राप्त हो सकेंगे।

'अच्छा' के अतिरिक्त नोक-झोंक के दो खण्डों की शैली बहुत कुछ गद्य-गीतों के निकट है। एक विशेष भाव के आवेग में छोटी-छोटी अनुभूतियाँ

बाँधी गई हैं। इसमें अंग्रेजी के प्रगीत मुक्तकों (Lyrics) का सा प्रवाह और भावोन्मेष देखने को मिलता है।

(२) मीठी हँसी

इसका रचना काल सन् १६२०-२५ ई० का है। यह निम्नलिखित यत्र-तत्र बिखरे हास्य-लेखों गल्पों एवं गद्य काव्यों का संग्रह है—

१—मीठी हँसी,
२—जी हुजूर,
३—अंट संट,
४—ओवर कोट,
५—काली मेम,
६—चण्डूला नन्द,
७—होली के खेलइया समझ होली खेलो,
८—रंग भरी होली कि आग भरी होली है,
६—लक्ष्मी,
१०—मेरा रोना, (व्यंग्य निबन्ध)
११—सावन सुहावन या जिया जरावन,
१२—मुन्शी जी बुरा न मानो होली है,
१३—पञ्च का स्वागत,
१४—कोचवान जी, तथा—
१५—(एक अंग्रेजी लेख।)

(३) दिल की आग उर्फ़ दिल जले की आह

यह सन् १६३० ई० की रचना है। इसकी भूमिका में डा० राम कुमार वर्मा ने इस कृति का विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है।

यह जी० पी० ने 'गंगा जमुनी' की कटु आलोचना से जलकर लिखी थी। इसकी रचना की पृष्ठ-भूमि पर एक प्रतिस्पर्धा का भाव सन्निहित था। 'चाँद' में दो रचनाएँ एक साथ प्रकाशित होती थीं। एक 'पागल' के नाम से और एक जी० पी० के। लेखक के वचनों में यह **'हँसी और आँसू की धारा एक साथ बहाना था।'** इसमें करुणा का प्राधान्य है। गहनतम आन्तरिक भावों को लेकर उनका विश्लेषण किया गया है। इसकी ध्यान देने योग्य मुख्य विशेषताएँ यह हैं—

(क) कहीं कहानी डायरी के रूप में है। कहीं पर दूसरे की डायरी है। कहीं पर पत्रों से उसका विकास हुआ है। कहीं गल्पों से कथानक बढ़ता है सब मिलकर एक उपन्यास का रूप प्रकट करता है। यह एक नवीन प्रयोग था।

(ख) प्रेम की विभिन्न परिस्थितियाँ दिखाई गई हैं। पुरुष छोटा है तथा स्त्री बड़ी तब प्रेम का कैसे उद्रेक होता है, पुरुष की आयु अधिक है और स्त्री की कम तब प्रेम कैसे चलता है आदि समस्याओं का चित्र खींचा गया है।

(ग) एक स्थल पर स्त्री क्रोध के आवेश में है, और तुरन्त परिस्थिति का परिवर्तन होता है और वह लड़के को चूम लेती है। एक पात्र अपनी प्रियतमा को पथ भ्रष्ट समझ कर चित्र फाड़ता है और तुरन्त ही सामने नत हो जाता है। इस प्रकार मानव जीवन में मानसिक भावों का कितनी शीघ्रता से उतार-चढ़ाव हो सकता है, दिखाने का प्रयत्न है।

(घ) अलिन्द और सन्तोषानन्द हृदय और मस्तिष्क के प्रतीक हैं। जहाँनारा, तारा और सरोज, तीन विभिन्न स्त्री पात्र जीवन की पहेलियाँ ज्ञात होती हैं।

(ङ) सन्तोषानन्द तारा का प्रेमी है पर स्वयं नहीं जानता, यह महान-तम रहस्य है।

(च) इसकी ५०० पृष्ट की रचना के पश्चात् जी० पी० के मित्र बाबू बनवारी लाल, वकील, (गोण्डा), ने अपनी सम्मति दी कि इसका दुःखान्त करना उचित नहीं—अन्यथा पाठकों का हृदय बैठ जायेगा। अस्तु इसे सुखान्त की ओर मोड़ा गया। जी० पी० के शब्दों में यह कार्य 'लोहे के चने चबाना' था।*

डा० मैथिली शरण गुप्त जी की 'यशोधरा' की भाँति इसकी शैली पग पग पर नवीन राहों में भटकती जान पड़ती है। कदाचित् उन्हीं के अनुरूप 'एक ही में सब कुछ' देने का प्रयोग जी० पी० का था।

(४) चुटकियाँ

जी० पी० के कुछ व्यक्तिगत हास्य-जनक पत्र 'हिन्दुस्तान' तथा 'नोक-झोंक' के होलिकांकों में श्री राम चरण महेन्द्र द्वारा प्रकाशित कराए गए थे।

---

* लेखक और जी० पी० की व्यक्तिगत वार्त्ता के प्रसंग का तथ्य।

इन पत्रों का एक संग्रह 'चुटकियाँ' नाम से सन् १९५६ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें जी० पी० ने निम्न पत्र और सम्मिलित कर दिए हैं। इनमें से सभी किसी न किसी पत्रिका में छप चुके हैं—

(क) 'स्वतन्त्र भारत' के २६ जननरी के विशेषांक में प्रकाशित 'अकिल की बलिहारी'।

(ख) 'आज' के होलिकांक में प्रकाशित 'मजबूरियाँ'

(ग) 'मस्ताना जोगी' के १५ अगस्त के विशेषाँक में प्रकाशित 'मेरी लाट साहबी'।

(घ) 'तरंग' के २८ जून तथा ३ जुलाई के अंक में प्रकाशित 'चट्टी चोर'।

इसकी अन्य कृतियाँ इस प्रकार हैं—

(१) चुटकियाँ,
(२) फुलझड़ियाँ,
(३) नमक की तरकारी,
(४) जोरू ट्रेनिंग कालिज, ('आदर्श' में प्रकाशित)
(५) आदर्श के चक्कर,
(६) मेरी कसम,
(७) मियाँ मिट्ठू,
(८) चाची भाषा का काला धागा,
(९) सौ सुनार की एक लोहार की,
(१०) जूड़ी बुखार,
(११) मेहमान, तथा
(१२) बड़ी बुआ सलाम।

पत्रों का यह संग्रह साहित्य के लिए एक नवीनता है क्योंकि हास्य-जनक पत्रों का कोई महत्त्वपूर्ण संग्रह अभी तक प्रस्तुत नहीं हुआ है।

(५) गुदगुदी

यह चुटकुलों का छोटा सा संग्रह है, जिसमें से अनेक अंग्रेजी से अनुवादित हैं। कहीं कहीं 'अनुवादक' के रूप में जी० पी० ने अपने निजी छींटे दे दिए हैं।

जी० पी० वर्त्तमान लेखक हैं और आपकी लेखनी निरन्तर चलती जा रही है। अभी कुछ दिन पूर्व आपकी वार्त्ता 'सेकेण्ड हैण्ड हजबेण्ड' आकाशवाणी लखनऊ केन्द्र से प्रसारित हुई थी।

निकट वर्त्तमान रचनाओं के विषय और शैली आपके साहित्यिक विकास पर अधिक प्रकाश नहीं डालते। लगभग, उपर्युक्त विवेचन में दी

हुई रचनाओं का सा उनका भी विन्यास है। आपकी कृतियों का संक्षिप्त लेखा हम एक दृष्टि में संलग्न मान चित्र से देख सकते हैं।

जी० पी० की कृतियों के परिमाण के साथ ही उनका रचना-काल इतना दीर्घ है कि उन पर किसी विशेष दिशा से पड़े प्रभाव का निर्णय करना कठिन है। आधुनिक युग हिन्दी के विकास की जटिलतम शृंखला है। सभी क्षेत्रों में नवीनता दृष्टिगत होती है। पता नहीं इस युग में, प्रगति, रहस्य, छाया, अभिव्यंजना, प्रयोग और व्यक्ति आदि कितने 'वाद' आए और चले गए : कितनी शैलियाँ जगीं और सो गईं। जी० पी० के अनुभव ने पचास वर्षों की उथल-पुथल देखी है। भारती और विदेशी, दोनों साहित्यों से आपको सदैव प्रेरणा और विकास मिलते रहे। फिर भी आपकी पृथक् पृथक् रचनाओं में किसी एक विशेष शैली का प्रभुत्व आ गया है, जो युग की देन थी और जिसका वहिष्कार कोई नहीं कर सकता। जी० पी० का आविर्भाव जिन परिस्थितियों के बीच हुआ तथा उनका प्रभाव कितनी गंभीरता तथा व्यापकता से उन पर पड़ा इसका निदर्शन करने का प्रयत्न अन्यत्र किया गया है।

जीवन और समाज की अनेक गहनतम समस्याओं को लेकर चलने और अनेक प्रभावों से आक्रान्त होने, पर भी जी० पी० की रचनाएँ हास्य का गाढ़ालिंगन न छोड़ सकीं। आपकी प्रतिभा सर्वोमुखी होकर गद्य की प्राय: प्रत्येक धारा में प्रवाहित हुई है। उनके हास्य की कोटि का मूल्यांकन हम आगे करेंगे। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उनकी रचनाओं का भारी-भरकम परिमाण और हास्य के असंगत झंझा का निपात उनकी प्रतिष्ठा को किन्हीं अंशों में संभालने के लिए पर्याप्त है। निस्सन्देह गद्य की रग-रग में हास्य भी रमणीय रोचकता भर देने का जी० पी० का प्रयत्न प्रशंसनीय है।

२

जी० पी० के साहित्य

की

आलोचनात्मक व्याख्या

भाषा

प्रचलित भाषा; जी० पी० की धारणा

स्वयं जी० पी० ने अनेक स्थलों पर अपने भाषा सम्बन्धी विचार प्रकट किए हैं। दैनिक जीवन में प्रचलित भाषा को उन्होंने श्रेष्ठतम माना है। अपने साहित्य में इस भाषा के प्रयोग पर उन्हें गर्व भी है। उन सभी शब्दों को स्वीकार कर लेने के वे पक्ष में हैं जो अनायास हमारी बोली में आ जाते हैं। हिन्दी के उस साहित्यिक रूप का उन्होंने उपहास किया जो फारसी अंग्रेजी के शब्दों का सचेष्ट बहिष्कार करता है—

"बोलें देसी और लिखें मरहठी, तब तो लेखनी भाषा का कल्याण कर चुकी……" (हास्य रस पृष्ठ ७३)

प्रकट है कि जी० पी० जन-बोली के यथार्थ रूप को ही साहित्य में स्थान देते हैं।*

---

* विशेष भाषा सम्बन्धी विचारों के लिए देखिए हास्य रस, 'भड़ाम सिंह शर्मा', (पृष्ठ ८९), 'साहित्य का सपूत' और 'मरदानी औरत' आदि।

लिपि

जी पी० स्वाभाविक बोली के उच्चारणों को ही लिपिबद्ध करने के पक्ष में हैं। भाषण में प्रयत्न लाघव से विकृत हो जाने वाले अथवा दो शब्दों में संयुक्त हो जाने वाले रूप जी० पी० की कृतियों में बराबर मिलते हैं। आपने 'नायिका', 'उकता कर', 'व्रत', 'मति तेरी', 'है ही' और 'हर एक' के लिए क्रमश: 'नायका', 'उक्ताकर', 'वर्त', 'मत्तेरी', 'हई' और 'हरेक' का स्वतन्त्र रूप से प्रयोग किया है। कहीं कहीं स्वाभाविक बोली के इन समर्थक महोदय को अरबी फारसी शब्दों के शुद्ध साहित्यिक रूपों को अक्षुण्ण रखने में विशेष प्रयत्नशील देखकर थोड़ा विस्मय अवश्य होता है। 'मोयाइना', 'जमा-अत' और 'तअज्जुब' ऐसे शब्द हैं। बोलते समय हम इनका इस रूप में उच्चारण नहीं करते। जी० पी० यहां स्वयं अपनी मान्यताओं का विरोध करते दीखते हैं।

व्याकरण

हिन्दी की विभिन्न बोलियों, विशेष रूप से उर्दू शैली, के स्वतन्त्र प्रयोग के कारण जी० पी० की भाषा में व्याकरण सम्बन्धी नियम शिथिल पड़ गए हैं। अधिकांश वाक्य-विन्यास खड़ी बोली के अनुरूप हुए हैं तथापि बीच बीच में अन्य उपभाषाओं के व्याकरण के आधार पर निर्मित शब्द रूप तथा समस्त पद अद्भुत और अप्रयुक्त ही कहे जायेंगे। इसमें विशेष रूप से उर्दू-व्याकरण के अनुसार 'जानओमाल', 'मकानात', 'बवालेजान', 'ख्यालात', 'काबिलेमाफी', 'जरूरियात', 'फज़लेइलाही', 'मर्जेलाइलाज', 'दर्देसर', 'मुसीबतजदों', 'रोज़बरोज़', 'शान दुबाला', 'करने काबिल', 'फैसल कर सकता हूं', 'वकला', 'वालदैन' और 'अख्तियारात' ऐसे प्रयोग कभी परिमार्जित अथवा प्रचलित' हिन्दी के अन्तर्गत नहीं माने जा सकते। प्राय: बहुवचनों के निर्माण में जी० पी० की कला कच्ची दीखती है। 'इयां' प्रत्यय द्वारा बहुवचन बनाने में वे 'नाचनेवालियाँ', पढ़ाने वालियाँ', 'करने वालियाँ', 'झाड़ू वालियाँ' और 'फजूल खर्चियाँ' ऐसे शब्द बनाते हैं। 'आन' के योग से बहुवचन बनने में अंग्रेजी के शब्द भी न बच पाए 'मेम्बरान' और 'कान्सटिब्लान' इसके उदाहरण हैं।

जी० पी० ने क्रिया विशेषणों के विचित्र प्रयोग किए हैं। क्रिया विशेषण से विशेषण, और पुन: उससे क्रिया विशेषण का रूप विकसित किया गया है। 'दया' से 'दयालु' और उससे प्राप्त 'दयालुता' ऐसे शब्द रक्खे गए हैं।

उपसर्ग और प्रत्यय के विधान जी० पी० की भाषा में बहुत लचर देखने को मिलते हैं। 'मुझ' की जगह 'मुझे', 'नानेभरी' की जगह 'नानाभरी', 'खोंचावालों,' 'नेतागिरी' और 'मंत्रीगिरी' ऐसे रूप मिलते हैं। 'सब' के लिए 'सभों' का प्रयोग बहुत हुआ है। इसी प्रकार 'पुकारने' के लिए 'बुलाहट' का विलक्षण प्रयोग मिलता है।

क्रियाओं का रूप अनेक स्थलों पर दोषयुक्त है। चुप करने के लिए 'चुपाने' 'घबडाए हुए आना', की जी 'घबड़ाया हुआ आना' और 'उड़ जाया करने लगा' ऐसे प्रयोग उपलब्ध होते हैं। कई स्थानों पर क्रिया का कर्त्ता से साम्य नहीं बैठा है—

'उन्होंने इसको भी जिन्नात ही की काररवाई समझी'

(लम्बी दाढ़ी पृष्ठ १५)

में क्रिया का लिंग 'काररवाई' के अनुसार ढाला गया है न कि कर्त्ता (मौलवी साहब) के अनुरूप।

वचन के दोष भी जी० पी० की भाषा में मिलते हैं। 'प्रत्येक' के साथ बहुवचन का प्रयोग किया है। यदि हम 'हर किताब अच्छी है' की जगह 'हर किताबें अच्छी हैं' कहें तो यह अशुद्ध होगा। प्रायः जी० पी० ने 'हर' के साथ बहुवचनों का ऐसा ही प्रयोग किया है जैसे,—

"चञ्चल कमल-नयन, लाल ओंठ, उस पर मन्द-मन्द मुस्कराहट माता-पिता ही का नहीं, बल्कि हर देखने वालों का हृदय मोह लेती थी।" (प्राणनाथ, पृष्ठ ३।)

बंगाली बिहारी तथा अन्य पूर्वी बोलियों में लिंग का भेद सूक्ष्म नहीं होता। इसी कारण प्रायः वहाँ के निवासी हिन्दी में लिंग-दोष ले आते हैं। जी० पी० का प्रारम्भिक जीवन इन्हीं प्रदेशों में बीता था। फलस्वरूप आप के लिंग के विधान पूर्णतया शुद्ध नहीं। संस्कृत की प्रचलित नपुंसक लिंग की संज्ञाएँ अधिकांशतः हिन्दी में पुल्लिंग स्वीकार की गई हैं, परन्तु जी० पी० ने इनमें से अनेक को स्त्रीलिंग माना है। लिंग का दोष अधिकतर क्रियाओं के रूप में मिलता है। यह बहुत कुछ उसके कर्त्ता से असाम्य के कारण हो गया है, जैसा हम ऊपर दिखा चुके हैं।

का, के, को, ने, से आदि कारक विभक्तियों में भी जी० पी० के अनेक प्रयोग अशुद्ध हैं। 'उससे कहा' के स्थान पर प्रायः 'उसे कहा' का प्रयोग किया गया है।

अवधी और ब्रज के व्याकरण के अनुसार जी० पी० के अनेक वाक्य रचे गए हैं। विशेष रूप से गीतों में अथवा 'बचाइयो', 'जगाइयो', और 'दीजो' आदि ईश्वर को सम्बोधित वाक्यों में ब्रज-व्याकरण-सम्मत नियम कार्य करते हैं। इनमें अनेक स्थानों पर अशुद्धियाँ भी हैं। जी० पी० का ब्रज पर कोई विशेष अधिकार नहीं जान पड़ता।

कुछ शब्दों और वाक्य खण्डों का रूप विपर्यित हो कर आया है, जैसे 'तमगा' के लिए 'तगमा', 'करूँगाही' के लिए 'करूँहीगा', तथा 'दूँगाही' के लिए 'दूँहीगा' आदि।

व्याकरण के विषय में अन्त में यही कहना रह जाता है कि जी० पी० के अनेक वाक्यों के विन्यास भी बड़े शिथिल हैं और एक आध जगह पर विराम तथा अर्ध विराम की योजना भी उचित नहीं जान पड़ती।

बहु प्रयोग

कुछ शब्द और वाक्य खण्ड जी० पी० जाने-अनजाने अनेक बार प्रयुक्त कर देते हैं। इनमें कोई दोष न होते हुए भी, अति प्रयोग खटकने लगता है। 'दरकार', 'बदहवासी', 'सरोकार', 'थुड़ी', 'न्योछावर', 'बलिहारी', 'ताकि', 'क्योंकि', 'क्योंकर', 'शुद दो शुद', 'खातिरजमा', 'सौ जान से', 'समझने वाले की मौत है', 'नई नवेली', 'कद्र उल्लू की उल्लू जानता है', 'गोकि' और 'बेइन्तहा' ऐसे ही प्रयोग हैं। इस दृष्टि से भारतेन्दु युग की शैली की झलक जी० पी० की भाषा में यतस्तत: दिखाई पड़ती है। 'फटकार' का डाँट डपट, उदासीनता और घबड़ाहट आदि अनेक अर्थों में इतना अधिक प्रयोग हुआ है कि भाषा पर ही फटकार बरसने लगती है। इसी प्रकार अनेक व्यर्थ के शब्द भी आ जाते हैं, जिनका कोई महत्त्वपूर्ण अस्तित्त्व नहीं। इनमें सर्वप्रधान 'दे' है। 'सकना' के पहले इसका व्यर्थ में अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है।

आँग्ल प्रयोग

'डाइरैक्ट' (Direct), 'मैथड' (Method), 'एक्टीविटी' (Activity), 'पालिसी' (Policy), 'रिहर्सल' (Rehearsal), 'पेटेण्ट' (Patent), 'पोस्टर' (Poster), 'कम्पार्टमेण्ट' (Compartment) और 'कालम' (Column) आदि अंग्रेजी के शब्दों का जी० पी० निरन्तर प्रयोग करते रहते रहते हैं और हमारी बोल-चाल की भाषा में प्रचलित इन

शब्दों को स्वीकार करने में स्वाभाविकता का पोषण मानते हैं। उनके मत से इनके स्थान पर अन्य शब्दों से वह बात आ ही नहीं सकती जो इनके द्वारा आती है। परन्तु जब हम उन्हें प्रकृति अथवा स्वभाव के लिए 'नेचर' (Nature) कल के लिए 'मैशीन' (Machine) और नौकरी के लिए 'पोस्ट' (Post) ऐसे शब्द लाते देखते हैं तब उसे स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। यही नहीं 'मार मार कर हकीम' के अन्त में भारतीय गायिका नर्त्तकियों के लिए अंग्रेजी कविता दी गई है। यह तो स्वाभाविकता और भाषा दोनों ही का खून है।

अप्रिय शब्द

भाषा के प्रवाह में भिड़ाने के लिए जी० पी० अनेक लचर और अप्रिय शब्द ले आए हैं। 'थेथर', 'लसलसाहट' और 'भड़ास' ऐसे शब्दों का प्रयोग साहित्यिक भाषा में ग्राम्य अथवा भोंडा ही कहा जायगा। इसी प्रकार 'हरामी' 'हरामजादा', 'दहिजार' आदि अनेक अश्लील गालियाँ भी भरी पड़ी हैं। कहना न होगा कि ऐसा कथोपकथन में रोचकता तथा दृश्य विधान में सजीवता स्वाभाविकता लाने के अति उत्साह में किया गया है।

यद्यपि जी० पी० का प्रयत्न प्रचलित भाषा की संस्थापना की ओर बराबर रहा है फिर भी अनेकानेक 'धजा', 'छेव', 'फिरके' और 'सरीहन' ऐसे अप्रचलित शब्द आ ही गए हैं।

दुहरे शब्द

प्राय: शब्दों के दुहराने की आदत जी० पी० में बहुत है। रोटी-ऊटी खाली-खूली, हुआ-हवाया, कवायद-उवायद, उल्टी-सुल्टी, खून-ऊन, आदि अनेक शब्द दुहरे आते हैं। शब्द प्रयोग की यह प्रणाली, जिसे उर्दू में 'मोह-मिल' कहते हैं, प्राय: अवधी के अनुसार है। जब अन्य बोलियों के बीच में ऐसे दुहरे शब्द आते हैं तब स्वाभाविक नहीं जान पड़ते। खड़ी बोली में 'नफरत' और 'चारजामा' के साथ प्रचलित रूप से 'वफरत' और 'वारजामा' आएँगे पर अवधी की प्रेरणा से जी० पी० ने 'उफरत' और 'उरजामा' का योग किया है। कुछ प्रयोग 'अमीर कबीर' ऐसे बड़े उपयुक्त, और कुछ 'सखि सहेलियों' ऐसे अशुद्ध भी हुए हैं। एक स्थान पर पूर्णत: अनर्गल पुनरुक्ति 'व्याख्यान-व्याख्यान' में हुई है।

मुहावरे

भारतेन्दु युग से ही मुहावरों और कहावतों के प्रयोगों की परम्परा चल पड़ी थी। कहावतों और मुहावरों का प्रयोग भाषा की समृद्धि, सामर्थ्य और सौंदर्य के द्योतक हैं। इसी शृंखला में द्विवेदी युग तक अनेक लेखक मुहावरों का बहुत प्रयोग करते थे। जी० पी० के कुछ प्रिय मुहावरे और कहावतें हैं जिनका हेर फेर कर अनेक बार प्रयोग हुआ है। कुछ मुहावरे और कहावतें अत्यधिक प्रयोग से शिथिल पड़ गए हैं और उनका प्रभाव ही जाता रहा है। गरज़ पड़ने पर गधे को भी बाप बनाना, नाकों चना चबाना, घोड़ा परखें भवन चमार, जले पर नमक छिड़कना, थोड़ा करें गाजी मियाँ बहुत करें ढपाली, दाल में काला, न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी, कहाँ राम राम कहाँ टें टें, ईश्वर जब देता है छप्पर फाड़ कर देता है, तलवे पर नाक रगड़ना, कुछ ऐसे ही प्रयोग हैं। कुछ मुहावरे और कहावतें, करिया अच्छर भैंस बराबर, नाक में दम, मियाँ की जूती मियाँ के सर, आँखों में धूल और 'न घर का न घाट का' जी० पी को इतनी प्रिय हैं कि इन शीर्षकों के अन्तगत उन्होंने रचनाएँ भी कीं। 'नाक में दम' के मारे पाठक की नाक में दम आ जाता है। 'कफ़न फाड़ कर पुकारने' के धड़ाधड़ प्रयोग मे भाषा का रूप ही कफ़न फाड़ कर रोने लगता है। 'रेशम में टाट का पैबन्द' अनेक स्थलों पर स्वयं टाट का पैबन्द जान पड़ता है। और 'उल्टी झाड़ू फेरने' ने तो भाषा पर ही उल्टी झाड़ू फेर दी जान पड़ती है।

अनेक अंग्रेजी के मुहावरों का अनुवाद जहाँ तहाँ किया गया है। ब्रज की कुछ कहावतें कतिपय शब्दों में हेर-फेर करके ले ली गई हैं। अवधी के निजी 'सर पर होरहा भूनना' और 'चिरई उड़ाना' भी ग्रहण किए हैं। अरबी फ़ारसी की कुछ उक्तियाँ ज्यों की त्यों रख दी गई हैं और कुछ उर्दू का पुट देकर। 'दो मुल्लाओं में मुर्गा हराम है' ने बार बार आकर हिन्दी और उर्दू शैली के बीच भाषा के नैसर्गिक रूप ही को हलाल कर दिया है।

जी० पी० ने कुछ वाक्य खण्डों को अपने निजी मुहावरों का रूप दिया है। 'अब रंग लाई गिलहरी' और 'कुकड़ूँ कूँ बोलना' ऐसे ही हैं। इनका कहीं पर उत्तम प्रयोग हुआ है और कहीं पर मुहावरे स्वयं कुकड़ूँ कूँ बोल गए हैं।

एक आध भद्दे प्रकार के मुहावरे जी० पी० ले आए हैं। धोती और पतलून से बाहर होने का अधिक प्रयोग सुरुचि-पूर्ण नहीं जान पड़ता।

जी० पी० मुहावरे भरने में इतने व्यग्र रहे कि अनेक स्थलों पर उनका अनुपयुक्त दुरुपयोग हुआ है। भूख के लिए 'पेट में चूहे कूदना' उपयुक्त है पर उन्होंने किसी भी प्रकार की व्यग्रता के लिए इसका प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है। इसी प्रकार 'जी भर के मारना' तो सभी ने सुना होगा पर जी० पी० ने 'पेट भर के मारा है' का प्रयोग किया है।

अनुवाद

अनेक भाषाओं के प्रचलित शब्दों और वाक्यों के हिन्दी पर्याय देने का जी० पी० ने प्रयत्न किया है। इनमें से कुछ का प्रयोग बड़ा शिथिल है। 'ड्राप सीन का गिरना', 'जंगल-भोजन' और 'उद्यान भोजन' आदि ऐसे ही हैं। यही नहीं आँग्ल शब्द 'यूनिटी' (Unity) की तौल पर 'एकाग्रता' का विलक्षण प्रयोग 'हास्य रस' में नाटकों की विवेचना में हुआ है। बहुत से अनुवाद भारतीय परम्परा और विचारों के पूर्णत: विपरीत हो गए हैं। यहाँ की साहित्यिक रुचि चितवन में वक्रता भले ही पाए, 'कोमल' विशेषण से उसे कदाचित् सम्बद्ध न करेगी। स्पष्टत: यह अंग्रेजी के 'टेण्डर लुक्स' (Tender looks) का अनुवाद है जिसने 'प्राणनाथ' में 'कोमल चितवन' ऐसे भाव दिए हैं।

पात्रों की भाषा

जी० पी० की भाषा दो मुख्य भेदों में विभाजित की जा सकती है। एक उनकी निजी भाषा, जो वस्तुत: आलोचना की अधिकारिणी है और जिसका रूप-निर्धारण हम आगे करेंगे, और दूसरी उनके पात्रों की भाषा। स्वाभाविकता लाने के लिए जी० पी० के अनेक पात्र विभिन्न बोलियों का प्रयोग करते हैं। हम पहिले संकेत कर चुके हैं आपकी एक आकाशवाणी की वार्त्ता में इसका उत्कर्ष अपनी चरम सीमा को पहुंच गया था।* इन विभिन्न उप-भाषाओं में मुख्य यह हैं—

(१) **उर्दू**—यह जी० पी० की प्रिय बोली है और अनेक पात्र इसका प्रयोग करते हैं। इसके तीन रूप आपके साहित्य में मिलते हैं—

(क) इसे उर्दू के अर्जित ज्ञान वाले दिग्गज मौलवी और उर्दू के अधिकारी बोलते हैं। इसमें अनेक कथोपकथनों में उर्दू कवियों की उक्तियाँ ज्यों

---

* देखिए प्रमुख रचनाएँ पृष्ठ १३१-३२।

की त्यों रख दी गई हैं। इसमें प्राय: गालियां तक 'नाहंजार' और 'बदजात' ऐसे उर्दू रूप ले लेती हैं। 'साहब बहादुर' में यूसुफ के कुछ कथन इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। * इनसे स्पष्ट हो जाता है कि जी० पी० का उर्दू पर अद्वितीय अधिकार है।

(ख) यह लखनऊ की मुहावरे दार प्रवाहशील नवाबी उर्दू है। इसका कुशल प्रदर्शन नवाबी हरमों की उर्दू दिखला कर, जी० पी० ने किया है। 'भय्या अकिल बहादुर' में तांगेवाले, 'बौछार' में दिलारा, 'उलट फेर' में गुलनार और 'लतखोरी लाल' में ताड़वाली की माँ की बोली इसके अच्छे उदाहरण हैं। इस भाषा में 'वल्लाह' 'सुभान अल्लाह' और 'कुर्बान जाऊँ' ऐसे शब्द प्रचुरता से मिलते हैं।

(ग) यह तीसरा रूप मुसलमानों में निम्न कोटि के झगड़ालू नारी पात्रों की भाषा है। प्राय: नारी को कुपित दिखाने के लिए इसका प्रयोग हुआ है। मध्यम वर्ग के हिन्दू-नारी-पात्र भी रूठने पर इसीका प्रयोग करते हैं। इसमें प्राय: 'जरी' और 'निगोड़ी' शब्द आते हैं। 'दुमदार आदमी' के 'गड़बड़ झाला' में भगमानी और दुखदेई की तू-तू मैं-मैं ऐसी ही है।

(२) **अवधी**—गोण्डा के ग्रामों में बोली जाने वाली अवधी का प्रयोग जी० पी० ने लगभग सभी रचनाओं में कुछ ग्रामीण पात्रों के द्वारा कराया है। असभ्य देहाती अशिक्षितों का जीवन सामने लाने में जी० पी० की रुचि और सफलता पर्याप्त है। इसका पूर्णत: शुद्ध प्रयोग हुआ हो यह तो हम नहीं कह सकते, क्योंकि अनेक अस्वाभाविक शब्द और व्याकरण के नियम अवधी के अनुकूल नहीं भी हैं, परन्तु इसमें ग्रामीणता का पुट देने में जी० पी० सफल कहे जा सकते हैं। इसके मुख्यत: दो रूप सामने आए हैं।

---

* "......इसलिए जब आज मुझे मालूम हुआ कि मेरा डर बे बुनियाद है तो बड़ी हिम्मत के साथ मैं खुद ही अपनी आरज़ू लेकर आपकी खिदमत में हाजिर हुआ हूं; क्योंकि बदक़िस्मती से इस शहर में मेरा कोई बुज़ुर्ग इस काम को बजा लाने के लिए मौजूद नहीं है। और न मेरे दिल में इतना सब्र है कि उनके आने का इन्तज़ार करूँ। इस लिये गुस्ताख़ी माफ़ हो। मैं अपनी मुद्दतों की तमन्नाओं को आपके क़दमों पर रख के निहायत ही अदब से इल्तजा करता हूं कि आप मुझे अपने दामाद होने की इज्जत बख्शिए—" (साहब बहादुर, पृष्ठ ८६)

एक गोण्डा के निवासियों की **स्वाभाविक बोली** है जिसमें 'हुरपेटा' 'डौंके', 'सपरता', 'नीबर', 'कोताही', 'खरखोदवा', 'खैंची' और 'खुदरौ' ऐसे अनेक स्थानिक शब्द, जो आंचलिक **वर्ग** में अधिकता से बोले जाते हैं, भरे पड़े हैं।

दूसरी पण्डिताऊ पुट देने के लिए पुराण आदि के अन्य ज्ञानी ब्राह्मणों की बोली है। इसमें अवधी के साथ थोड़ा सा संस्कृत का पुट मिला रहता है।

ग्रामीण पुट देने के लिए बहुधा कुछ टुकड़ों का प्रयोग किया गया है, जैसे 'उलट् फेर' के कतिपय पात्र बीच बीच में 'कि नाहीं भाई' कहते रहते हैं। अशिक्षित निरक्षर वर्ग की बोली होने के कारण इसमें अंग्रेजी और उर्दू आदि के विकृत रूप 'अनाड़ी मजरैट' और 'खिजमतगारी' की भांति मिलते हैं।

(३) **विकृत बोलियाँ**—हिन्दी न बोलने वाले प्रान्त के पात्रों द्वारा टूटी फूटी बोली का प्रयोग हुआ है। इसमें अधिकतर मूल रूप से जो बोली पात्र बोलते रहे हैं उसका रंग चढ़ाया गया है। इनमें प्रमुख यह हैं—

(क) अंग्रेज, अधिकारी वर्ग की बोली—अंग्रेज अधिकारी यहां की परिस्थितियों और भाषा से अनभिज्ञ रहने के कारण एक विचित्र खिचड़ी भाषा बोलते थे। उनका बहुत कुछ प्रयत्न हास्यास्पद होता है। इसमें प्रायः 'त' और 'द' के स्थान पर 'ट' और 'ड' तथा बीच बीच में 'वेल' का प्रयोग हुआ है। 'भय्या अकिल बहादुर' में लखनऊ का सारजेण्ट ऐसी बोली बोलता है—

"झूठ बोलटा है। शेर का चारो तरफ टो खाई है। वह किस माफ़िक हमला करने सकटा है?" टुम पबलिक को घबड़ाय डिया और आवारा गर्डी करटा है। टुमरा चालान होगा। (पृष्ठ ५९)

(ख) बंगालियों की हिन्दी—इसमें बंगाली पात्रों द्वारा अशुद्ध हिन्दी का प्रयोग कराया गया है। इस प्रकार के पात्र बहुत हैं। बंगाली डाक्टर प्रायः जी० पी० के प्रिय विषय रहे हैं। इसके उदाहरण 'कुर्मी मैन', 'लक्कड़ बग्घा' 'आंखों में धूल' और 'हास्य रस' में विशेष रूप से मिलते हैं—

"बाबा चाकर लोक एई रोकम बोलता है। तारपोरे होम शाला बेटा भी वोइ माफिक बोलने शका।" (मार मार कर हकीम (पृष्ठ ६७)

(ग) पंजाबियों की हिन्दी—पंजाबी प्रभाव मे अक्षरों के द्वित्त रूप का प्रयोग पंजाबी पात्रों की बोली में दिखाया गया है। इसके दो मुख्य उदाहरण सामने आते हैं। एक 'लतखोरी लाल' में और दूसरा 'बौछार' में बण्डा सिंह। 'लतखोरी लाल' में पंजाबी का 'न' और 'र' के स्थान पर 'ण' और 'ड़' तथा अकारान्त शब्दों के अन्त में 'अ' का उच्चारण (बिज्जनाथअ) स्वाभाविक है।

"दाड़ी से डर गई ? अहाहाहा ! दाढ़ी तो मर्दों का हुस्ण है। बिना बाल का चेहरा बन्दड़ सा लगता है। तबी तो हम लोग कब्बी बाल नहीं कटाता। अगर कटावे तो सब सरदार लोग हमारा मुंह पर थूक कर हमारा साफा उताड़ लेगा। समझा जाणी ! इसलिए आ, इदिड़ कौ आ, डर मत।" (पृष्ठ ११६)

(घ) सेठों की भाषा—जी० पी० के धनी सेठ पात्र प्रायः मारवाड़ी का पुट लेकर ब्रज के व्याकरण का अधिक पालन करने वाली बोली बोलते हैं—

"अच्छा शरदार जी। म्हारो तोंद में मारे शर्दी के गठियो हो गयो है। भीतर बाहर गर्माहट पहुचाणे को एक शीशी म्हारे को भी देदीजो।" (बौछार पृष्ठ २४)

चौबों की जो बोली जी० पी० ने 'भड़ाम सिंह शर्मा' में दी है उसका इससे पर्याप्त साम्य है।

(ङ) ब्रज, कन्नौजी, भोजपुरी, आगरा की उर्दू और गया की ग्रामीण भाषा—इन सभी बोलियों का प्रवाह-पूर्ण प्रयोग कोई पात्र नहीं करता पर अनेक पात्र इनका विकृत रूप सामने लाते हैं। आगरे के समीपवर्ती मुसलमानों की उर्दू का केवल एक स्थान पर पुट मिलता है जहां 'गड़बड़ झाला' में बुद्ध 'आन मरा' कहता है। (दुमदार आदमी पृष्ठ ३६)।

गया के आस पास के ग्रामों की बोली 'प्राणनाथ' मे हरनाम गाड़ी वाले और उसकी स्त्री के कथनों में देखने को मिलती है। यहाँ एक बात खटकने वाली है कि इन दोनों पात्रों की बोलियों में परस्पर अन्तर आ गया है। क्या हरनाम की स्त्री किसी अन्य प्रदेश की थी ? वास्तविक कारण यह है कि यह बोलियाँ पूर्णतः गढ़ी हुई हैं न कि गया की स्वाभाविक ग्रामीण उपभाषा। इन पर मगही का रंग चढ़ाने का असफल प्रयत्न किया गया है। हरनाम की बोली अवधी और भोजपुरी प्रधान है—

"सरकार, हमरे गाड़ी पर गया जी से पाँच आदमी बंगाल के आए हैं। एक मर्द रहा जो पैदले आया है और चार जनाना, जे में एक माँ जी रहिन हैं अउर दो बेटी और एक विधवा रही। वो कोई से न बोले न चाले हैं चुप-चाप रात भर रोती रही। एक घण्टा भइल होई हमरे पहुंचे। ऊ सब हमार दाम चुका के तुरन्त चल दिहिन।" (पृष्ठ १७७)

हरनाम की पत्नी की बोली में बिहारी आदि पूर्वी बोलियों मे अधिक निकटता है—

"हजूर सब लोगनी से पूछली, अरे हमनी के कखनियों न कोई के दमड़ी के चीज़ पर नजर कईलों हं बाप रे बाप! कइसे हमनी के कोई के बेटी-बहू अपने घर में छिपा के रक्खब? हजूर हम गरीब दुखिया सरकार के रैय्यत बाटी × × ×" (पृष्ठ १७५)

ब्रज के साथ साथ कहीं पर कन्नौजी मिला दी गई है, यथा "भड़ाम सिंह शर्मा" में चौबे जी कहते हैं—

"जे राजी मालूम नाईं हेत्तु है। मोको पकड़ावन लै रंगरेजी में गिट्ट पिट्ट कर्त्तु है। अरे ओ भलेमानुष, वकील जी शारो यदि मर गवो तो जाणे दो। तेरो कोई वा नातेदार तो हतोई नाईं। मोको फिर फांसी पर चढ़ावन लै इत्तौ फिकिर काहे कर्त्तु हैं?" (पृष्ठ ५६)

कन्नौजी का पर्याप्त शुद्ध रूप "मार मार कर हकीम" में रामफल की बोली में मिलता है—

"देखोजी घबड़ाइयो मती। जादे वाने कछु टिर पिर कीन्हीं, द्वै लपोटा शारे को दे हैं। तुरन्तई हकीम बनि जइ है······लो हकीम साहब, तुम्हरो लै एक मरीज लइ आये।" (पृष्ठ ४८)

आश्चर्य तो तब होता है जब "भड़ाम सिंह शर्मा" में पानी वाला मह-राज तीन वाक्य तीन विभिन्न बोलियों में बोलता है। खड़ी, अवधी और भोजपुरी का विचित्र प्रयोग एक ही पात्र के द्वारा तार तम्य से होता है—

"अरे हिन्दू हो कि मुसलमान?"
"आँय! तू का हिन्दू नाहीं हो?"
"तो सारे लोटवा काहे छुतिहा कै दैले?" (पृष्ठ ३६)

(४) **छात्रवर्ग की भाषा**—अंग्रेजी पढ़ने वाले छात्रवर्ग की भाषा प्राय: खड़ी बोली में, जो उर्दू-शैली-प्रधान है, अंग्रेजी के अनेक शब्द और वाक्य सम्मिलित करके बनाई गई है। 'नकदम' में मैडम लीला और उसके मित्रों की बोली भी ऐसी ही है। कहीं-कहीं अनेक कथोपकथन अंग्रेजी में ही चलते रहते हैं। साहित्यिक दृष्टि मे ऐसे प्रयोग कलापूर्ण नहीं कहे जा सकते।

(५) **शिशु-भाषा** — जी० पी० के नन्हें-मुन्हें पात्रों की तुतली भाषा सराहनीय है। यह स्वाभाविक और आयु के अनुरूप भी है। परन्तु इसका प्रयोग केवल एक आध स्थान पर हुआ है।[1]

पात्रों की बोलियों में विविधता के कारण जी० पी० प्रत्येक पात्र की स्वाभाविक भाषा अन्य पात्रों से पृथक नहीं रख सके हैं। नगरों की खड़ी बोली का प्रयोग करने वाले पात्र प्राय: अवधी का रूप ले आते हैं और अवधी के ग्रामीण पात्र बहुधा खड़ी बोली का प्रयोग करते हैं। इसी कारण, अनेक ऐसे भी पात्र सामने आते हैं जो अनेक बोलियों का प्रयोग करते हैं। अधिकतर नगरों में कार्य करते हुए घरेलू सेवक और सेविकाएँ, खड़ी और अवधी बोलियों का पृथक और मिश्रित प्रयोग स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत करते हैं। जो पात्र दो या अधिक बोलियाँ कार्य में लाते हैं उनके विषय में ऐसा मिश्रण क्षम्य कहा जा सकता है परन्तु एक ही बोली का प्रयोग करने वाले पात्र जब, दूसरे के शब्द ले आते हैं उसे स्वाभाविक कहना उचित नहीं। अनेक बोलियों के प्रयोग से यह गड़बड़ी आ गई है और जी० पी० स्वयं भ्रम में पड़ गए हैं।

अनेक कथोपकथनों में अनुप्रास लाने का भी प्रयत्न किया गया है। इंशा अल्ला की 'रानी केतकी की कहानी' वाली भाषा का नमूना इन संलापों में मिलता है। पर एक आध स्थान पर ऐसे अनुप्रास के लालच में बेतुके शब्दों द्वारा वार्त्तालप फूहड़ हो गया है, यथा 'मार मार कर हकीम' में 'तोबा' के अनुरूप 'हब्बा' शब्द लाया गया है।[2] यह शब्द भाषा के प्रवाह में खप नहीं सका है और उसी प्रकार अलग से ठोंका हुआ जान पड़ता है जैसे अकुशल चर्मकार जूते में बेतुकी कील ठोक दे। अपनी महत्ता और अस्तित्व रखते हुए भी शब्द दूर से ही खटकता है।

जी० पी० के पात्र प्राय: श्रद्धावाचक, समानता, अथवा अधिकारपूर्ण शब्दों में भेद नहीं कर पाए हैं। एक ही व्यक्ति को तारतम्य से कहीं 'तू'

---

1. देखिए बौछार।
2. मार मार कर हकीम, पृ० २०।

कहीं 'तुम' और कहीं 'आप' से सम्बोधित किया गया है। इनके साथ क्रियाएं भी सदैव उपयुक्त नहीं हैं। कहीं कहीं 'तुम आइएगा' और 'तू चले जाओ' ऐसे प्रयोग मिलते हैं।

निजी भाषा

पात्रों के अतिरिक्त अन्य पुरुष के रूप में अथवा आत्मकथा के रूप में प्रयुक्त बोली जी०पी० की वास्तविक भाषा कही जा सकती है। यह निम्न मध्यम वर्ग के उत्तर प्रदेशीय कायस्थ घरानों की अरबी-फारसी-प्रधान बोली है। इसमें हिन्दी की उर्दू शैली का अधिक हाथ है। इस समय गोण्डे के आस पास के कायस्थ परिवारों में, जिनमें वकीलों और विभिन्न न्यायालयों और संस्थाओं के कर्मचारियों का प्राचुर्य था, फारसी और उर्दू के पठन-पाठन का प्रचलन था और आज भी इस वर्ग में प्राय: उन भाषाओं का थोड़ा-बहुत रूप संरक्षित है। मुगल साम्राज्य से ही मुंशी आदि के रूप में इस वर्ग का मुसलमानों से घना सम्पर्क था और फल स्वरूप उनके अनेक संस्कार इनके जीवन पर अपनी छाया डालते रहे। हिन्दू पात्रों द्वारा 'चची' आदि शब्दों के प्रयोग इस वर्ग के उक्त संस्कारों की ओर संकेत करते हैं। यही नहीं, नाटकों में कोष्टक में दिए हुए अभिनय सम्बन्धी निर्देशनों में भी 'पेशानी' ऐसे प्रयोग जी० पी० ने किए हैं। इस वर्ग की बोली ही जी० पी० की साहित्यिक भाषा है। स्वभाव वश 'चाह-पान की दूकान' लिख गया है।

शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से इनकी भाषा पर्याप्त दोष-पूर्ण है। वास्तविकता यह है कि हिन्दी के साहित्यिक परिष्कृत रूप पर जी० पी० का अधिकार बहुत कम है। अतएव जहां उन्होंने साहित्यिक भाषा की ओर झुकने का कृत्रिम प्रयत्न किया है वहीं भाषा पर अपना अधिकार खो बैठे हैं। शब्द की अपनी शक्ति और सार्थकता होती है। प्रत्येक भाव के लिए उसे नहीं भिड़ाया जा सकता। जी० पी० जहां हिन्दी के शब्दों में उलझे हैं, उनकी सार्थकता का ध्यान नहीं रख पाए हैं। 'प्राण-नाथ' में तनिक 'निश्चय', 'भीतर' 'सर्वदा' और 'विदित' का प्रयोग देखिए—

"......क्योंकि उन्होंने निश्चय दिला दिया कि वह अभागी उमा ही थी।" (पृष्ठ १७०)

"पर इसके तय होने में कुछ समय चाहिए। इसके भीतर तुम आया जाया करना।" (पृष्ठ ६१)

"तुम्हारे पति से हम लोग सर्वदा कहा करते थे कि कुछ जमा करते जाओ...... ।" (पृष्ठ १२)

"मन का हाल विदित कर देने के लिए बहुत कुछ चाहा...... ।" (पृष्ठ ४७)

हिन्दी की दृष्टि से व्याकरण का प्रयोग भी, कुछ बहुत समर्थ नहीं है। 'निर्मित' के लिए 'निर्माणित' नष्ट के लिए 'नाश' और प्रयुक्त के लिए 'प्रयोग' संक्षिप्त के लिए 'संक्षेप' और 'कुभाग्य' ऐसे अनेक शिथिल प्रयोग मिलते हैं। कहीं कहीं 'मध्य' का अनुपयुक्त प्रयोग हुआ है। वास्तविकता यह है कि जी० पी० के ज्ञान-भण्डार में हिन्दी के उपयुक्त शब्दों का अभाव है। हास्य रस में 'रूप' अथवा 'सौन्दर्य' के स्थान पर 'श्रृंगार' से पूरा वाक्य रो दिया है—

"......नाटक यह चाल चलता है कि वह हमारी आँख, कान, दिल और दिमाग को अलग अलग चारा देकर- जैसे आँखों को श्रृंगार **कानों को संगीत, दिल को भाव और दिमाग को विचार- ऐसा मस्त करता है......।"** (पृष्ठ ८६) इसी शब्दावली के अभाव के कारण कहीं कहीं जी० पी० मनोवांछित भाव भी नहीं व्यक्त कर पाए हैं।

भावात्मक भाषा

भावावेश में जी० पी० की वाणी प्रायः कुछ कल्पापूर्ण हो गई है। प्रेम सम्बन्धी भावों में वे प्रायः उर्दू का चमत्कार लाए हैं, यथा, 'दिल ही दिल, दिल की पटरी बैठ गई।' प्रलापों की भाषा प्रायः हृदयग्राही है। विशेष रूप से कामुक प्रेमियों के उच्छ्वास बड़े सजीव हैं। यह प्रायः अपनी प्रेयसी के रूप वर्णन में गुणयुक्त विशेषणों की झड़ी लगा देते हैं, जिनमें से अधिक पर्यायवाची होते हैं। एक आध स्थान पर युग की प्रेरणा से छायावादी प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। किसी वातावरण अथवा पात्र के परिचय में सूक्ष्मगोचर चित्र, छोटे छोटे सशक्त वाक्यों से अनेक स्थलों पर उतारे गए हैं। श्रृंगारिक गीतों में बहुधा ब्रज की कोमलता लाने का प्रयत्न हुआ है। जी० पी० की रुचि अनेक कृतियों में भावुक होने की दीखती है। काव्यात्मक भाषा का प्रयोग करने के लिए रीति कालीन कवियों के उद्धरण कहीं कहीं दिए गए हैं, यद्यपि अधिकता उर्दू के शेरों की है। 'नोक झोंक' में अधिकांश भाषा गीतात्मक शैली पर निर्भर है। रोष आदि के भावों की उद्दीप्ति के अवसरों पर बहुधा नारी पात्रों के कथोपकथन बड़े सजीव रहे हैं।

भाषा द्वारा हास्योद्रेक

हास्योत्पादन के लिए अनेक पात्र तकिया कलामों का प्रयोग करते हैं। अनेक पात्र 'स' के स्थान पर 'श' का उच्चारण करते हैं, और एक आध स्थान पर हकले पात्र भी आए हैं। अधिकतर निजी शब्द हँसाने के लिए ढाले गए हैं जिनका परिस्थिति विशेष में ही अर्थ होता है अन्यथा वे सारहीन हैं। मिनकी, भचक, अण्टागफील, हुर्र, कसमसाहट, लतमर्दन, चपरगट्टू, गजबजाए, मरण-कुण्डली, गुट्टरगूँ, जांगलूस और बगटुट आदि ऐसे ही शब्द हैं। 'साहब बहादुर' में कुस्तुन-तुनियाँ की सम्पूर्ण भाषा हास्यास्पद है। कहीं कहीं विचित्र अनुवाद से हँसी आती है जैसे 'कानूनी बाप' और 'शूखो शहर'। व्याकरण के नियमों का विचित्र पालन भी सामने आया है, यथा 'महाशयगण' की तौल पर 'महा-शयगणिका' और 'दामादिन'। कहीं परिवृत्ति की रुचि दिखाई गई है, जैसे लय के अनुसार 'विषय से हाथ धोता हूं' ऐसे वाक्य आए हैं। प्रचलित शैली पर हास्यपूर्ण लटके भी लिखे गए हैं। गालिब की विख्यात शेर की तौल पर 'मरदानी औरत' में—

'बड़े बे आबरू होकर बन्धे बोरे से हम निकले'

लिखा गया है। इस प्रकार के प्रयोग अधिकतर यंत्रवत जड़ता (Automatism) पर आधारित हैं।

वास्तविक तथ्य यह है कि जी० पी० ने, 'स्वाभाविक बोली' को महत्ता देने के उत्साह में, कभी निजी भाषा पर संयय और परिष्कार की चिंता ही न की। परन्तु आश्चर्य तब होता है जब प्रचलित बोली का दम भरते हुए भी जी० पी० 'फरायज', 'मोअजिज', 'हरदिल अजीज' ऐसे असंख्य शब्दों को प्रयुक्त करते जाते हैं। क्या वास्तव में यह प्रचलित भाषा के अंग हैं? कभी नहीं। वे नैसर्गिक रूप से, भावों के आधीन हो, लिखते रहे और उनकी भाषा उन सभी दोषों का भार ढोती रही जो अनगढ़ प्रचलित बोलियों में व्याप्त रहते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भाषा के प्रति उनकी यही लापरवाह मनोवृत्ति उसे कभी परिष्कृत एवं सक्षम हिन्दी के आसन तक न पहुंचा सकी।

शीर्षक

जी० पी० की हास्य रचनाओं के शीर्षक अपने में बड़े रोचक हैं, मुख्यत: इनके पांच रूप मिलते हैं—

(१) जी० पी० के अधिकतर शीर्षक उनकी रचनाओं के नायकों के नामों पर ही हैं , यथा लतखोरी लाल, लाल बुझक्कड़, साहब बहादुर, भड़ाम सिंह शर्मा और विलायती उल्लू आदि ।

(२) कुछ नायकों की ओर संकेत करने वाले प्रतीकों को भी शीर्षक बनाया गया है, जैसे 'लम्बी दाढ़ी' ।

(३) कतिपय शीर्षक रचना के अन्तर्गत विषय अथवा कथावस्तु के मुख्य प्रतिपाद्य की ओर संकेत करते हैं, जैसे उलट फेर, नोक झोंक, गड़बड़ झाला और नकदम आदि । प्राय: इनके पात्र अपने कथनों से शीर्षक की पुष्टि करते जाते हैं, यथा 'नकदम' में नायक गोबर चन्द बार-बार कहता है कि अमुक अमुक कारणों से उसकी नाक में दम हो गया । 'आँखों में धूल' के अनेक पात्रों ने शीर्षक की सार्थकता पर इतना जोर दिया है कि वह खटकने वाला हो गया है । बहुधा चरम उत्कर्ष की प्राप्ति के पश्चात् निगति के समय इन रचनाओं में शीर्षकों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है । भूलचूक में कथा वस्तु के अवसान पर सब पात्रों को उनकी भूलचूक ज्ञात होती है ।* 'चुम्बन' और 'झूठमूठ' कहानियाँ भी इसी प्रकार की हैं ।

(४) कुछ शीर्षक जी० पी० ने बड़े ही कुतूहल-जनक रक्खे हैं । इनका रचना की कथा वस्तु से सम्बन्ध जोड़ने के लिए विशेष उत्सुकता जागृत होती है । इनका रूप साधारणतया विरोधात्मक होता है । 'मरदानी औरत', 'दुमदार आदमी' और 'हवाई डाक्टर' आदि इस श्रेणी में लिये जा सकते हैं ।

(५) जी० पी० के सबसे रोचक और प्रिय वे शीर्षक हैं जो किसी मुहावरे, कहावत अथवा प्रचलित उक्ति पर आधारित हैं । इस प्रकार के

---

* शेक्सपियर के 'A Midsummer Night's Dream' में ठीक इसी प्रकार अन्त में सब पात्र सम्पूर्ण कृति के स्वप्न सदृश वातावरण की चर्चा करते हैं । शीर्षक की दृष्टि से जी० पी० की यह रचनाएँ शेक्सपियर की इस शैली के बहुत निकट हैं ।

कुतूहल पूर्ण शीर्षक देने की प्रवृत्ति भारतेन्दु युग में प्रताप नारायण मिश्र की भी थी। 'मरे का मारैं साहमदार' 'ऊंच निवास नीच करतूती', 'समझदार की मौत है', 'घूरे के लत्ता बिनैं कनातन का डौल बाँधै,' 'जानैं न बूझैं, कठौता लैकर जूझैं' और 'टेढ़ जानि शंका सब काहू' आदि उनकी ऐसी ही रचनाएँ थीं। उसी परिपाटी पर जी० पी० ने भी अनेक मुहावरे और उक्तियाँ शीर्षक रूप में स्वीकार कीं। जी० पी० की आकाशवाणी की वार्त्ताएँ इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार शीर्षक देने की प्रथा कुछ अन्य लेखकों में भी फैली। 'उग्र' का 'दुखवा मैं कासे कहौं मोरी सजनी' इसी प्रकार का शीर्षक है।

पात्र

जी० पी० की रचनाओं के पात्रों का विचार पुरुष और नारी के परम्परागत सनातन विश्लेषण के आधार पर किया जा सकता है।

पुरुष पात्र

जी० पी० के अधिकांश पात्रों में परस्पर अनेक प्रकार को समता दिखाई पड़ती है। विभिन्न पात्रों के गुणों की एक रूपता के आधार पर हम इन पुरुष पात्रों के अनेक भेद कर सकने हैं। इनमें से प्रत्येक वर्ग के पात्र अपने वर्ग विशेष के प्रतिनिधि माने जा सकते हैं। जहाँ उनमें परस्पर साम्य है वहीं अन्य वर्ग के सदस्यों से विषमता भी। इनमें मुख्य वर्ग यह हैं—

(१) यह सामान्य मध्यम वर्ग के सज्जन हैं जिनके चरित्र में थोड़ा सा आदर्श भी प्रतिबिम्बित होता है। छल कपट से रहित एक संतुलित जीवन इनका ध्येय है। 'उलट फेर' में आजिजअली और लालचन्द इसके उत्तम उदाहरण हैं। एक समुन्नत जीवन की ओर संकेत करने के लिए ही ऐसे थोड़े से इने गिने पात्र आ गए हैं। हास्य का प्रयोग, बुराइयों के उद्घाटन के लिए होता है, अस्तु उसके नायक और पात्र भी अधिकतर अवगुणों की खान होते हैं। परन्तु एक विरोध और अनुकरणीय मार्ग दिखाने के लिए जी० पी० ने

इन आदर्शोन्मुख पात्रों की सृष्टि बड़े कौशल से की है। लाल चन्द केवल एक वकील का ही नहीं वरन् एक आदर्श अधिकारी न्यायाधीश का रूप भी प्रस्तुत करता है।

(२) कुछ सभ्य विनोदप्रिय पात्रों का जी० पी० ने विधान किया है, जिन्हें हम शिष्ट परिवारों का अंग मान सकते हैं। इनके हास्य-विनोद प्रायः शिक्षित और शिष्ट समुदाय के होते हैं। इनमें से कुछ कभी-कभी अपरिष्कृत हास्य की परिधि में प्रवेश कर जाते है। इन पात्रों का स्वभाव और रुचि विनोद की ओर उन्मुख रहते हैं तथा इनके कथन और कृत्य हँसी के फौवारे छोड़ते चलते हैं। 'उलटफेर' में हँसमुख लाल, 'मरदानी मौरत' में गड़बड़ और 'अच्छा' में रसिक लाल ऐसे ही पात्र हैं।

(३) विभिन्न राजकीय तथा अन्य संस्थाओं के अधिकारी कर्मचारी बहुत कुछ सामयिक परिस्थितियों के अनुकूल अपने यथार्थ रूप में आए हैं। इनके दो रूप सामने आते हैं—

(क) वे अफसर जिन्हें शासन के अधिकार और अंग्रेजों का राज्याश्रय प्राप्त है। यह उचित अनुचित सभी कार्य और अत्याचार अपने अधिकार-दर्प में स्वार्थ साधन के लिए करते रहते हैं। कुछ केवल झूठी शान में मानवता को भी तिलांजलि दे देते हैं। इनका निजी आर्थिक लाभ कुछ न होते हुए भी इनकी प्रवृत्ति अत्याचार और भ्रष्टाचार की ओर झुकी रहती है। 'उलटफेर' में अल्लटप्पू का ऐसा ही अंकन है। अवैतनिक मजिस्ट्रेटों और असेसरों के चरित्र इनमें बड़े स्वाभाविक हैं। दरोगाओं और पुलिस के सैनिकों का इसी प्रकार की हेकड़ी से पूर्ण हीन रूप अंकित किया गया है।

(ख) राजकीय अथवा अन्यान्य कार्यालयों के, अल्प वेतनभोगी कर्मचारियों का घरेलू जीवन आर्थिक संकटमय दिखाया गया है। अन्यथा उत्कोच आदि निन्द्य साधनों से उपार्जित धन का दुरुपयोग वे वेश्यागमन आदि निम्न प्रकार के भोगों में करते दिखाये गये हैं। अधिकारियों से अनुचित पक्षपात और पोषण पाकर यह कर्मचारी सभी प्रकार के अन्याय जनता पर करते रहते हैं।

(४) धनी व्यक्तियों का जी० पी० के साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह प्रायः व्यापार अथवा लेन देन का कार्य करते हैं। इनमें से कुछ पैतृक संपत्ति के उपभोक्ता रईस भी हैं। इनका जीवन मंत्र 'चमड़ी जाय दमड़ी

न जाय' दिखाया गया है। यह बहुधा नववयस्क प्रेमी-प्रेमिकाओं के वृद्ध अभिभावकों के रूप में आते हैं। अनेक अवसरों पर यह किशोर प्रेमियों के प्रेम-व्यापार में बाधा बनकर आते हैं। अनेक रचनाओं में यह स्वयं प्रेमियों का रूप भी ले लेते हैं और कृपणता का परित्याग कर संपत्ति का खुले हाथों दुरुपयोग करते हैं। 'साहब बहादुर' में हजामत बेग का ऐसा ही चित्रण है। इनके सामान्य चित्रण से पृथक् एक-आध अपवाद भी मिलते हैं, यथा, 'मरदानी औरत' में नाटक कम्पनी का स्वामी, सेठ, उदार दिखाया गया है।

रीति कालीन कवियों ने सूमों की कृपणता पर आघात किया है, पर उनके धन वैभव पर नहीं। जी० पी० के वर्णनों में इन धनाढ्यों की सत्ता मात्र पर आक्षेप किया गया है, और विशेष रूप से तब, जब इसके अर्जन में थोड़ी बहत निर्दयता का हाथ रहा हो। महाजनों के ब्याज आदि के एकत्रित करने के उपाय प्राय: घृणित दिखाए गए हैं।* मार्क्स और एन्जिल के पूँजी-पतियों के विरोध के प्रकाश में निखरे हिन्दी के समाजवादी और साम्यवादी प्रगतिशील साहित्य का यह स्पष्ट प्रभाव है।† कह सहते हैं कि रीतिकालीन व्यक्तिगत आक्षेपों के स्थान पर यहाँ पूँजीवाद का सामूहिक सामाजिक स्तर पर विरोध किया गया है।

(५) जी० पी० के साहित्यक में चिकित्सक पात्रों की कमी नहीं। यह प्राय: धन लोलुप दिखाये गये हैं। इन्हें रोगी के प्राणों से तनिक भी मोह नहीं रहता और हठधर्मी की पराकाष्ठा यह कि डाक्टर, वैद्य, हकीम और होम्योपैथ आपस में लड़ने-झगड़ने का ही मानों पेशा कर रहे हों। डाक्टरों का लालची और स्वार्थी जीवन मोलियर ने अपनी रचनाओं में बड़ी रोचकता से दिखाया है। जी० पी० के इन चित्रणों में उसकी पृष्ठ भूमि सर्वत्र लक्षित होती है। कहीं कहीं पर चिकित्सकों पर इंगित व्यंग्य पूर्णत: मोलियर के अनुवाद हैं और रूपान्तरों में तो समस्त व्यंग्यों के भाव मोलियर के हैं।

अनेक रचनाओं में जी० पी० कथावस्तु में संघर्ष का परिहार करने के लिए युवक प्रेमियों का संयोग कराते हैं। 'लक्कड़ बग्घा' में डाक्टर साहा सहकारी समिति के एक संस्थापक के रूप में आते हैं। यह चिकित्सक शारी-

---

* देखिए 'लक्कड़ बग्घा' में सूदीमल का चरित्र।

† देखिए, 'जी० पी० के समकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ' पृष्ठ ७५-७६ पर।

रिक रोगों के उपचार में उतने दत्तचित्त नहीं हैं जितने प्रेम सम्बन्धी अथवा सामाजिक संघर्षों के निवारण में।

एक बात ध्यान देने की है कि डाक्टरों को प्राय: जी० पी० ने बंगाली दिखाया है।* बहुत सम्भव है जी० पी० के वास्तविक जीवन में किसी बंगाली डाक्टर से विशेष सम्पर्क रहा हो।

(६) सम्पादक, प्रकाशक, समीक्षक और पत्र पत्रिकाओं के संचालकों का वर्ग साहित्य में प्रतिष्ठा पा जाने वाले अशिक्षितों और मूर्खों के रूप में आता है। जी० पी० की प्रारम्भिक रचनाओं का तत्कालीन साहित्यिक कर्णधारों ने कुछ बहुत आदर नहीं किया था, अत: उनसे व्यक्तिगत रूप से रुष्ट होने के कारण इस वर्ग के चित्रण में जी०पी० की कटुता स्वाभाविक है। साहित्यिक क्षेत्र में प्रचार और छल से अधिकार एवं आराधना के पात्र बने अयोग्य सम्पादकों का उपहास 'साहित्य का सपूत' जैसी रचनाओं में किया गया है। इस वर्ग का रूप प्राय: विलासी, दम्भी, धूर्त और लालची दिखाया गया है। यदि प्रशंसा की कुछ झलक मिलती है तो 'चाँद' पत्र के प्रति। जी० पी० की अधिकांश प्रारम्भिक रचनाओं को 'चाँद' ने ही प्रकाशित करना स्वीकार किया था। अत: इसे उपकार का आभार ही मानना होगा, निर्लिप्त निरपेक्षता नहीं।

(७) ग्रामीण, निरक्षर, दलित और पिछड़ी जनता के प्रतिनिधि पात्र मुकदमे-बाजी में उलझे और अपने अज्ञान के कारण हानि पर हानि उठाते दिखाए गए हैं।† वार्त्तालाप में अशिष्ट और आचरण में असभ्य इनमें से कुछ 'उलट फेर' में डाकू बनते दिखाये गये हैं। अन्यान्य बहकाने वालों के कहने में आकर, स्वयं अपना हित-अनहित परखने में असमर्थ होने के कारण, यह पात्र छल प्रपंच के चक्रों में फँसे रहते हैं। पटवारी और डाकिए आदि सरकारी

---

* देखिए 'आँखों में धूल' में होड़पचन्दर, 'भय्या अकिल बहादुर' में पृष्ठ ६७ पर डाक्टर और 'लक्कड़ बग्घा' में डाक्टर सुधार चन्द्र साहा का रूप।

† प्रत्येक राष्ट्र, युग और लेखक के अपने अपने हँसने के अवसर और आलम्बन परम्परा से बन जाते हैं। जिस प्रकार आँग्ल रचनाएँ 'स्काट' और प्राचीन ग्रीक साहित्य की छोटी-छोटी कहानियाँ ग्रामीण कृषक (Peasant) के नाम से ही एक हास्य का वातावरण खींच देती हैं उसी प्रकार जी० पी० के ग्रामीण पात्र भी।

कर्मचारी तथा जमीनदार वकील और ग्राम-सभा के अधिकारी आदि इन्हें बराबर ठगते रहते हैं। कतिपय पात्र मुकदमेबाजी आदि में जीवन व्यतीत करने के कारण इस शिल्प में दक्ष हो जाते हैं। धोखेबाजी और झूठी गवाही इनका जीवन बन जाता है। इन्हीं में से असेसर और अवैतनिक मजिस्ट्रेट बनाकर 'उलटफेर' में जी० पी० ने इस क्षेत्र की भी वीभत्सता दिखाई है। असेसरों का उपहास आँग्ल साहित्य में एक प्रचलित विषय रहा है। पक्षपाती और धूर्त्त जूरियों की खिल्ली विदेशी साहित्य में बहुत उड़ाई गई है। जी० पी० के साहित्य में असेसरों से सम्बन्धित हास्य में अंग्रेजी के साहित्य की प्रतिध्वनि प्रत्यक्ष है। इस वर्ग का जीवन पूर्णत: कल्पना-प्रसूत नहीं कहा जा सकता। इस देश में वास्तविक जीवन में ऐसे अनेक पात्र जीते जागते मिलते हैं। गोण्ड के आस पास के अवध के जिलों की अधिकांश ग्रामीण जनता इस मुकदमेबाजी की आये दिन शिकार रहती है। जी० पी० का इस वर्ग का अंकन बहुत कुछ यथार्थवादी है।

(८) नगरों में जीवन-यापन करते हुए घरेलू नौकर प्राय: ग्राम्य संसार से प्रभावित हैं। इनकी जी० पी० के साहित्य में प्रचुरता है। गाँवों में पोषित और नगरों में कार्य करने के कारण यह खड़ी बोली और अवधी दोनों का मिश्रित प्रयोग करते हैं। इनके चित्रण में भारतीय जीवन की अप्रतिभ झाँकी मिलती है। कर्ज और मुकदमेबाजी तथा जमींदारों और पटवारियों के अत्याचार से, अपने जन्म-स्थान गाँवों का परित्याग कर, नगरों में घरेलू सेवकों का कार्य करने वालों की संख्या पर्याप्त है। वास्तविक जीवन में पिछड़ी जातियों के, अथवा आर्थिकता के निचले स्तर पर असन्तुष्ट जीवन बिताने के कारण, यह वर्ग न अपने असभ्य आचरण का परिष्कार कर पाता है और न अपने स्वामियों की सहानुभूति और दया प्राप्त कर पाता है। परन्तु जी० पी० ने इनका विलक्षण चित्रण किया है। ये अशिष्ट, उद्दण्ड और मसखरे होने के साथ ही अपने स्वामियों के सलाहकार और अनेक अवसरों पर पथनिर्देशक के रूप में आते हैं। इनमें से अधिकांश में धूर्त्तता विद्यमान है। ये प्राय: प्रेम समस्याओं के हल करने में प्रमुख अंग बन कर आते हैं। अनेक रचनाओं में प्रेमी युग्म के विवाह सम्बन्ध की प्रतिष्ठा इन्हीं के द्वारा होती है। अनेक रचनाओं में स्वामियों के साथ इनका भी पृथक प्रेम-व्यापार चलता है और दो समानान्तर कथावस्तु खड़ी की जाती हैं।

(९) वर्त्तमान युग के छात्रों के जी० पी० ने केवल दो पूर्णत: विरोधात्मक रूप दिखाए हैं। एक ओर ऐसे छात्र हैं जो विनोदप्रिय होने के साथ ही

आधुनिकता के दर्प में अपनी आर्थिक हानि करते रहते हैं। इनका सम्पूर्ण छात्र-जीवन खेल-खूद, हास-उपहास और वासनत्मक प्रेम की ऊँची नीची गलियों में भटकता रहता है। यह बहुधा भयंकर उपहास के क्षेत्र में प्रवेश करते दिखाई पड़ते हैं। 'लम्बी दाढ़ी' में मौलवी साहब की टाँग गधे से बाँध कर उनका खिचवाया जाना कोई शिष्ट हास्य नहीं। इस मसखरे जीवन में उलझे विद्यार्थियों के ठीक विपरीत रट्टू और भोंदू वर्ग के शिक्षार्थी भी दिखाए गए हैं। इनका भोलापन मूर्खता की परिधि में आता है। इसी कारण अन्य सहपाठियों के यह हँसी-मजाक के लक्ष्य बन जाते हैं।*

(१०) कुछ बच्चे भी एक आध रचनाओं में सामने आते हैं। इनका चरित्र कहीं पर उद्दण्ड, कहीं पर अतिभाषी और कहीं-कहीं पर अपनी आयु से भी अधिक अस्वाभाविक बुद्धि और ज्ञान वाला दिखाया गया है। 'बौछार' पुस्तक के अतिरिक्त केवल 'लाल बुझक्कड़' में इनका महत्त्वपूर्ण रूप मिलता है।†

इन पात्रों के अतिरिक्त जी० पी० ने बहुत से अच्छे बुरे जीवनों की झाँकी दी है। विदेशी दर्जी आदि व्यापारी, पाखण्डी साधु और धर्माचार्यों के साथ ही पूज्य नेताओं की आत्माएँ और देश सेवकों का उत्सर्गपूर्ण जीवन भी दिखाया गया है। 'लाल बुझक्कड़' में तिगड़म लाल ऐसे चतुर और 'लतखोरी लाल' तथा 'प्राणनाथ' में आए ठग और लुंगाड़ों के भी चित्रण किए गए हैं। 'चोर के घर छिछोर' में ठगों का अच्छा प्रदर्शन हुआ है। 'भारत माता की जय' में कवि की अमर वाणी सुनने को मिलती है और 'लतखोरी लाल' में भ्रष्टाचार के प्रचार में रत निन्दनीय औरतों के सौदागरों की झलक। यहाँ एक बात का ध्यान रहे कि जी० पी० ने उर्दू के विख्यात कवि चकबस्त का अवतरण किया है न कि किसी विशुद्ध हिन्दी के कवि का। जी० पी० की रुचि सदैव उर्दू संस्कारों की ओर झुकी रही है और अवसर पर उन्हें उसी साहित्य में उपयुक्त उद्धरण मिले हैं।

जी० पी० के अधिकांश पात्र असाधारण गुणों और अवगुणों से पूर्ण हैं। गुणों की असाधारणता हास्य की अनुपम जननी होती है। इसका जी० पी० ने

---

* देखिए 'लम्बी दाढ़ी' में 'पण्डित जी' के अन्तर्गत दमड़ी लाल और भगवान दीन का चित्रण।

† देखिए 'लाल बुझक्कड़' में छोकरे का चरित्र।

बहुत सहारा लिया है । लगभग सभी रचनाओं के चरित्र इसी आधारशिला पर गढ़े गए हैं । 'विलायती उल्लू' में टाम गाबुल का रूप एक लजीले नायक के वेश में आता है । ऐसे नायकों के चरित्र ने आँग्ल साहित्य में बहुत प्रतिष्ठा पाई है । वहीं के वातावरण में जी० पी० ने टाम गाबुल का चरित्रांकन किया है । 'पिकनिक', 'बाल डान्स' और 'कोर्टशिप' सम्बन्धी सभी संस्कार विदेशी हैं । जी० पी० के हास्य पात्र लगभग सभी इस प्रकार के हैं कि 'भोंदू' विशेषण कदाचित् उन सबके लिए उपयुक्त होगा ।

जी० पी० के अधिकांश पात्र मध्यम वर्ग से लिए गए हैं । स्वयं उस वर्ग के सदस्य होने के कारण जी० पी० को इसका अनुभव और ज्ञान पर्याप्त था ।

जी० पी० के लगभग सभी पुरुष पात्र वासनाग्रस्त और प्रेमी दिखाए गए हैं । अधिकांश कथावस्तु प्रेम-व्यापार को लेकर चली है । इन प्रेमी पात्रों के दो रूप मिलते हैं । सात्त्विक रूप से आदर्श प्रेमी, जैसा गुलेरी जी की 'उसने कहा था' में मुखरित हुआ है, कदाचित् कोई पात्र नहीं । कुछ राजसी रूप के प्रेमी हैं । इनका प्रेम प्राय: दोनों ओर से चलता है अर्थात् प्रेयसि भी प्रति उत्तर में इनसे प्रेम करती है । 'मरदानी औरत' में मदन इसका उत्तम उदाहरण है । अधिकांश पात्र वासना लिप्त, कामेच्छु प्रेमी हैं । इनका प्रेम हम तामसी वृत्तियों से प्रेरित मान सकते हैं । कुछ वृद्धों में वासना की उद्दीप्ति दिखा कर उनका कामुक जीवन प्रकट किया गया है । 'साहब बहादुर' में हजामत बेग, 'मार मार कर हकीम' में खूसट बेग और 'नकदम' में गोबर चन्द इसके उदाहरण हैं । इन पात्रों का प्रेम एकोन्मुख न होकर प्राय: फिसलता रहता है । 'लाल बुझक्कड़' में बसन्त लाल को भी हम इसी श्रेणी में रक्खेंगे । उसका प्रेम भी बहक बहक कर विभिन्न नायिकाओं की ओर केन्द्रित होता रहता है ।

मानसिक जागरूकता और समाज के नियंत्रण हमारी पाशविक मूलभूत प्रेरणाओं को संयमित रखते हैं । उस साधारण संयम से नीचे उतर कर ये पात्र हास्य का उद्रेक करते हैं । इसी प्रकार संयम के अधिकाधिक प्रदर्शन में भी असाधारणता हो सकती है । यह भी एक प्रकार से हास्य की जननी हो सकती है । प्रगल्भ वातावरण पाकर इस प्रकार का संयम मर्यादा के कूलों उपकूलों को और भी अधिक वेग से ढहा देता है । 'लम्बी दाढ़ी' में 'चचा भतीजे' के लाला साहब ऐसे ही संयमी हैं ।

ये प्रेमी पात्र अनेक बार आज के कलुषित वासनात्मक प्रेम की ओर संकेत करते हैं। विशेष रूप से पुंश्चली चरित्रहीना नारियों से प्रेम-व्यापार और 'लतखोरी लाल' में नर का नर के प्रति वासनात्मक भाव दिखाकर जी० पी० ने विकृत वासना का उद्‌घाटन किया है। इस प्रकार के प्रेम को भारतीय साहित्य में कभी भी प्रश्रय नहीं मिला था। अरबी के इमृदपरस्तों ने उर्दू के किशोर 'मुग़बचों' पर 'आशिकों' की भीड़ लगा दी है। उर्दू के श्रेष्ठतम कवि 'मीर' ने भी लिखा था—

"उसी अत्तार के लौंडे से दवा लेते हैं।"

इस उर्दू की प्रथा का सूत्रपात जी० पी० ने लतखोरी लाल में 'श्याम लाल सक्सेना' के प्रेमियों की चर्चा करके किया है। इस प्रकार के अमर्यादित चित्रणों के ही कारण आज जी० पी० का अधिकांश साहित्य अश्लील कहा जाता है, यद्यपि वह कहीं कहीं यथार्थ के समीप है।

आर्थिक और सांस्कृतिक अन्तर पर रहने वाले दो वर्गों की सौन्दर्य भावना तथा प्रेम के पात्र के गुण भी जी० पी० ने 'भूल-चूक' में दिखाए हैं। स्वामी कोमलता का अनुरागी है, पर उसका सेवक कर्मठता का पुजारी। जो नन्हीं-नन्हीं गुलाबी हथेलियाँ कण्डा न पाथ सकें उन्हें वह बेकार समझता है।*

नारी पात्र

पति और पत्नी रूप में जिन पात्रों का सृजन जी० पी० ने किया है वह वास्तव में रोचक है। दाम्पत्य जीवन के प्रसंग में इसकी व्याख्या आगे विस्तार से की जायगी। यहां अन्य भेदों के अनुसार कतिपय नारी पात्रों का वर्णन ही प्रसंगानुकूल होगा—

(१) गार्हस्थ्य जीवन की नारियों को जी० पी० ने आदर्श के सांचे में ढालकर उनका चरित्र-निर्माण चतुर परामर्शदात्री के रूप में किया है। 'उलट-फेर' में गुलनार और 'हजामत' में दिलारा ऐसी ही पात्रियाँ हैं, जो न केवल स्वयं अनुकरणीय आचरण का आदर्श प्रस्तुत करती हैं वरन् अपने स्वामियों को भी सन्मार्ग का प्रकाश दिखाती हैं। इनका पावनतम रूप 'झूठमूठ' की नायिका में लक्षित होता है।

---

* देखिए बौछार पृष्ठ १११।

(२) प्रेमिकाओं की अनेक चतुर सहेलियों का भी जी० पी० ने निर्माण किया है। डाक्टर और घरेलू सेवकों की भाँति यह भी अपनी सखी के प्रेम-व्यापारों में सहायता देती हैं। 'आँखों में धूल' में चंचल, 'मरदानी औरत' में मालती और 'लाल बुझक्कड़' में चम्पा, चमेली, गुलाब और केतकी आदि का ऐसा ही रूप है। 'उलटफेर' में हँसमुख लाल वकील के अनुरूप गुलाब का विनोदप्रिय स्वभाव दिखाया गया है।

(३) पुरुष पात्रों में जिस प्रकार घरेलू नौकर हैं उसी प्रकार नारियों में सेविकाएँ। इनका भी उसी प्रकार का धृष्ट और सलाहकार रूप दिया गया है। चरित्र में इनमें दोनों सिरे दिखाए गए हैं। 'मरदानी औरत' में सुखिया का वेश्याओं के अनुरूप चरित्र है और साथ ही 'भूल-चूक' में महरिन का संयत उन्नत चरित्र। जी० पी० की सेविकाएँ कभी कभी बड़ी चतुर गम्भीर और विशाल-हृदया दीखती हैं। विशेष रूप से इनके कतिपय कथोपकथन बड़े मार्मिक हैं। 'भूल-चूक' में महरिन और पार्वती की वार्त्ता में उसके भाषण अद्वितीय हैं।* यह नागरी खड़ी और ग्रामीण अवधी दोनों बोलियों का मिश्रित रूप प्रयुक्त करती हैं।

(४) जी० पी० की विशेष रुचि चरित्रहीन नारियों अथवा वेश्याओं के जीवन और भावों के प्रदर्शन की ओर रही है। 'उलटफेर' में दिलफरेब और रमदेई और 'मरदानी औरत' में सुखिया इसके प्रमाण हैं। 'लतखोरी लाल' में ताड़वाली के हाव-भाव और स्वार्थपूर्ण कृत्रिम-समर्पण का सच्चा अंकन हुआ है।† वेश्याओं का समाज में स्थान और भ्रष्टाचार का पोषण जी० पी० के व्यंग्यों के प्रिय लक्ष्य रहे हैं। प्राचीन सामान्या नायिकाओं के विपरीति इस वर्ग में आधुनिक पुंश्चलियों के चित्र भी उतारे गये हैं। 'नकदम' में मैडम लीला और 'विलायती उल्लू' में टाम गाबुल की सहयात्री मेम, रूप और सौन्दर्य के द्वारा धनोपार्जन की नवीन विधियों पर व्यंग्य भरा प्रकाश डालती हैं। व्यभिचार को बढ़ाने से जीवन यापन करने वाली 'लाल बुझक्कड़' की मैना ऐसी ही कुटनी है। विशेष रूप से अंग्रेजी सभ्यता में रंगी मेंमों का रूप हल्का ही दिखाया गया है।

(५) पुरुष पात्रों की भाँति अधिकांश युवतियाँ भी प्रेमिकाएँ हैं। इनके मुख्यत: तीन रूप मिलते हैं—

---

* देखिए बौछार पृष्ठ १४४-४५।

† देखिए लतखोरी लाल पृष्ठ ४५-४८।

(क) वे प्रेमिकाएँ जो स्वयं प्रेम करती हैं और प्रतिदान में उनका प्रेम पात्र उनसे प्रेम करता है। 'भूलचूक' में सुशीला और 'मरदानी औरत' में मालती इसी प्रकार की नायिकाएँ हैं। इनका प्रेम वासनात्मक होते हुए भी थोड़ा संयत दिखाया गया है।

(ख) ऐसी नारियाँ जिनसे पुरुष पात्र प्रेम करते हैं पर वे स्वयं कठोर और निर्दयी हैं। इनका रूप बहुत कुछ उर्दू के 'खूबाँ' और 'जालिम माशूक' का सा है।

(ग) वे प्रेमिकाएँ जो स्वयं किसी पुरुष से प्रेम करती हैं पर प्रतिदान में वह उनसे घृणा करता है। आधुनिक साहित्य में कदाचित् इस प्रकार की प्रगल्भ प्रेमिकाएँ स्त्री के लज्जाशील स्वभाव के विपरीत मानी जायेंगी। जी० पी० ने इनका रूप 'विलायती उल्लू' की मैडम फैटी और 'लतखोरी लाल' की आया में दिखाया है।

(६) सबसे करुण और निरीह जीवन जी० पी० ने विधवाओं का दिखाया है। व्यक्तिगत रूप से अपनी बहिन (पृष्ठ ८५) के इस प्रकार के जीवन को देखने के कारण जी० पी० की इस वर्ग से विशेष सहानुभूति है।

जी० पी० ने नारी स्वभाव का और उसके मनोविज्ञान का बड़ा सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया है। भद्र महिलाओं में भोलापन, लज्जा और पवित्रता की झलक रहती है। नारी स्वभाव से संकोचशील होती है। इसी कारण—

"बिना उत्साहित किए हुए किसी स्त्री को प्यार करने का साहस करना—चाहे वह अपनी ही स्त्री क्यों न हो बड़ी भारी मूर्खता है।" (भय्या अकिल बहादुर, पृष्ठ ६०)।

साहित्य की नायिकाओं का अतिरंजित रूप यथार्थ से कितनी दूर भटक रहा है इसका जी० पी० ने 'झूठमूठ' में दिग्दर्शन कराया है। स्त्रियाँ सुख-सम्पत्ति और संतान आदि के सपने दूर-दूर तक देखती हैं। मान-मनावन का सच्चा दृश्य 'नोंक-झोंक' में प्रत्यक्ष हुआ है। विशेष रूप से युवतियों के चित्रण में जी० पी० की रुचि रमी है। रति की गुदगुदी और प्रीतम का अनुराग लिए कामिनी रंभा का एक एक शब्द, एक एक भंगिमा जाने क्या क्या अर्थ, क्या क्या सन्देश और क्या क्या अरमान छिपाए रहती है। परिरम्भन बेला में उसका कोप, उसका समर्पण, उसका हठ, उसका विसूरना सभी कुछ अनुपम होता है। जी० पी० ने उसकी उठती, गिरती, बलखाती भावनाओं का सच्चा रहस्य और अर्थ 'नोंक झोंक' में खोला है। विरहिणी का रूप बहुत कुछ परम्परागत दिखाया गया है। वह अपने प्रलाप में जड़ पदार्थों में चेतनता का

आरोप अथवा प्रकृति का मानवीकरण करती है। प्रिय से मिलन का स्वप्न कभी समाप्त करना नहीं चाहती। स्वप्न मग्न रहने का भाव बहुत प्राचीन है और सूर का पद—

'कहा कहौं बैरिन भई निंदिया, निमिष न एक रही'—

विख्यात है। कुछ इसी प्रकार का भाव 'नोक-झोंक' के 'उहुँक' में निद्रा के प्रति उपालम्भों में मिलता है।* नारी का हृदय भावुक बताया गया है। पर साथ ही सपत्नी ईर्ष्या से वह चण्डी का रूप धारण करती है। जी० पी० कुछ पतित नारियों का स्वभाव दिखाना भी नहीं भूले हैं। 'भय्या अकिल बहादुर' में जी० पी० लखनऊ के एक क्लीव के जीवन का बड़ा ही रोमांचकारी ब्योरा देते हैं। अपने शरीर के नारी के अनुरूप विकास और हाव भाव से वह समस्त समाज को ठगता है। यहाँ जी० पी० ने समाज के प्रतिष्ठित वर्ग की वासना में नेत्रहीनता का चित्र उतार कर आज की विकृत कामुक अभिलाषाओं की ओर संकेत किया है।

पता नहीं क्यों, जी० पी० ने जब नारी को क्रोध में दिखाया है उसकी भाषा और गालियाँ लखनऊ की उर्दू ही में रक्खी हैं। 'पत्र पत्रिका सम्मेलन' में प्रकृति तक आवेश में—

'आँय, उस लौण्डी का यह जिगरा' (दुमदार आदमी पृष्ठ १२२) —

कहती है। इस प्रकार नारी का 'उछाल-छक्को' स्वभाव प्राय: निम्न वर्ग की मुसलमान स्त्रियों की ही देन है। हो सकता है जी० पी० इसी कारण इस विलक्षण भाषा का प्रयोग करते हैं।

भारती नारियाँ अधिकांशत: भाग्यवादी और दृढ़ आस्तिक होती हैं। पुरुषों से कहीं अधिक भजन-पूजन में उनकी आस्था होती है। जी० पी० ने इस सत्य की ओर स्पष्ट संकेत किये हैं। 'भूल चूक' में सुशीला के मूर्च्छित होने पर वहाँ एकत्रित सभी महिलाएँ देवी-देवताओं की मनौती करती हैं।

दाम्पत्य जीवन में नारी का स्थान अंकित करने के व्याज से जी० पी० ने बहुत हास्योद्रेक किया है। अस्तु इस प्रसंग में उनकी नारी-भावना पर कुछ विचार कर लेना अधिक उपयुक्त होगा—

आधुनिक साहित्य में सेक्स के द्वन्द्व की प्रगति पर हम विचार कर चुके हैं।† जी० पी० की पात्रियाँ युग की इस प्रवृत्ति से अधिकतम प्रभावित हैं।

---

* देखिए 'नोक झोंक' पृष्ठ २०।

† देखिए 'हिन्दी साहित्य में हास्य रस' पृष्ठ ६३ तथा, 'जी० पी० के समकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ' पृष्ठ ७६-७७।

यदि व्यापकता की दृष्टि से देखा जाय तो जी० पी० का सम्पूर्ण साहित्य पुरुष और नारी के हास्यपूर्ण संघर्षों पर आधारित है। नारी का प्रगल्भतम विकृत रूप आपकी रचनाओं में देखने को मिलता है। लगभग समस्त नारी पात्र अपने और पराये पुरुषों की ताड़ना में भैरव का अवतार हैं। झाड़ू उनका प्रिय अस्त्र है। जिसको देखिए वही झाड़ू लिए चली आ रही है। और 'भूल चूक' में तो पार्वती शक्कीमल के 'दुहत्थड़' पर 'दुहत्थड़' मारती है। इस प्रकार के वर्णनों में जी० पी० रीति कवियों के धृष्ट नायकों के चित्रों से भी बढ़ गए हैं। यहाँ वास्तव में पुरुष की कायरता और प्रेयसी के चरणों में आत्म समर्पण का उपहास किया गया है। अंग्रेजी साहित्य में स्त्रियों के तलुओं पर नाक रगड़ने वाले और उनसे प्रताड़ित पतियों का उपहास बहुत प्रचलित है। ऐसे व्यक्तियों को 'जोरू के गुलाम' (Hen-pecked) की संज्ञा दी गई है। बहुत कुछ उसी विदेशी धारणा के अनुरूप जी० पी० की पात्रियाँ ताड़का-स्वरूपा हैं। स्पष्ट ही यह भारतीय नारी भावना के विरुद्ध विद्रोह है।

भारत के दो विभिन्न आर्थिक जीवन के संस्कारों का भेद यहाँ जी० पी० ने बड़ी चतुरता से दिखाया है। मध्यम और उच्च वर्ग का प्राणी स्त्री से हर प्रकार की मौखिक लड़ाई लड़ता है। स्त्री से घृणा करके अपनी वासना की तुष्टि वह अन्यत्र खोजने लगता है। पर वह स्त्री पर हाथ कभी नहीं उठाता। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ अपने पतियों पर झाड़ू की वर्षा करती हैं और साथ ही प्रतिकार में 'दुमदार आदमी' का महरा और 'मार मार कर हकीम' का टर्रे खाँ, डण्डों के पैतरे दिखाते हैं।

जी० पी० ने नारियों के बड़े विरोधात्मक रूप सामने रक्खे हैं। कहीं वह पुरुषों के अत्याचार से पीड़ित दिखाई गई है और कहीं अपने कर्त्तव्यों से च्युत स्वयं पथभ्रष्ट। प्रेम के क्षेत्र में अनेक स्थानों पर वे एक विरोध के स्वर में पात्रियों से कहलवाते हैं कि उनके विचार भी मान्यता रखते हैं। उनको कुचलने से पुरुष स्त्री के हृदय पर ठेस पहुंचाता है। 'साहब बहादुर' में गुलनार कहती है—

"......क्योंकि अल्लाह ने हिन्दुस्तान की लड़कियों को दिल तो दिया है, मगर ज़बान देना भूल गये......" (पृष्ठ १३६)

इसी प्रकार 'मार मार कर हकीम' में बयना के भी विचार हैं (पृष्ठ १२८)। 'मरदानी औरत' में मोहनी स्पष्ट करती है कि पुरुष प्रेम में बावला हो जाता है और समाज ने उसकी नग्न अभिव्यक्ति का अधिकार उसे प्रदान

किया है परन्तु नारी का प्रेम कण्डे की आँच की भाँति उसे धीरे-धीरे सुलगाता है। वह उसे प्रकट नहीं कर सकती (पृष्ठ ८४)। अनेक स्थलों पर पुरुषों को 'मतलब का यार' दिखा कर स्त्रियों को उनके रोकने-टोकने के अधिकार से भी वंचित कर दिया गया है। पुरुष नारी की शिक्षा भी आवश्यक नहीं समझता। 'मरदानी औरत' में मोहनी और उसकी सहेलियों का वार्त्तालाप नारी को साहित्य में कोमल भावों की पोषिका के रूप में दिखाता है। पुरुष का हृदय यहाँ वज्र कहा गया है। दया और करुणा का जगत में प्रसार नारी-हृदय की देन है। पुरुष वर्ग के अत्याचार की वीभत्सता हमें तब दीखती है जब 'लतखोरी लाल' और 'प्राणनाथ' में हम नारियों का क्रय-विक्रय और उन पर बलात्कार के दृश्य देखते हैं।

नारी के अधिकारों के इन अभावों के लिए जी० पी० कुछ उसके स्वयं के दोषों की ओर भी संकेत करते हैं। नारी स्वभाव से सदैव रूप गर्विता है। 'नोक-झोंक' में (पृष्ठ १५ पर) वह एक दम कह उठती है '…**नजर लगाने वाले हो'**। उसे अपने रूप-सौन्दर्य का अभिमान नहीं भूलता। अपने शृंगार एवं भौतिक सुखों के लिए वे सदा लालायित रहती हैं। 'लम्बी दाढ़ी' में (पृष्ठ १२२ पर) अनावश्यक आभूषणों के भार को उतार देने की सम्मति पर स्त्री कहती है—

"…………जो मइका पहिरे-ओढ़े देख के जले, राम करे वेके आंखिन फूट जाय।"

धन वैभव, संतान और भौतिक सुखों की कामना उन्हें स्वार्थी बना देती है। इसी कारण इनकी दृष्टि आत्मकेन्द्रित होती है। 'लतखोरी लाल' में (पृष्ठ २२५ पर) कहा गया है—

"क्योंकि स्त्री जाति सिवाय अपने दूसरे किसी का भी बनाव-चुनाव नहीं देख सकेंगी"

अपने साधनों से अधिक व्यय न करने वाला दिलजला 'मरदानी औरत' में कल्पना करता है कि नारी केवल अमीरों के लिए बनाई गई है। इनमें सबसे निर्मम वेश्याएँ तथा अन्य प्रेम की पात्री नायिकाएँ हैं। 'उलट फेर' में (पृष्ठ १११) दिल फरेब कहती है—

"ओ खब्बीस, जब टका पास नहीं है तो अपनी मनहूस सूरत मुझे क्यों दिखाता है ? चल, दूर हो यहाँ से।"

नारी अपनी किसी भी इच्छा का दमन नहीं चाहती। उसे प्रसन्न रखने के लिए

उसकी माँगों पर 'अच्छा' ही एक मंत्र है। इनके स्वभाव का प्रकाशन इन उक्तियों में स्पष्ट किया गया है—

"औरतों के मिजाज का कौन ठीक ? घड़ी में बिल्ली और घड़ी में बंदरिया। अपनी गरज़ पर मेंऊ-मेंऊ, मगर दूसरे की गरज़ पर खोंय खोंय।" (लतखोरी लाल पृष्ठ ३१-३२)

"जैसे बुड्ढे लोग बिना लाठी या छड़ी के चल नहीं सकते वैसे ही कोई फ़ैशनेबिल लेडी बिना किसी जेन्टिल मैन का साथ किये अकेले चल नहीं सकती।" (नकदम पृष्ठ ३७)

"जो जहर पहाड़ी बिच्छुओं में नहीं होता, जो जहर काले साँप में नहीं होता, उससे सौगुना ज्यादा जहर औरतों की जबान में होता है।" (लम्बी दाढ़ी पृष्ठ १२३)

"फिर औरत की जात ? लाहौल बिला-कूवत ! ऐसी अजीब, ऐसी बेतुकी, ऐसी डांवाडोल तबियत की और ऐसी आफत की कि कहे कुछ, करे कुछ, ताके इधर, देखे इधर, आँखों में आँसू, ओठों पर हँसी..............." (विलायती उल्लू पृष्ठ ९५)

"......क्योंकि यह लोग दिल में खाली आग लगाना जानती हैं, बुझाना नहीं।" (विलायती उल्लू पृष्ठ ९८)

"अरे भला कहीं बहती हुई हवा पिंजड़े में बन्द हुई है, या इधर उधर घूमने वाली औरत ?" (प्राणनाथ पृष्ठ ११५)

"गिरगिट को भी रंग बदलते देर लगती है, मगर औरतों को अपनी मुहब्बत बदलने में कितनी देर लगती है—शायद वह भी, जिसने वक्त को घण्टा मिनट और सेकण्डों में बाँटा है, नहीं बता सकता।" (लतखोरी लाल पृष्ठ ११६-१७)

यही नहीं, 'विलायती उल्लू' में 'सफरी प्रेमिका' के अपने बच्चे को छल से बिलग करने पर नायक कहता है—

"वाह री ! मेरी कुमारी प्रेमिका, आखिर तुम भी औरत ही तो निकली न ?" (पृष्ठ ११०)

नारी के इस प्रकार के आचरण में आयु के अनुरोधों का सबसे बड़ा हाथ रहता है। इस तथ्य को जी० पी० ने 'नकदम' और 'लतखोरी लाल' में

स्पष्ट किया है। लतखोरी लाल में शैतान द्वारा गढ़ी गई वस्तु बताकर जी० पी० नारी को उपद्रवी, अनर्थकारी, पाखण्डी, ज्ञान भ्रष्ट करने वाली, आजीवन कष्टदायिनी, पाप में प्रवृत्त करने वाली, बाप-बेटे और भाई-भाई में मन-मुटाव कराने वाली सत्यानाशी बतलाते हैं। इसकी कोमलता ही में बज्र छिपा रहता है। यह अपने स्वामियों को उल्लू समझती हैं। पर सब आयु के अनुसार। यौवन में गर्विता, अधेड़ होने पर अधिकार की प्यासी और वृद्ध होने पर नारी अनुगृहीता हो जाती है। नकदम में यही वृद्धा कुटनी का कार्य करती है।

आधुनिक युग में नारी पुरुष के सन्मुख आत्म-समर्पण करना नहीं चाहती। वह अधिकार की भूखी है। युग की अन्य क्रान्तियों के साथ उसकी अधिकारों की पुकार चल रही है। विवाह-विच्छेद और पैतृक सम्पत्ति में अपना साझे का अधिकार वर्त्तमान नारी की उग्रतम माँगें हैं। जी० पी० ने नारी के अधिकारों की आवश्यकता और सीमाएँ दोनों दिखाई हैं। उपर्युक्त एक दूसरे के विरोधी रूपों का मध्यस्थ मार्ग जी० पी० एक समन्वय द्वारा प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। नारी के प्रति बर्बरता का पूर्ण परिहार पुरुष में हो और स्त्रियाँ अधिकारों के प्रति अपने दीवानेपन का त्याग करें। यह है जी० पी० का मध्यम मार्ग। ध्यान रहे कि जी० पी० ने प्रेम आदि के प्रसंग में जहाँ एक ओर पाश्चात्य स्त्री पुरुषों की स्वतन्त्रता का पोषण किया है वहीं दूसरी ओर उसका खण्डन भी। विवाह सम्बन्ध से पूर्व युवक और कुमारियों का एक दूसरे पर विश्वास और हृदय मिल जाने की बात कही गई है पर उसी प्रकार पर-पुरुषों के साथ नृत्य आदि पर व्यंग्यपूर्ण आलोचना की भी कमी नहीं है।

'प्राणनाथ' के भाव पूर्णतः श्री रमेश चन्द्र दत्त के हैं तथापि जी० पी० हृदय से उन्हें स्वीकार करते जान पड़ते हैं। नारी का वह आदर्श रूप जो जी० पी० चाहते हैं इसी अनुवाद में देखने को मिलता है। धन-वैभव न होते हुए भी स्त्री पुरुष का नैसर्गिक प्रेम दारिद्र्य में भी एक प्रकार का स्वर्ग अवतरित कर देता है। 'विन्दु' की गृहस्थी इसी प्रकार की है। नीचे के कुछ अंशों में इस भाव की पुष्टि मिलेगी—

"......जो मुहब्बत, जो सच्चाई, जो सादगी इस छोटी सी झोपड़ी में है, वह बड़े बड़े महलों में भी दिखाई नहीं पड़ती।" (पृष्ठ २९)

नारी का आदर्श क्या होना चाहिए, यह अनेक अवसरों पर प्रकट किया गया है—

"......**हमें अपने घर को सदा आनन्द से चहचहाता हुआ उस आदमी के लिए रखना चाहिए, जो हमारे जीवन भर के लिए मित्र और साथी है।**" (पृष्ठ ५५)

"**पति का वह प्रेम जो हम स्त्रियों के लिए सारे संसार की धन दौलत से भी बढ़ कर है और त्रिलोक के सारे आनन्द और सुखों से भी जिसकी बराबरी नहीं होती**......" (पृष्ठ ५५)

नारी का कर्त्तव्य सुखी, समृद्ध परिवार का निर्माण करना है। उसे अधिकार चाहिए– भौतिक नहीं, पुरुष के हृदय पर ! '**पुरुष के हाथों में शक्ति होती है और स्त्री की चितवन में।**' वह कोमलता, सहिष्णुता और लज्जा की देवी बनने में ही अपने अधिकार पा सकती है। त्याग और शालीनता इसके पूरक हैं। भारतीय गौरवशाली नारी के चित्रण में जी० पी० ने उसे विफल आशाओं और दु:खों के बीच भी सम्वेदनशीला और सन्तुष्ट दिखाया है। यह जीते जी अपने स्वामियों से क्रोध नहीं करतीं। "**यह पाठ हिन्दू नारियाँ बचपन में ही माँ के दूध के साथ ही सीखती हैं।**" इनका वास्तविक प्रेम हृदय से उत्पन्न होता है, स्थूल सौन्दर्य से नहीं। अस्तु जी० पी० की धारणा नारी और पुरुष को एक साथ लेकर एक समता और सामंजस्य का पथ दिखाती है और साथ ही उसके दलन अथवा अहंकार की अधिकता से उत्पन्न अनिष्टकारी रूप भी। हाँ, हम जी० पी० की रुचि पर यह आरोप कर सकते हैं कि उन्होंने अधिकता से अपने नारी पात्रों को पतित और पथभ्रष्ट ही दिखाया है। अस्तु उनकी भावना पूत होते हुए भी उसे प्रस्तुत करने की विधि कलुषित है। इसका उत्तर केवल यही हो सकता है कि हास्य का क्षेत्र ही दोषों और कालिमा का उद्घाटन है।

अन्त में नारी और पुरुष दोनों ही पात्रों के विषय में कुछ विशेष बातों की ओर संकेत करना उचित होगा। जी० पी० ने इनका नामकरण ही प्राय: ऐसा किया है कि उनके स्वभाव की झाँकी मिल जाती है। 'दिलजला' का हृदय जलता ही रहता है और 'शक्कीमल' बराबर सन्देह में ही रहता है। 'सत्यानाशी' सत्यानाश करके ही दम लेती है और 'सुधारचन्द्र' सुधार पर तुला रहता है। इन्हीं नामकरणों में जी० पी० ने ग्रामीण जनता के नामों का अद्भुत् रूप भी दिखा दिया है। 'लक्कड़बग्घा' पुस्तिका में बच्चों के नाम 'भैंसिया' तक रक्खे गए हैं। यह भारतीय ग्राम वासियों की निरक्षरता और

देवी देवताओं में अंधविश्वास के कारण है। वे प्राय: ऐसे ही उल्टे-सीधे अभिधान स्वीकार करते हैं।*

जी० पी० अपने पात्रों का जो भी गुण दिखाना चाहते हैं उसे प्राय: इतना अतिरंजित कर देते हैं कि वह स्वाभाविकता से दूर होने के साथ ही साहित्य का स्तर नीचे उतार देता है। यहाँ कहा जा सकता है कि हास्य की उत्पत्ति असाधारणता में ही होती है अस्तु उसके लिए यह आवश्यक था। परन्तु आज का युग इसे सत्य नहीं मानता। आज वही हास्य श्रेष्ठ है जो असाधारण होते हुए भी पूर्णत: कल्पना लोक की वस्तु न हो। उसे यथार्थ के निकट होना चाहिए। यह असाधारणता जितनी सामान्य होती जाती है हास्य उतना ही परिष्कृत। यदि जी० पी० के पात्रों की विशेषताएं सामाजिक जीवन की वास्तविक तथ्य होतीं तो उनकी आत्म कथा के रूप में लिखी कृतियाँ परिहास में परिगणित की जा सकती थीं और उनके साहित्य का महत्त्व अवश्य बढ़ जाता। परन्तु, किसी एक ही गुण की अतिरंजना के कारण चरित्र का बहुमुखी विकास नहीं हो पाया है। अत: लगभग सभी नायकों में एक से ही गुणों का प्रादुर्भाव कर जी० पी० अपने पात्रों के चरित्र में विविधता नहीं ला सके है। उनके लिखे जीवन चरित्रों में विलायती उल्लू की लज्जा पराकाष्ठा को पहुंच जाती है। और, क्या इसमें क्या 'लतखोरी लाल' में नायक, वासनाग्रस्त

---

* नामकरण द्वारा हास्य का जन्म आँग्ल साहित्य में भी पर्याप्त मिलता है। Charles Dickens और Lewis Carroll इस कला में दक्ष लेखक थे। डिकेन्स के 'Nicholas Nickleby', 'Martin Chuzzlewit' और 'Bleak House' और करौल के 'Jabberwock' ऐसे ही नामकरण थे। वास्तविक जीवन में भी कतिपय अवसर नामों के कारण हास्य का उत्पत्ति करते हैं। इसका विख्यात उदाहरण एक यह है—

" . . Even more rude was the remar of the judge in a case where Erskine, acting as counsel for a lady rejoicing in the unusual name of Tickle, thus commenced his address to the court, "Tickle, my client, the defendant, my Lord" "Tickle her yourself" came the reply from the bench, "You are as well able to do it as I am."—John Aye, —'Humour Among The Lawyers,' pp 41-42

अवश्य है। अस्तु यदि चरित्र चित्रण की दृष्टि से देखें तो जी० पी० की रचनाएँ अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं।

जी० पी० समय के साथ ही अपनी रचनाओं का भी स्वर बदलने में प्रयत्नशील रहे। जब उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम का वेग तीव्र और सफलता समीप देखी तब अपने पात्रों में देश के प्रति बलिदान की भावना भी भरी। बौछार में 'हजामत' के अनेक पात्र-पात्रियाँ बलिदान और उत्सर्ग की भावना से पूर्ण हैं। यहाँ नारियाँ भी बलिदान करती दिखाई गई है। इस प्रकार की जी० पी० की केवल एक आध रचना ही है और इसे हम उनके शैलीगत प्रवाह के मेल में नहीं मान सकते। यह युग के गाँधीवाद की प्रेरणा से लिखी गई रचनाएँ हैं। इनमें लेखक का हृदय पूर्ण संयोग देता रहा हो, यह निस्संकोच नहीं स्वीकर किया जा सकता।

विदूषकी परम्परा पर जी० पी० के अनेक पात्र विकृत वेश-भूषा धारण करते हैं। इसमें कहीं यंत्रवत जड़ता और कहीं मानसिक मूर्खता का योग रहता है। जी० पी० की अधिकांश रचनाएँ पात्रों के वेश के ही आधार पर निर्भर हैं। इस प्रसंग में उनकीं छद्म वेश की रुचि पर विचार आवश्यक होगा। कथा वस्तु का मुख्य अंग होने के नाते उसकी व्याख्या कथानक के अन्तर्गत अधिक उपयुक्त होगी।

कथानक

वासनात्मक प्रेम

जी० पी० की प्राय: सभी रचनाओं के कथानक-प्रासाद प्रेम की सस्ती पृष्ठभूमि पर खड़े दिखाई देते हैं। नर-नारी का पारस्परिक आकर्षण जी० पी० की इन रचनाओं के आधार पर एक मात्र वासना-ऐंद्रिय सुख-ही स्थिर होगा। पुरुष और स्त्री का सम्बन्ध सम हो अथवा विषम उसका आधार वासना-काम भावना-ही है। कहीं पर कोई काम-ज्वाला से दग्ध पुरुष किसी

युवती प्रेयसी पर 'चपरगट्टू' हो जाता है और कहीं पर किसी प्रगल्भ समर्पण के लिए आतुर नवयौवना का हृदय किसी प्रिय को देख कर 'फिसल' जाता है। यहाँ यह आपत्ति की जा सकती है कि जी० पी० की सभी प्रेयसी युवतियाँ रतिप्रीता नहीं कही जा सकतीं। परन्तु यदि हम उनके गीतों की ओर ध्यान दें तो ऐसी एक भी प्रेमिका नहीं दीखती जिसके भावों में शारीरिक वासना की तृषा घर न किए हो। अधिकांश कथानकों का चढ़ाव-उतार और सम्पूर्ण विकास इन प्रेमी युगलों के मिलन, वियोग, आशा, निराशा, उत्साह, क्षोभ, विरोध, प्रोत्साहन तथा अन्य प्रेम-संघर्षों को लेकर प्रस्तुत होता है। इस प्रकार की कथाओं की पृष्ठभूमि में फ्राइड का मैथुनवादी दृष्टिकोण और प्रगतिशील साहित्य का यथार्थवादी चित्रण कहा जा सकता है।*

कथानकों का मुख्य विषय होने के नाते प्रेम के स्वरूप के विश्लेषण की जिज्ञासा जी० पी० के साहित्य में सर्वत्र मिलती है। इसी उद्देश्य से अनेक, गोथे (Goethe) और जिमर्मन (Zimmermann) ऐसे पाश्चात्य विद्वान् और उर्दू के लब्धप्रतिष्ठ कवियों की उक्तियाँ बीच-बीच में दी गई हैं कभी उनके रचनाकारों के नाम के उल्लेख के साथ, और बहुधा बिना उल्लेख के। इन प्रेम-व्याख्याओं में अधिकतर शरीरजन्य उथले प्रेम का ही स्पष्टीकरण हुआ है न कि गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' वाले आदर्श प्रेम का। इसका कारण यह हो सकता है कि हास्यास्पद बनाने के लिए सभी पात्र पुष्पधन्वा के तीक्ष्ण बाणों से बिंधे, मर्माहत दिखाए गए हैं। उनकी मानसिक चेतना प्रायः सुप्तावस्था में रहती है।

समानान्तर कथाएँ

भारत की प्राचीन पौराणिक आदि कथाओं में प्रचलित 'राजा-रानी' वाली कहानियों में प्रायः दो प्रेम समस्याएँ साथ-साथ चलती हैं। इस प्रकार की अनेक कहानियों में किसी राजकुमार के 'समुद्र कुमारी' अथवा अन्य किसी अप्सरा सुन्दरी से विवाह होने पर राजकुमार के अनेक सहयोगियों के विवाह उसी देश की सुन्दरियों से कराये गये हैं। यह प्रथा कवि-परम्परा रूप में प्रतिष्ठित हो गई थी और भारत के विभिन्न युगों के साहित्य में इसे जीवित रक्खा गया। अंग्रेजी में भी अनेक रचनाएँ प्रायः दो समानान्तर कथाओं को गूँथकर मूल कथानक की सृष्टि करती हैं। इस परम्परा की पुष्टि जी० पी०

---

* प्रसंग के लिए देखिए पृष्ठ ७६-७७।

के कथानक में नौकरों का प्रेम-व्यापार करता है। अपने स्वामियों के साथ ही समानान्तर रूप से सेवकों का प्रेम चलता है और वह मूल कथानक के विकास का महत्त्वपूर्ण अंग होता है।

उत्तर रूप में कथानक का विकास

अनेक रचनाओं का कथानक किसी कुतूहल अथवा जिज्ञासा की तुष्टि के आधार पर विकसित होता है। रचना के प्रारम्भ में एक प्रकार की उत्सुकता जागृत की जाती है और स्वभाववश हमारे मस्तिष्क में एक प्रश्न सामने आ जाता है कि आगे क्या होने वाला है, अथवा इस आरम्भ का शीर्षक से क्या सम्बन्ध है। हमारे इसी कुतूहल के समाधान रूप में आगामी कथानक का विकास होता है। चुटकुलों में प्रायः इस प्रकार का विधान होता है कि उत्सुकता बढ़ती चली जाती है और अन्त के दो एक वाक्यों में रोचक ढंग से उसका शमन होता है। हास्यात्मक छोटी-छोटी कहानियों का यह साहित्य प्रचुर मात्रा में अमेरिका में उपलब्ध है। इन्हें वहाँ 'नब स्टोरी' (Nub Story) की संज्ञा दी गई है। कुछ कुछ इसी शैली के अनुरूप हिन्दी में कतिपय रचनाएँ हुई हैं। प्रसाद की 'ममता' कहानी इसी शैली पर लिखी गई थी। जी० पी० की कतिपय रचनाओं में इस प्रकार की प्रवृत्ति कार्य करती है। इन रचनाओं को पूर्णतः अमरीका की 'नब' कहानियों के समकक्ष हम नहीं रख सकते। इनमें और उनमें आकाश पाताल का अन्तर है। परन्तु उद्दीप्त जिज्ञासा की तुष्टि का जहाँ तक सम्बन्ध है इन कृतियों का उनसे साम्य अवश्य है। जी० पी० की कहानी 'चुम्बन' इसी प्रकार की है। कुछ इसी प्रकार कतिपय रचनाओं के आरम्भ में एक समस्या को उठाकर, एक सम्मति देकर, अन्त में, रोचक ढंग से, पूर्णतः विपरीत विचारों से कथा का पर्यवसान हुआ है। 'नकदम' में आरम्भ में 'नव-यौवना' से विवाह करने की एक सम्मति दी गई। नाटक के अन्त में, इस धारणा का पूर्णतः विपरीत भावों से परिष्कार-परिहार किया गया—

"**गोबर०—बुढ़ापे में जैसे चूरन और टानिक जरूरी है। वैसे ही नई नवेली भी। सच पूछिये तो ईश्वर ने इनको हमी लोगों के लिए बनाया भी है। क्योंकि इस परेशानी की उम्र में दिल हरदम ताज़ा रखने की सबसे ज्यादा ज़रूरत हमी लोगों के लिए है।**" (पृष्ठ ६)

"......**बिना पढ़े शास्त्र विष है। बदहज़मी में भोजन विष है। मूर्ख के लिये सलाह विष है। वैसे ही बुढ़ापे में नई नवेली विष है।**" (पृष्ठ ६७)

विगत और आगामी घटनाओं का संकेत

नाटकों में प्राय: विगत घटनाओं के परिचय के लिए कुछ पात्र मंच पर भाषण करते हैं। 'मरदानी औरत' में बम्भोलानाथ के स्वगत भाषण में पूर्व घटनाओं का लेखा, प्रस्तुत करने का उद्देश्य ही अधिक ज्ञात होता है—

"**बम्भोला०—(अलग) हम तो निकले थे लेख का विषय ढूंढ़ने और पुलिस ने आवारागर्दी में रात भर से लिए हवालात में बन्द कर दिया।......**" (पृष्ठ ६९)

'लाल बुझक्कड़' में निगड़म और लाल बुझक्कड़ के लम्बे सम्वाद केवल विगत घटनाओं का हाल बताते हैं।* 'साहब बहादुर' में सौमन का स्वगत-भाषण प्रत्यक्ष रूप से मंच पर न दिखाई गई कथा के परिचय मात्र के लिए आया है।† कथानक के शिथिल निर्वाह अथवा रचना को अधिक लम्बा न करने के उद्देश्य से ऐसी योजना होती है। इसे आधुनिक नाट्य कला के अनुसार अच्छा नहीं माना जाता। जी० पी० के नाटकों में ऐसी वार्त्ता प्राय: मुख्य पात्रों द्वारा प्रस्तुत की गई है। इनका रूप प्राचीन नाटकों में प्रचलित विष्कम्भक, चूलिका और प्रवेशक की कोटि का है। कहीं कहीं आगामी दृश्य की ओर भी पात्र संकेत कर देते हैं, जैसे 'नकदम' में प्रथम अंक के दूसरे तथा तीसरे दृश्य के अंत में गोबरचन्द के भाषण भावी घटनाओं का आभास दे देते हैं।‡

उत्सुकता का निर्वाह

कथानक की वही रचना श्रेष्ठ मानी जाती है जिसमें कुतूहल का उपयुक्त स्थान हो। कथानक में आगे आने वाली घटनाओं के प्रति एक प्रकार का कुतूहल और जिज्ञासा जब तक जीवित रहती है तभी तक पाठक का हृदय उसमें रमता है। इस कुतूहल का निर्वाह जी० पी० कहीं पर बड़ा मार्मिक कर सके हैं और कहीं पर बड़ा शिथिल। नाटकों के एक-आध दृश्यों पर पर्दा तब गिराया जाता है, जब कथानक की मुख्य समस्या का संघर्ष अपने चरम उत्कर्ष पर होता है। स्वभावत: आगामी घटनाओं के प्रति तीव्र उत्सुकता उद्दीप्त हो जाती है। इसी प्रकार 'लतखोरी लाल' में 'ससुराल की बहार' में माली को

---

* 'लाल बुझक्कड़' पृष्ठ ९३।

† 'साहब बहादुर' पृष्ठ १९-२०।

‡ 'नकदम' पृ० १४ तथा २४।

उपहार देने के पूर्व यह न बता कर कि वह हँसिया है, कुतूहल बनाए रक्खा जाता है। इसके विपरीत अनेक स्थानों पर भावी घटनाओं की ओर संकेत मिल जाने से उत्सुकता नष्ट हो गई है। 'लतखोरी लाल' में ही 'जेण्टिलमैनी की धूम' के अन्तर्गत कील की चर्चा से आभास मिल जाता है कि यह ठीक अवसर पर उखड़ जायेगी।* इसी प्रकार 'ससुराल की बहार' में चोर के पकड़ने में झंकार से आभूषणों का संकेत मिल जाता है और विश्वास हो जाता है कि चोर और कोई नहीं उनकी स्त्री ही है।†

संयोग

हास्य कृतियों के, विशेषकर नाटकों के, तीन वर्ग माने गए हैं। एक चरित्र प्रधान, जिनमें किसी नायक के चरित्र का विकास दिखाया जाता है। दूसरी, संस्कृति-प्रधान, जिनमें किसी विशेष संस्कृति के विभिन्न रूपों और प्रथाओं का हास्यपूर्ण अंकन होता है। और तीसरी, वे कृतियाँ हैं, जो घटना प्रधान होती हैं, इन्हें निकृष्ट कोटि का माना गया है। इनमें कथानक घटनाओं के संयोग पर निर्भर रहता है। जी० पी० की लगभग सभी रचनाएँ इसी कोटि में आती हैं। इनमें घटनाओं के विलक्षण संयोग से कथानक आगे बढ़ता है। कथानक को बढ़ाने के लिए जी० पी० मनचाही घटनाओं की व्युत्पत्ति कर देते हैं। अनेक स्थानों पर कथानक के संघर्ष से मुक्ति, कतिपय पात्रों पर अथाह सम्पत्ति की अनायास वर्षा से, हुई है। 'मार मार कर हकीम' और 'मरदानी औरत' में जिन पात्रों के प्रति सहानुभूति है उन्हें ऐसे ही छप्पर फाड़कर धन मिलता है। इस प्रसंग में यह अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि जी०पी० रुपए और उनके नोट बनाने में बड़े दक्ष हैं। चाहे जहाँ, चाहे जिस पात्र के पास मनचाहे रुपए निकाल देते हैं। 'साहब बहादुर' के हजामत बेग (पृष्ठ ८१) 'लाल बुझक्कड़' के दौलत (पृष्ठ ३९) और 'उलट फेर' के पटवारी (पृष्ठ ८६) मनवांछित धन राशि निकालते रहते हैं। इस सम्पत्ति के आकस्मिक प्रकटीकरण का संयोग चरम बीभत्सता को 'भय्या अकिल बहादुर' में पहुंचता है जब पर्स में अकिल बहादुर को एकदम डेढ़ हजार के नोट मिलते हैं।‡ इसी प्रकार जी० पी० के किसी भी पात्र को चाहे जहाँ छिपने का और वेश-परिवर्त्तन का

---

* 'लतखोरी लाल' पृ० १५।

† 'लतखोरी लाल' पृ० ९३।

‡ 'भय्या अकिल बहादुर' पृ० १०२।

अवसर मिल जाता है। इसके कारण, स्वाभाविकता से दूर, अतिरंजना से हास्य की कोटि गिर जाती है। 'हवाई डाक्टर' में घनचक्कर स्वयं ही डाक्टर और उसका भाई एक कमरे में लगातार बनता रहता है और खिड़की के आस पास खड़े पात्र धोखा खा जाते हैं।* यद्यपि बाद में रहस्योद्घाटन हो जाता है परन्तु कथानक बड़ा अस्वाभाविक हो गया है। घटनाओं को इस प्रकार कथानक की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संयोग के आधीन कर देना कोई उत्तम कला नहीं। 'साहब बहादुर' में तो दिलवर के भाषण के लिए मोटर को ही विगाड़ दिया गया, और वह बिगड़ी भी कहाँ जाकर, ठीक साहब बहादुर के द्वार पर, जहाँ उसे जाना था! †

हमें आश्चर्य तब होता है, जब इस प्रकार अतिरंजित और केवल संयोग मात्र से शासित कथानकों को भी जी० पी० स्वाभाविक सिद्ध करना चाहते हैं। अनेक रचनाओं में वे अपने कथानक की स्वाभाविकता के प्रमाण में संयोग का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते दीखते हैं। 'भूलचूक' में रामदास को अपने घर पर ही रखने का कारण डाक्टर रोगी की विशिष्ट दशा बताता है––

"डाक्टर........इन्हें अस्पताल में ले जाने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि नसें मुलायम पड़ते ही एक खास हिकमत से अपनी जगह पर लाई जायँगी, जो वहाँ और मरीजों की संगत में नहीं किया जा सकता।" (बौछार पृष्ठ १३२)।

'भूलचूक' में ही डाक्टर अपने कम्पाउन्डर को नुस्खा लिफाफे में रख कर देता है। शक्कीमल इस लिफाफे को सिरहाने अस्तव्यस्त पड़ा रहने देता है। शक्कीमल इस लापरवाही का कारण भी देता है—

"शक्कीमल......जरा तबीयत ठिकाने हो तो जेब में रख लूँगा।" (बौछार पृष्ठ १४१)

यही लिफाफा आगे सुशीला उठा लेती है। कथानक के तथ्यों के प्रकाश में शक्कीमल का उपरोक्त कथन अस्वाभाविकता को छिपाने का असफल प्रयास ज्ञात होता है। महरी का केवल डाक्टर के यहाँ न जाना सप्रयोजन है। तथापि महरी और पार्वती का संवाद इसे सामान्य कार्य कलाप सिद्ध करना चाहता है–

"महरिन—सारा मुहल्ला तो छान आई! सिर्फ डाक्टर बाबू के घर नही गई थी?

---

* देखिए 'मार मार कर हकीम' पृष्ठ १४५-४८।

† 'साहब बहादुर' पृ० ६४।

पार्वती—अच्छा किया। वहाँ वह क्यों जाने लगे और भी कभी वहाँ जाते हैं कि कल ही जाते ?……" (पृष्ठ १८५)।

इसी में आगे शक्कीमल अकारण डाक्टर के निवास स्थान पर अपनी उपस्थिति की सफाई देता है—

"शक्कीमल—मैं इस मकान में हरगिज नहीं आता, मगर महरिन हमारी औरत को यहाँ लेकर क्यों आई ? यही देखने आया हूं।" (बौछार, पृ०१७०)

यहाँ तक कि 'लाल बुझक्कड़' में तिगड़म अपनी असमय उपस्थिति को ईश्वर की कृपा से स्पष्ट करना चाहता है—

"तिगड़म………ईश्वर की कृपा से आज मैं इधर आ निकला……।" (पृष्ठ ७८)

यह घटनाएँ कितनी अस्वाभाविक हैं यह जी० पी० की कतिपय तेकनीकों के निर्देशन से स्पष्ट हो जायगा। जी० पी० जहाँ चाहें क्षण मात्र में विवाहों की तैयारी कर दिखाते हैं। 'गड़बड़ झाला' में संयोग देखिए कि मनहूस और कमबख्त दोनों पीपल वाले मकान पर और एक ही समय अपनी रखैल से मिलते हैं। दोनों बुद्धू को अपनी प्राणप्यारी समझ कर एक ही स्थान पर लाए। कैसे ? यह सब स्वयं सोचिए ! और फिर बिगड़ेदिल में मनहूस और कम्बख्त दोनों हर बार उसे दूर एकान्त में ले जाकर पूछताछ करते हैं।* उलटफेर में खुराफात के पास खंजर, तमंचा सभी कुछ रहता है।† 'विलायती उल्लू' में देखते-देखते सफरी प्रेमिका स्टेशन से लुप्त हो जाती है। 'लतखोरी लाल' में आया तीव्र गति से चलती मोटर सायकिल की साइडकार में आ जाती है। क्या यह सब संयोग नहीं ?

अस्तु घटनाओं के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ तक कथानक में उनकी योजना का सम्बन्ध है उनके संयोग के आश्रित होने के कारण जी० पी० का साहित्य श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता।

हलकी टेकनीक

घटना के संयोग के अतिरिक्त इन कथानकों में अग्रलिखित कुछ बातों के आश्रय से जी० पी० की कला बड़े निम्न स्तर की हो गई है—

---

* गड़बड़ झाला, पृ० ५६।

† उलट फेर, पृ० १३४।

(क) मारपीट—जी० पी० की कोई रचना ऐसी नहीं जिसका कथानक पग-पग पर मारपीट का समावेश न करता हो। दुहथ्थड़, झाड़ू, डण्डे और लात आदि के प्रहार कहीं कथानक का संघर्ष शान्त करते हैं और बहुधा उसे आगे बढ़ाते हैं। इस शारीरिक द्वन्द्व में, हम पहिले भी चर्चा कर चुके हैं, स्त्रियाँ भी खुले हृदय से भाग लेती हैं।* पति की कर्मठ पीठ पर कान्ता की झाड़ू सदा बल खाती रहती है। इस प्रकार का दृश्य कितना ही हास्यास्पद क्यों न हो, श्लाध्य और कलापूर्ण नहीं कहा जा सकता।

(ख) भारत युग युग मे जादू टोने का देश रहा है। यहाँ की पौराणिक, जासूसी तथा अन्य कथाओं में छद्म वेश द्वारा कुतूहल का सृजन बहुत प्रचलित रहा है। अनेक देवी-देवताओं और असुरों में नाना शरीर धारण करने की क्षमता स्वीकार की गई है। नर से पशु तो नहीं, पर नारी वेश धारण करने की जी० पी० की रचनाओं में प्रचुरता है। एक आध अवसर पर स्त्रियाँ भी पुरुष वेश धारण करती हैं, यथा 'मरदानी औरत' में। परन्तु वे अपनी सहजात प्रकृति के कारण उस पुरुष वेश का निर्वाह नहीं कर पातीं। परन्तु पुरुषों को जहाँ जी० पी ने नारी बनाया है, उनका पहिचानना दुर्लभ हो जाता है! जी० पी० की कुछ धारणा ही ऐसी है कि नारी पुरुष का स्वांग नहीं कर सकती जब कि पुरुष अपने पुरुषार्थ को खोकर कभी भी नार्योचित कार्य कर सकता है।

यदि एक-आध स्थल पर पुरुष को नारी बना दिया जाता तो वह कलापूर्ण भी हो सकता था, पर रचना में ऐसे अनेक छद्म वेशों के विधान मे उसकी स्वाभाविकता और कला दोनों का नाश होता है। युवकों को सुन्दरी रूप में दिखाने की जी० पी० की अपनी प्रबल रुचि है। इसके उपयोग में जी० पी० कला की स्वाभाविकता और सुरुचि आदि सभी गुणों पर पानी फेर देते हैं। सबसे बड़ी शंका यही होती है कि कहीं भी पुरुष के कठोर स्वर पर किसी को सन्देह नहीं होता। साड़ी पहिन कर सभी युवक, मधुर कोकिल कण्ठ पा जाते हैं। यहाँ तक कि 'अच्छा' में बदहवास राय अपने पिता झपसट राय के कथनों को अपनी प्रिया सुशीला का स्वर समझता है।† 'लाल बुझक्कड़' में तिगड़म वृद्धा विधवा पुजारिन का स्वर पा जाता है।‡ छद्म वेश की सुलभ तेकनीक

---

* देखिए पृष्ठ १७०।

† नोंक झोंक, पृ० ३६।

‡ लाल बुझक्कड़, पृ० ८२।

का त्याग जी० पी० के लिए अति कठिन है। जैसा हम पूर्व संकेत कर चुके हैं, दत्त जी के उपन्यास, 'प्राणनाथ' का मूल स्वर सयंत एवं गम्भीर है।* इसके रूपान्तर में जी० पी० ने मौलिक तृतीय खंड में तारिणी की अपनी रुचि के अनुकूल कल्पना भिड़ा दी है। राजा निरन्तर एक षोड़शी 'तारिणी' का अभिनय निभाता है। आश्चर्य होता है जब उक्त खण्ड के चौथे परिच्छेद 'भेद की बातें' में स्टेशन पर अकेली तारिणी को तीर्थ यात्रा करते जाते देख भी रमा के घर वालों को किसी प्रकार का सन्देह नहीं होता।† तारिणी को जिस परिवार और समाज की सदस्या चित्रित किया गया है उसमें कोई स्त्री कभी अकेले तीर्थ करने जा सकती है इसकी कल्पना सहज नहीं है। वस्तुत: छद्म वेश का अति प्रयोग अनेक अवसरों पर कथानक की स्वाभाविकता के प्रतिकूल सिद्ध हुआ है।

छद्म वेश से उत्पन्न अस्वाभाविकता को सामान्य सहज धरातल पर स्वीकार करने के लिए जी० पी० के चरित्र बहुत कुछ यंत्रवत जड़ता (Automatism) से ग्रसित प्रकट हुए हैं, जो स्वयं में हास्योत्पत्ति का एक सर्व-सुलभ सस्ता साधन है।

पुरुष के इस सुन्दरी रूप से जी० पी० के मोहकी पृष्ठभूमि में अरबी की 'इमृद परस्ती' कही जा सकती है। और यदि, सौन्दर्य, सेक्स और हाला के यथार्थवादी चित्रण के लोभ के कारण किसी कवि-वर्ग को सौन्दर्यवादी, सेक्सवादी और हालावादी कहा जा सकता है तो क्यों न फिर जी० पी० को 'नवोढ़ा-वेशी-तरुण' वादी कहा जाय !

तथ्य यह है कि जी० पी० की कल्पना में कथानक की विविधता का पूर्ण अभाव है। यह अभाव पुनरुक्ति-दोष का सूचक है।

(ग) पुनरुक्ति—एक ही भाव अथवा कथा की सामग्री के बार बार आने से उसकी रोचकता नष्ट हो जाने के साथ पाठक खीझ भी उठता है। अंग्रेजी भोजन के ढंग की जैसी चर्चा जी० पी० ने 'लतखोरी लाल' में की है लगभग उसी प्रकार की 'लम्बी दाढ़ी' के 'कालेज मैच' में भी विद्यमान है। चुम्बन करते समय प्रिया के धोखे में किसी अन्य व्यक्ति का आलिंगन दिखाना भी अनेक रचनाओं में आया है। 'लाल बुझक्कड़', 'लतखोरी लाल' 'विलायती

---

* देखिए ग्रन्थों के परिचय में पृष्ठ ११७।

† प्राणनाथ, पृ० ११०-१२२। तथा पूर्व चर्चा पृ० ११७-१८।

उल्लू' और 'जवानी के दिन' में भी ऐसे स्थल आए हैं। इसी प्रकार 'पतिभर्त्ता' की चर्चा 'लतखोरी लाल', 'मरदानी औरत' और 'नकदम' तीनों में आती है। 'लम्बी दाढ़ी' में मौलवी साहब की जेब में मेढक रक्खे जाते हैं और पुनः पण्डित जी की पगड़ी में। भावावेश में अनेक पात्र सच्ची बात कह जाते हैं और कई जगह अनर्गल प्रयोग, यथा 'छः महीने की फाँसी' और 'साढ़े डेढ़ फिट' हँसाने के लिए आते हैं।

(घ) पुनरुक्ति की भाँति कुछ स्थल ऐसे आते हैं जिनसे जी ऊब जाता है। 'लाल बुझक्कड़' में (पृष्ठ १८) लाल बुझक्कड़ की मानिक से बातचीत में जी० पी० ने उसकी उदासीन और खिझा देने वाली वार्त्ता की शैली का दिग्दर्शन कराया है। उसकी वार्त्ता सारहीन है अवश्य पर साथ ही जी० पी० की शैली का निदर्शन भी करती है।

(ङ) शारीरिक पतन अथवा विकृति से उद्‌भूत हास्य पवित्र नहीं माना जाता। इस प्रकार का हास्य, विशेष कर श्रृंगार-प्रधान, निम्न कोटि का कहा जाता है। जी० पी० की रचनाओं में इस अधम युक्ति की भरमार है। मारपीट, गिरना-पड़ना आदि शरीरजन्य विकारों से हास्य का सर्वत्र उद्रेक किया गया है। 'उलटफेर' के तीसरे अंक के चौथे दृश्य में उदित टक्कर पर टक्कर खाता है। 'मरदानी औरत' में पक्षपाती लाल अपने शरीर के विकार से हँसाता है। 'चोर के घर छिछोर' में अनेक पात्र उल्टे टाँग कर मारे जाते हैं। इस प्रकार का हास्य अंग्रेजी के विद्वानों ने 'होर्स प्ले' (Horse Play) की निकृष्ट कोटि में माना है। जी० पी० की यह युक्ति साहित्य का उत्तम अंग नहीं।

नाटकीयता की दृष्टि से जी० पी० के अधिकांश कथानक अच्छे हैं पर कुछ खरे नहीं उतरते। 'उलट फेर' में पचास-पचास पात्रों को लेकर कथा चलती है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि कम से कम पात्र वाला नाटक उत्तम होता है। साधारण मंच पर सभी नाटक खेले भी नहीं जा सकते। स्नान आदि के वर्जित दृश्य सामने आते हैं। जैसा हम पहिले लिख चुके हैं, अस्वाभाविकता और अतिरंजना के कारण नाटक प्रायः प्रहसन के स्तर पर गिर जाते हैं। उद्धरण, भाव और कथावस्तु की पुनरुक्ति से कथानक का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। 'उलट फेर' प्राचीन परिपाटी के अनुसार सूत्रधार, विदूषक आदि के प्रवेश और नान्दी पाठ के अनुरूप, मंगलाचरण की भाँति, प्रार्थना से आरम्भ होता है। परन्तु इसमें विदूषक हँसाने का प्रयत्न करता नहीं ज्ञात होता।

जी० पी० की अधिकांश रचनाएँ सुखान्त हैं। जिन पात्रों के प्रति उनकी सहानुभूति रहती है उनकी सफलता और इच्छा की पूर्त्ति प्राय: कथानक के अन्त में होती है। जी० पी० का हास्य करुणा से सर्वथा पृथक होने के कारण गम्भीर स्मित हास्य से भी विलग रहा है। अद्भुत संयोग और उथले हास्य के कारण दु:खान्त का कोई अवसर ही न था। फिर जी० पी० के हास्य का स्तर गम्भीरता और परिष्कार से इतना विलग है कि उसमें अवसर आने पर भी करुण-हास्य के बदले अतिरंजित अपहसित आदि लाए गए हैं। भारतीय परम्परा ही सुखान्त रचनाओं की पोषक रही है। और फिर जी० पी० का साहित्य तो हास्य का सहारा लिए था जो सुख और हर्ष के वातावरण में अधिक सरलता से पल्लवित हो जाता है; जब कि करुणा में हास्य की लाली भरने के लिए केवल कल्पना और विचार ही नहीं वरन् एक आन्तरिक अनुभूति की भी आवश्यकता होती है।

जी० पी० ने पूर्व प्रचलित सभी शैलियों को अपनाने का प्रयत्न किया है। 'बैताल पचीसी', 'हितोपदेश' और 'सिंहासन बत्तीसी' की भाँति कहानी के अन्दर कहानी लिखने का प्रयत्न 'भय्या अकिल बहादुर' के अन्तिम अध्याय में किया गया है। भारतेन्दु युग के बाद प्रबल वेग से उमड़े तिलिस्म, ऐय्यारी और जासूसी रोमांचकारी कथानकों की 'चन्द्रकान्ता' वाली परिपाटी के मेल में 'प्राणनाथ' के मठ का रहस्य कहा जा सकता है। इस प्रकार का वर्णन कौशलपूर्ण होते हुए भी अर्वाचीन साहित्य में अधिक सराहनीय नहीं माना जाता है। इस पर अंग्रेजी के साहित्य की प्रतिच्छाया है जिसकी चर्चा हम प्रमुख रचनाओं के परिचय के अन्तर्गत कर चुके हैं।* कुछ रचनाओं का कथानक शीघ्र ही घसीट कर समाप्ति पर पहुँचाया हुआ जान पड़ता है। 'बौछार' का भी अंत कुछ रोचक नहीं बन पाया है।

जी० पी० के कुछ कथानक बड़े सरस होने के कारण अन्य लेखकों द्वारा भी ग्रहण किए गए। 'बाल सखा' में 'लम्बी दाढ़ी' के पण्डित जी के छात्रों द्वारा उनकी टाँगों की मरम्मत के आधार पर एक कविता छपी थी। 'भय्या अकिल बहादुर' में पुलिस के सैनिक की नाक टटोलने और कृत्रिम पुतले को अभिवादन करने आदि की छाया चगताई की एक कहानी और रमई काका की अमीनाबाद पर लिखी कविता में मिलती है।

---

* देखिए पृष्ठ ११९ पर अंग्रेजी के रोमांचकारी कवियों का संकेत।

कथानक के विषय में अन्त में यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि जी० पी० ने स्वयं 'स्वातंत्र्य की अनुभूति' का अर्थ समाज के प्रतिबन्धों से मुक्ति मानकर उसे भँड़ैती कहकर निकृष्ट सिद्ध किया है। पर, यदि सूक्ष्मता से देखा जाय तो स्वयं जी० पी० के कथानक प्रायः समाज की मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाली प्रक्रिया को लेकर चलते हैं। यद्यपि हम 'स्वातन्त्र्य की अनुभूति' का ऐसा अर्थ नहीं मानते* तथापि जी० पी० के दिए हुए मापदण्ड से ही उनका साहित्य उत्तम नहीं है।

कथोपकथन और गीत

जी० पी० के आविर्भाव काल में पारसी नाटकों का प्रभुत्व था। इन नाटकों की सजीवता प्रायः गीतों और प्रभावशाली कथोपकथनों पर निर्भर रहती थी। इनमें अरबी फारसी की अधिकता होते हुए भी एक हृदय-स्पर्शी रोचकता थी और इनकी साहित्य में एक परम्परा बन गई थी। मंच पर विशेष बलाघात और लय से उच्चारित यह संवाद और गीत अपनी करामात दिखाते थे। जी० पी० के संवाद और गीतों को हम इसी परम्परा में मान सकते हैं। यहाँ इनके कुछ सामान्य गुण-दोषों पर दृष्टिपात समीचीन होगा।

जी० पी० के हास्यपूर्ण संवाद प्रायः भाषा के वैचित्र्य अथवा श्रृंगारी भावों से उत्पन्न हैं। भाषा सम्बन्धी विवेचन पहिले किया जा चुका है।† यहाँ इतना संकेत करना पर्याप्त होगा कि उर्दू फारसी की उक्तियों को संवादों के बीच डालना, पूर्व वक्ता के वाक्य से किसी शब्द को लेकर फब्ती कसना, संवादों में अनुप्रास लाना और भावों की अथवा शब्दों की वक्रोक्ति से संवाद को आगे बढ़ाना पारसी नाटकों की देन है।‡ कहीं-कहीं पर पूर्णतः पारसी

---

* देखिए 'हास्य का स्वरूप' में पृष्ठ १४।

† देखिए पृष्ठ १४९।

‡ "मालती—(मुस्करा कर)—मगर देखो मसखरापन न करना।
गड़बड़—माना कि मैं बुरा हूं मगर सच बताइये। क्या बानिये फसाद

नाटकों के आवेशपूर्ण और काव्यात्मक संवादों की शैली पर कथोपकथन लिखे गए हैं—

"नवाब—आपकी ख्वाहिश नहीं रहने की है तो बेहतर है, मगर बन्दे का इस दुनिया में रहना निहायत जरूरी है।

यूसुफ़—इसका फैसला करने वाला वह परवर दिगार है।

नवाब—आपको कुछ खबर है कि आप किससे बातें कर रहे हैं ?

यूसुफ़—आदमी के जामे में एक शैतान से।

नवाब—अरे ! अरे ! एक नवाब की शान में यह अल्फ़ाज़ !

यूसुफ़—आप अपनी सारी नवाबी हज़ामत बेग के घर खत्म कर चुके। अब मुहब्बत के मैदान में और मौत के घाट पर नवाब और फ़कीर दोनों बराबर हैं।" ('साहब बहादुर पृष्ठ ६१)

इसी प्रकार संवादों के चलते चलते किसी आकस्मिक घटना से उन्हीं संवादों का विकास, इस नवीन घटना के प्रकाश में, मोड़ देने की प्रणाली पूर्णत: पारसी नाटकों की, **'बोल ऐ क़ाफ़िर तेरा क्या होगा ?'** के साथ तमंचे की चोट और **'होता है वही जो मंजूरे-खुदा होगा'** वाली शैली के अनुरूप है। 'अच्छा' में रसिक लाल और मोहनी की वार्त्ता के बीच बदहवासराय का आगमन दिखाकर नेपथ्य में 'तेरी मौत ! तेरी मौत !' की योजना इसी प्रकार की है।*

तुम्हारी अदा नहीं ? ('शाद')"—(मरदानी औरत, पृष्ठ १४०)

"उठल्लू—सुना है आपकी मेंम साहब Gown बनवाने वाली हैं। इस लिए उनकी नाप लेने आया हूं।

गोबर—पहले तो मैं तेरी गर्दन नापता हूं।……"(नकदम, पृष्ठ ४२)

अनुप्रास के लिए देखिए भाषा का प्रसंग पृष्ठ १५४ पर।

अर्थ और भावों की वक्रोक्ति का जी० पी० ने बहुत प्रयोग किया है। एक पात्र कोई बात कहता किसी प्रसंग में है और दूसरा किसी अन्य प्रसंग में ले जाता है। 'साहब बहादुर' में (पृष्ठ ६८ पर) यूसुफ़ और नवाब की तथा **'अच्छा'** में (पृष्ठ ३६ पर) बदहवास और उसके पिता की वार्त्ता इसी प्रकार की है।

देखिए 'नोंक-झोंक' पृष्ठ ६८।

श्रृंगार से पोषित भावों के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इनका उद्गम प्राय: ऐंद्रिय वासना को लेकर हुआ है। कामुक पात्रों और उनके सेवकों के प्रगल्भ संभाषण जी० पी० के साहित्य में प्रचुरता से मिलेंगे।

हम पहिले संकेत कर चुके हैं, जी० पी० के कतिपय नारी पात्रों के संवाद बड़े सुन्दर हैं। उनके मनोविज्ञान और भावावेश का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत करने में जी० पी० सफल हैं। फिर भी एक अस्वाभाविकता बहुत खटकती है। प्राय: पात्रों द्वारा प्रस्तुत संबोधन अपनी एकरूपता भूल गए हैं। वही पात्र दो वाक्यों में लगातार अपनी माता को कहीं 'अम्मी' और कहीं 'अम्मा' कहता है और पिता को कहीं 'पिता जी' और कहीं केवल 'पिता'। इसी प्रकार का 'आप', 'तुम' और 'तू' का प्रसंग है जिसपर हम भाषा के अन्तर्गत विचार कर चुके हैं।*

जी० पी० ने नाटकों के अतिरिक्त अपनी अन्य रचनाओं में भी कतिपय अनूठे संवाद रक्खे हैं। जी० पी० मूलत: एक नाटककार हैं और उनकी प्रत्येक रचना में नाटक के तत्त्व उपलब्ध होते हैं।

अवसर की उपयुक्तता के विचार से जी० पी० के गीतों से कहीं अधिक सफल उनके द्वारा प्रस्तुत उर्दू फारसी की शेरें और गजलें आदि हैं। प्राय: गीतों के बीच भी यह शेरें डाल दी गई हैं। इस प्रकार उर्दू की कविता का समावेश तत्कालीन नाटक-कम्पनियों में प्रचलित था। इनका रूप बहुत कुछ उसी प्रकार है जैसे शास्त्रीय संगीत के गायक और नृत्यकार अपने ठुमरी-ठप्पों के बीच शेर अथवा गजल डाल देते हैं। लावनीबाजों और नौटंकी दिखाने वालों में आज भी ऐसी प्रथा दिखाई पड़ती है। कहीं-कहीं जी० पी० ने रीति कवियों के सरस छन्दों का भी ऐसा प्रयोग किया है।

स्वरचित गीतों का जहाँ तक सम्बन्ध है जी० पी० की रुचि परिष्कृत नहीं जान पड़ती। अवसर कुअवसर यह गीत आते रहते हैं और इनके कुछ मुख्य भेद यह हैं—

(क) मारपीट के सहगान—आन बान के लिए लड़े गए, प्राचीन राजपूती युद्धों में चारणों के आल्हे और कड़खों की कड़क अक्सर सुनाई पड़ जाती है। परन्तु यदि किसी को मुहल्ले की गलियों और घर के दालानों में घटित जूता-पैजार की रणभेरी सुननी हो तो जी० पी० का साहित्य देखे। आपके साहित्य में जितनी अधिक मारपीट है उतने ही उसके औजस्वी गान भी। यह

---

* देखिए पूर्व विवेचन पृष्ठ १५४-५५

प्राय: सहगान के रूप में आते हैं, जहाँ अनेक पात्र मिलकर एक अथवा अधिक पात्रों को निर्दयता से धुनते हैं। प्रहार करने वाले प्रोत्साहन के शब्द हुंकारते हैं और आक्रांत दुहाई की पुकार मचाता है। ऐसे गीत केवल अपनी विलक्षणता और अनुपयुक्तता के कारण हास्यास्पद हैं।

(ख) निन्दनीय और हेय कृत्यों में फँसे कुछ व्यक्ति अपने मस्त गीत गाते रहते हैं। 'चोर के घर छिछोर' में ठग अपनी तान छेड़ते हैं और 'उलटफेर' में घूसखोरी में मस्त फितरत अपना राग अलापता है। कुछ गाने आसव आदि मादक सेवनों की प्रशस्ति और मस्ती में गाए जाते हैं। इन गीतों की प्रेरणा जीवन में भोग और रंगरेलियों की प्रबलवती कामना देती हैं। इनकी पृष्ठभूमि में हालावादी साहित्य की रूप रेखा देखने को मिलती है।*

(ग) भारतेन्दु के प्रसिद्ध लटकों की भाँति कुछ औषधि आदि के बाजारू विक्रेता छोटे छोटे गाने गाते हैं। भारतेन्दु के लटके प्राय: राष्ट्रीय भावना और व्यंग्य से पूर्ण होते थे। जी० पी० के गीत इस प्रकार के विक्रेताओं एवं उनकी भाषा का हास्यास्पद चित्र मात्र उतारते हैं। इनमें किसी महत्त्वपूर्ण भाव की उपस्थिति नहीं होती।

(घ) उक्त सारहीन लटकों का कुछ और पतित रूप कतिपय अनर्गल गीतों का है। यह कुछ बेतुके शब्दों के एकत्रीकरण से अकारण ही गढ़ दिए गए हैं। इनका सारहीन व्यर्थ का प्रयोग हास्य का एक कारण बनता है। 'साहब बहादुर' में सामत हुसेन (पृष्ठ ४३) और हजामत बेग (पृष्ठ १४२) के गीत इसी प्रकार के हैं। नृत्य की संगत में अकारण 'ध तं त ता, ध तं त ता' का चर्खा चलता रहता है।

(ङ) सबसे अधिक संख्या जी० पी० की कृतियों में श्रृंगारी गीतों की है। गीत मानव की रागात्मक वृत्ति की सबसे प्रबल अभिव्यक्ति हैं और रति भावना उसकी जन्मजात मूल भूत वासना का दृढ़तम तन्तु। गीतों की तन्त्री कोमल होती है और श्रृंगार की साधना सौन्दर्यमयी। अस्तु गीतों की सजीवता का जितना निखार श्रृंगारी भावों को लेकर हो सकता है उतना कदाचित् अन्य

---

* 'मार मार कर हकीम' का (पृष्ठ १७-१८) टर्रे खाँ गाता है—

"क्या ही रंगीली रसीली है प्यारी शराब। पीऊँ मैं गट गट,
....' आदि

और गीत के अन्त में कहता है—

"लुत्फ–मये तुझसे क्या कहूँ जाहिद, हाय! कम्बख्त, तूने पी ही नहीं।"

किसी रस की सहायता से नहीं । इस सत्य को परख कर जी० पी० ने अधिकांश गीतों में रसराज का आश्रय लिया है । इन गीतों में 'स्मित' वाली शिष्ट मुस्कान की सामग्री नहीं, इनमें 'अतिहसित' वाले भयंकर प्रगल्भ हास्य का प्रसाधन है । यह प्राय: मादक यौवन की उच्छृंखलता से पूर्ण गीत हैं ।* नायक और नायिका के संयोग के युगल गान बहुधा स्थूल वासनात्मक भावों से पुष्ट हैं जिनमें आलिंगन, चुम्बन और सभी गोपनीय कर्मों का विस्तार है । नव-वयस्का नारी पात्रों के गीत रीति-कालीन कवियों की अभिसारिकाओं की भाँति कहीं चोली फाड़ते और कहीं हृदय में हूक और कसक दिखाते मिलते हैं । कतिपय युगल गान नारी-पुरुष के संघर्ष भी दिखाते हैं जिनपर स्पष्ट रूप से प्रगतिशील सेक्स सम्बन्धी साहित्य की छाप है ।†

(च) अन्य अनेक प्रकार के छोटे मोटे गीत किसी एक भाव को लेकर लिखे गए हैं । किसी में गायक के हृदय की अव्यवस्था और किसी में उसकी प्रकृति प्रकट होती है । इनमें वे गीत, हास्य की दृष्टि से बड़े सफल हैं, जो किसी पात्र की आकांक्षाओं की ओर संकेत करते हैं अथवा भाषा का तथा किसी प्रचलित परिपाटी का सौन्दर्य लेकर चलते हैं । 'कुरसी मैन' में झपसट का गीत (दुमदार आदमी पृष्ठ ८२) और इसी में बुद्धू का 'धोबिया' राग (पृष्ठ ९७) इस प्रकार के हैं । इसी पुस्तक में ग्रामीण शैली पर निपोड़ का गीत भी ऐसा ही है—

---

* "मोरी जुल्मी नजर करे घायल जिधर,
चले पतली कमर चित मायल करे ।
मोरी लचक ठुमक पर चटक मटक कर,
वारी उमर पर सब ललचें ॥
बूढ़े हों चाहे जवान, होते हैं सब ही हैरान
मोरी झिलदम, हाँ पायल बजे ।—" मुखिया का गीत 'मरदानी औरत' पृष्ठ १२५ ।

वासनात्मक भावों, इन गीतों की हृदय में पैठ जाने वाली लय, और स्वरों के उतार-चढ़ाव, की दृष्टि से जी० पी० के इस प्रकार के गीत आज के सिने-संगीत के बहुत निकट हैं ।

† देखिए पृष्ठ ६१-६३ । विशेष प्रसंग के लिए 'उलट फेर' पृष्ठ ७१, 'मरदानी औरत' पृष्ठ ६, १०३, ११२, 'लाल बुझक्कड़' पृष्ठ २२, 'नकदम' तथा अन्य रचनाएँ ।

"बड़ा करबे मजा, मोरा जाने गुसइयाँ, कहुं लिम्बर
जो हमका बनाय दें राम ।
हमरी धोबिनिया के लाली चुन्दरिया ओका कटउबे
आँगा सिवइबे ।............" आदि

"महरवा मारे डारत है,
भौजी बोल्यू काहे ना ?
चुड़िया तोरे डारत है,
चोलिया फारे डारत है ।".........आदि (पृ २२)

जी० पी० के गीतों में वह प्रयोग बहुत खटकते हैं जहाँ उन्होंने अंग्रेजी की कविताएँ स्वीकार कर ली हैं । अन्य भाषाओं को हिन्दी में आत्मसात कर लेने के प्रचार में उन्होंने ऐसा किया है । यह कहना कि वे कविताएं अद्वितीय हैं और उस स्थान पर उनका रखना परमावश्यक है, असंगत है । वे कविताएँ अद्वितीय अवश्य हैं पर उनके प्रयोग का अवसर अनुपयुक्त है । उनका प्रयोग-तभी क्षम्य है जब अपनी भाषा में उस भाव के गीत न बनाए जा सकें । और यदि जी० पी० ने उनका प्रयोग अपनी भाषा की एद्विषयक अक्षमता के कारण किया है तो उनकी गीत रचना की शक्ति ही क्षीण और निम्न कोटि की कही जायेगी ।

जी० पी० के एक आध गीत में भारत की संस्कृति और परम्परागत कवि-प्रथा का बड़ा संकेतात्मक दर्शन होता है । पनघट के गीत हमारी संस्कृति और हमारे संस्कारों के प्रतीक तथा कवियों के प्रिय वर्ण्य विषय ही नहीं वरन् भारतीय जीवन के प्रतिनिधि भी हैं । 'लाल बुझक्कड़' में पनघट पर सुशीला का गाना हमारे नेत्रों के सामने एक सच्चा गोचर वातावरण चित्रित कर देने के साथ ही भारतीय परिवार और जीवन का दृश्य भी अंकित कर देता है । हिन्दू परिवार की स्त्रियों का पानी भरना और पनघट पर गीत गाना हमारी युग युग की प्रथाओं का स्मरण दिलाता है । यद्यपि काव्यात्मकता, भावात्मकता अथवा भाषा प्रवाह की दृष्टि से यह गीत बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता पर इसका अवसरोचित प्रयोग अनुपम है ।

शैली

जी० पी० की सामान्य शैली के कुछ गुण ऐसे हैं जो स्पष्टतः लक्षित करते हैं कि उनका प्रयोग आपका प्रिय विषय है। इनमें से भाषा सम्बन्धी अनेक गुण दोषों का हम उसके प्रसंग में विवेचन कर चुके हैं। यहाँ कुछ अन्य मुख्य विशेषताओं पर ध्यान देना उचित होगा।

भावुकता

मानव हृदय की गहनतम अनुभूतियों की जिस प्रकार की अभिव्यक्ति प्रगीत मुक्तकों में होती है उसी प्रकार किसी एक विशेष भाव को गीतात्मक भाषा में प्रकट करने की जी० पी० की प्रिय शैली है। अधिकतर कामुक प्रेमी पात्रों के भाव इस प्रकार के दिखाए गए हैं। वे कहीं प्रेमिका का पत्र चूमते हैं और कहीं आवेश पूर्ण प्रलाप करते हैं (देखिए साहब बहादुर, पृष्ठ १२०)। ऐसे वर्णनों में जी० पी० की रुचि खूब रमी है। 'लाल बुझक्कड़' में वसन्त लाल अपने स्वगत भाषण में कहता है—

"मैं लाग डाँट में पड़कर, मूर्खता के आवेश में, अपने हृदय की अधीरता से, भावों की बेकली से, निराशा की ठोकरों से ऐसी नादानी कर बैठा। अपनी भक्ति को संभाल न सका। देवि को न पाकर पत्थर की मूर्त्ति के आगे सिर झुका दिया।......" (पृष्ठ १०६)

इस प्रकार के वर्णन प्रायः किसी आनन्दानुभव की अभिव्यक्ति में आए हैं। 'साहब बहादुर' में यूसुफ़ (पृष्ठ ३ पर) और नवाब (पृष्ठ १०४ पर) के भाषण तथा 'चुम्बन' और 'विलायती उल्लू' में 'दुमकटी हथनी' के आरम्भ बिलकुल एक प्रकार की शैली के प्रतिनिधि हैं—

"......किस्मत से आज सुबह को उनकी झलक देखना नसीब भी हुई। मानों बरसों के प्यासे को पानी मिला। मुर्दे में जान आई। बदन में बिजली दौड़ गई। दिल फड़क उठा।......" (साहब बहादुर पृष्ठ १०४)

"......उसकी कीमत अगर कुछ है तो बस उस हाथ में होने की वजह से जिसे पत्थर छूवे तो पारस हो जाय। मुर्दा चूमे तो जिन्दा हो जाय।" (साहब बहादुर पृ० १०४)

'......पापी को मुक्ति हुई। अधर्मी ने स्वर्ग पाया। नास्तिक को ईश्वर मिला। कंगाल ने खजाना लूटा। ......मगर खबरदार मेरे ओठों को उंगली

न दिखाना। लोहे ने 'पारस' छू लिया। मुर्दे ने अमृत पी लिया। यह ओंठ भी अब वह ओंठ नहीं रहे। इन पर अब मैंने सारे जहान को न्योछावर कर दिया।" (नोक झोंक पृष्ठ ७८)

"......ओ ! हो ! हो ! मरी हुई जान में जान आई। नाउम्मेदी में मस्ती का जोश चढ़ा। बासी कढ़ी में उबाल आया.............." (विलायती उल्लू पृष्ठ, १११)

कहीं कहीं पर परिस्थिति की गम्भीर करुणा (Pathos) को बड़ी सजीवता से दिखाया गया है। इनके अन्दर छिपी एक छटपटाती वेदना प्राय: अन्तिम वाक्यों में अपने शिखर पर पहुंच गई है। यह वर्णन हमारे हृदय पर स्थाई छाप डाल देते हैं। 'प्राणनाथ' में उमा का गृहत्याग और 'लम्बी दाढ़ी' में बीते बचपन के लौट आने की अभिलाषा इसके उत्तम उदाहरण हैं—

"इसके एक घण्टे पीछे उमा अपने गहने और कपड़े सँभाल कर रखने लगी। उसने अपने शरीर के सब गहने उतार दिए। किनारदार साड़ी बदल-कर बेकिनारी धोती पहन ली। अपने पति की तस्वीर बक्स से निकालकर लैम्प के सामने गई। सूरत देखते ही बिलख-बिलख कर रोने लगी। पागल की तरह उसे चूमा, छाती से लगाया, फिर उसे उसी सन्दूकी में बन्द कर दिया। लैम्प बुझा दिया। इसके बाद धीरे-धीरे अंगूठों पर चल कर बाहर के दरवाजे पर पहुंची। धीरे से द्वार खोल कर उसने एक पैर बाहर रक्खा, पर कुछ सोच कर वहीं ठिठक गई। हाय ! एक बड़े जमींदार की बीस वर्ष की जवान सुकुमारी और अति सुन्दरी स्त्री ने सिर्फ एक धोती पहने हुए इस जाड़े की आधी रात में घर त्याग दिया" (प्राणनाथ पृष्ठ ८८)

"......हाय ! वह बचपन था कि एक सपना ? मगर किस नींद का सपना था ? नशा था तो किस शराब का नशा था ? इतनी जल्दी आँख उचट गई, इतनी जल्दी नशा उतर गया। अरे ! क्या वह नींद अब फिर नहीं आ सकती ? क्या उस शारब का अब एक घूंट और नहीं मिल सकता ?

'अरे दो दिन के लिए जवानी दे दे उधार बचपन।' " (लम्बी दाढ़ी पृष्ठ ७)

चित्रांकन

किसी व्यक्ति अथवा वातावरण का परिचय देते समय जी० पी० के छोटे छोटे चित्रांकन बड़े मार्मिक बन पड़े हैं। परिचयात्मक ऐसे ही चित्रणों को अंग्रेजी में

'थम्बनेल स्केचेज' (Thumbnail sketches) कहा गया है। जी० पी० के इस प्रकार के कुछ चित्र गम्भीर ओर वास्तविक हैं और कुछ उपहासात्मक। 'प्राणनाथ' में (पृष्ठ १६१-६२ पर) धनंजय का चित्र एक घृणा और निर्वेद की भावना साथ-साथ जगाता है—

"......मुर्दे की तरह पीली और डरावनी सूरत, आँखें धँसी हुई, बड़े-बड़े बाल लापरवाही से पेशानी पर लटक रहे थे। मौत की परछाई उसकी शक्ल में दिखाई पड़ती थी। इस आदमी की कठोरता और उमा का ख्याल आते ही इसकी तरफ से दिल हटा, लेकिन दया और खातिरदारी करने की पैदाइशी आदत ने जगत किशोर को कड़ी बात कहने से रोका।"

इसी प्रकार 'लतखोरी लाल' में (पृष्ठ १६६ पर) एक सम्पूर्ण दृश्य हमारी आँखों के सामने नाच उठता है—

"दरवाजा खुला। एक नौजवान और खूबसूरत छैला वार्निश का पम्प, रेशमी किनारे की लम्बी धोती, काशी सिल्क का बंगाली कुर्त्ता पहने, गले में चादर डाले, बीच में ऐंठनदार माँग काढ़े, मुँह में गिलौरियाँ दबाए भीतर आया। कमरा ओटो दिल बहार की खुश्बू से महक उठा।......"

'विलायती उल्लू' में (पृष्ठ ७) कुर्सी में धँसी फ्रेण्डली की माँ का पूसी को दूध पिलाता चित्र और 'भड़ाम सिंह शर्मा' के (पृष्ठ ८७) उपदेशक जी का नंगी खोपड़ी, फटी आँखें, खुला मुँह और हाथ में व्याख्यान थामे, चकित, किम्कर्त्तव्य विमूढ़ चित्र भी इसी प्रकार के हैं। किसी विशेष परिस्थिति की झाँकी खड़ी कर देने वाले ये चित्र कैमरे से उतारे 'स्नेप' (Snap) की समता करते हैं। 'भय्या अकिल बहादुर' के 'बम्बई में' का आरम्भ एक क्षण में घटित अनेक बातों का दृश्य देता है। आधुनिक साहित्य में इस प्रकार किसी परिस्थिति का यथार्थ रूप प्रकट करने की रुचि अनेक रचनाओं में दीखती है। कहानियों में विशेषकर ऐसे अंकन मिलते हैं। कौशिक की 'ताई' का प्रारम्भ भी एक वातावरण का खण्ड चित्र सजीव करता है। इन चित्रों का गोचर प्रत्यक्षीकरण करने के लिए एक प्रसंग की बात के बीच-बीच अप्रासंगिक वस्तुओं का रूप भी जी० पी० दे देते हैं। 'भूलचूक' में एक आवेश पूर्ण स्थिति में पार्वती को दिखाने के लिए (बौछार पृष्ठ १६३) वह पत्र पढ़ने के बीच-बीच में अपने भावों के टुकड़े कसती जाती है। इसी प्रकार 'लतखोरी लाल' में हाथी के महावत की वार्त्ता यथास्थान 'मलमल चैं' आदि ध्वनियों से एक पूरा वास्तविक चित्र उतार देती है—

"......दुई-चार जने होयँ तो कोनो हरवाहे के बखरी खाली कराय दीन जाए, मुल सैकड़न मनई के लिए बस बगिए सहारा जानो। मल ! मल ! ठोकर ! हाँ गउवाँ में आज एक अउर बरात आई है।......" (पृष्ठ १९९)

जी० पी० के इस प्रकार के चित्रों में दम्पति के रस-केलि और सम्भोग से पूर्ण विनोद आदि के अंकनों की बहुलता है। ऐसे चित्र उतारने में जी० पी० बड़े कुशल और तत्पर दीखते हैं। पति-पत्नी की रोचक वार्त्ताओं का उत्तम चित्र 'अच्छा' में रसिक और मोहनी के प्रेमालापों में दिखाया गया है—

"मोहनी—लो पान।

रसिक०—तुम्हीं खिला दो।

मोहनी—नहीं तुम मेरी उँगली काट लोगे।

रसिक०—तो बदले में तुम मेरी जबान काट लेना।

मोहनी—[पान खिलाती है] उफ़ ! आखिर काट लिया न।" (नोक झोंक, पृष्ठ ४७)

व्यक्तिगत उपहासात्मक चित्रों की जी० पी० की शैली में आज के निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर व्यंग्यचित्रों की रूप-रेखा मिलती है। व्यंग्य-चित्रों के साहित्य का विकास छोटे छोटे वास्तविक चित्रों में व्यंग्य के पुट के योग से ही होता है। 'भड़ाम सिंह शर्मा' के दूसरे परिच्छेद के उपदेशक जी का परिचय व्यंग्य प्रधान है—

"इस वक्त खोपड़ी पर चक्करदार पगड़ी थी, जिसका Diameter **दो फीट से कुछ ज्यादा ही था। शुरू-शुरू में कपड़े का रंग जरूर सफेद रहा होगा। मगर इस वक्त का रंग था कोई न कोई जरूर—बताना मुश्किल था। इसके नीचे चपटा सा गोल काला चेहरा अपनी चिमधीं आंखों से घोंसले में बैठी हुई बुलबुल की तरह दबका हुआ झांक रहा था। सूरत गो बहुत मुनहनी और छोटी थी तो इस पर शीतला देवी ने भूगोल के नदी-नाले, पहाड़ वगैरह के नक्शे बहुत ही इतमीनान के साथ बनाये थे। नाक तो योंही कुदरती बैठी थी, मगर चेचक की काँट छाँट में इसकी नोक भी बहुत कुछ गायब हो गई थी, वह भी लिल्लाही बेग की टूटी-फूटी कब्र की तरह। बदन पर खुले गले का काले रंग का चुस्त कोट पीछे कमर तक और आगे ठोढ़ी के ऊपर तक।"** (पृष्ठ १२)

जीवन दर्शन

जगत् और जीवन के 'सत्य' रूप की व्याख्या के अभाव में कोई साहित्य पूर्ण नहीं कहा जा सकता। पर हास्य रचनाओं में जीवन के सत्य और उसके दर्शन का उद्घाटन सरल नहीं है। जी० पी० ने अपनी कृतियों में साहित्य के इस आवश्यक अंग की उपेक्षा नहीं की है। जीवन के अविसंवादी सत्य के प्रगाढ़ अनुभव की द्योतक जो शैली प्रेमचन्द की है वही हास्य के क्षेत्र में जी० पी० की। उपयुक्त अवसर आने पर बीच-बीच में जिस प्रकार प्रेमचन्द **'मिथ्या दूरदर्शी नहीं होती।'** और **'द्वेष तर्क और प्रमाण नहीं सुनता।'** ऐसे वाक्यों में मूल सत्य का उद्घाटन कर देते थे उसी प्रकार जी० पी० अनुभव और वास्तविक जगत की बात कह जाते हैं। इसके कुछ उदाहरण दृष्टव्य होंगे—

"आबरू अपने हाथ बनती है। जब आप ही हम अपनी आबरू मिट्टी में मिलावें और चाहें कि दूसरा हमारा अदब करे तो यह भला कहाँ हो सकता है?" (लम्बी दाढ़ी, पृष्ठ ६३)

"औरत सब सह सकती है, मगर डाह नहीं सह सकती।" (मरदानी औरत, पृष्ठ १३७)

"जब हृदय में प्रबल आशा उभर उठती है, तो मनुष्य बड़ी मुस्तैदी से सब संकट झेल लेता है।" (लतखोरी लाल, पृष्ठ ११०)

"मगर तकदीर की दाँव-पेंच ही ऐसी होती है कि दिन बिगड़ते हैं तो अपने भी बेगाने हो जाते हैं।" (लतखोरी लाल, पृष्ठ १२८)

"सब सहा जा सकता है मगर भई पेट की ज्वाला नहीं।" (लतखोरी लाल, पृष्ठ १५८)

"क्योंकि हर चीज़ अपने-अपने वक्त पर अपनी ख़ूबी दिखाती है। इसी तरह प्रेम भी दिन के कोलाहल में अगर अफ़ीमचियों की तरह बुद्धू बना ऊँघा करता तो आधी रात के सन्नाटे में चोरों से भी बढ़कर आँखें फाड़कर जागता है।" (भय्या अकिल बहादुर, पृष्ठ ६४)

"विद्या केवल विद्वान बनाना जानती है परन्तु उसे सफलता पूर्वक प्रयोग करने का ढंग बुद्धि बताती है।" (भय्या अकिल बहादुर, पृष्ठ १५२)

अनेक रचनाओं में उनका निष्कर्ष और आदर्श जी० पी० प्रकट करते हैं। एक संतुलित विद्यार्थी जीवन का मार्ग उन्होंने इसी प्रकार **'कालेज मैच'** के अन्त में दिखाया है—

"अब मेरी आँखें खुलीं और जाना कि न तो रामदास की तरह भोंदू होना ठीक है, न मेरी तरह जेन्टिलमैन। वहीं तक पैर पसारे, जहाँ तक चादर हो।" (लम्बी दाढ़ी, पृष्ठ ७५)

इस प्रकार जीवन के विश्लेषण में जी० पी० ने विडम्बना का बहुत सहारा लिया है। इसका आपके साहित्य में अपना स्थान है।

विडम्बना

जीवन की विडम्बना प्राय: वाक्यों के चमत्कार से प्रकट हुई है। जी० पी० के अनेक वाक्य अपने भीतर एक प्रकार का कटु सत्य छिपाए रहते हैं। यह वाक्य सम्पूर्ण मानव जाति के प्रति एक उपहास भरा ताना (Irony) है। साहित्यकार उस मूल सत्य की ओर संकेत करता है जिसपर मिथ्या का आवरण चढ़ाकर आज सम्पूर्ण मानव सृष्टि अविश्वास का दावा रखती है। 'अच्छा' में स्वयं एक ग्रेजुएट का पिता कामना करता है कि किसी का पुत्र ग्रेजुएट न हो जबकि संसार की धारणा ठीक उल्टी है (देखिए नोंक झोंक पृष्ठ, ६३)। 'लतखोरी लाल' में इस प्रकार के अनेक वाक्य हैं। इनमें से निम्नलिखित का उद्धरण रोचक होगा क्योंकि इसी भाव के समानान्तर अपभ्रंश का एक दोहा विख्यात है—*

"....ऐ पढ़नेवालों, अगर तुममें से किसी को मेरी सी नौबत पहुंच जाय, तो कभी-भूलकर अपनी औरत की शादी रोकने की कोशिश मत करना। क्योंकि वह तो भई दोनों तरह से तुम्हारे हाथ से गई।" (पृष्ठ २७)

मानव के वैज्ञानिक अन्वेषणों ने और समृद्धि की लालसा ने आज उसे कितना भौतिकवादी बना दिया है इसके प्रमाण वे व्यापार के केन्द्र नगर हैं जहाँ मनुष्य को वैभव के अन्धकार में न विधाता का ध्यान रहता है और न प्रकृति

* यदि एक स्त्री का हृदय किसी पुरुष को अस्वीकार कर देता है तो पशुबल अथवा अन्य किसी भी प्रकार के वाह्य आडम्बर और छल-छंद से उसकी श्रद्धा और स्नेह वह पुरुष नहीं पा सकता। अपभ्रंश के एक प्रसिद्ध दोहे में किसी स्त्री के स्वपुरुष के वियोग में जीवित रहने मात्र से उसकी आस्था पर सन्देह किया गया है: और इस प्रकार उसका पुनर्मिलन, हृदय की सच्ची आसक्ति के अभाव में व्यर्थ कहा गया है—

"जइ ससणेही तो मुइअ अह जीवइ निन्नेह।
बिहिंवि पियारेंहि गइअ धण किं गज्जहि खल मेह॥"

के साहचर्य में एक क्षण विराम करने का अवसर। 'भय्या अकिल बहादुर' में बरसाती नन्दन के केवल एक वाक्य ने समस्त भौतिकता का विराट दानवी रूप प्रकट कर दिया है—

"कलकत्ते में मिट्टी कहाँ ? सोना चाहो तो पसेरियों ले लो।" (पृ० २३)
संसार जिसे प्रगति बताता रहा है उसमें क्या सुख, शांति और संतोष की आशा है ? यही तो जीवन की विडम्बना है।

जीवन की विडम्बना का अद्भुत रूप 'लाल बुझक्कड़' में सुशीला के एक वाक्य में प्रकट हुआ है—

"यदि भिखारिणी में यह शक्ति होती तो सबसे पहले इसे नन्द लाल जी के चरणों पर न्योछावर करती।" (पृष्ठ, १३१)
वह नन्द लाल के हाथों में अपना प्रणय-समर्पण करने की बात कहती है। उसे नहीं ज्ञात कि वह उसका भाई है। हमारे संयम और नियम शरीर से नहीं समाज और संस्कार से बनते हैं। अन्यथा भाई-बहिन भी पशु हैं, तथा **वासना कभी नियम और संतोष नहीं मान सकती। पैतृक सम्बन्धों की अनभिज्ञता में सुशीला जीवन के एक कटु सत्य का रहस्य खोलती है। यही तो जीवन की विडम्बना है।**

अल्प युक्ति

हम हास्य के प्रकार के अन्तर्गत अत्युक्ति के ठीक विपरीत किसी घटना को वांछित महत्त्व न देकर उसका सामान्य स्तर पर वर्णन करने से हास्योद्रेक की चर्चा कर चुके हैं (देखिए Meiosis, पृष्ठ ४१-४२ पर)। हास्य की इस प्रणाली को प्राय: भारतीय साहित्य में कम अपनाया गया है। यहाँ अधिकतर जिस प्रकार किसी उदात्त नायक का पतन नहीं दिखाया जाता उसी प्रकार किसी घटना का भी (देखिए 'साहित्य में हास्यरस' पृष्ठ ६० की पाद टिप्पणी)। जी० पी० ने भी लगभग सभी जगह घटनाओं का अत्युक्ति पूर्ण चित्रण किया है। एक आध स्थान पर ही अल्पयुक्ति का प्रयत्न हुआ है, यथा 'मरदानी औरत' में बण्टाधार पृथ्वी पर चित्त गिरने पर भी कहता है—

"नहीं गिरे कब थे भला हम ? वह तो हमने आपको शष्टांग प्रणाम किया था। अभी अभ्याश नहीं है। इस कारण मुँह तनिक उल्टा हो गया था ! बश !" (पृ० ३५)

समाज

समसामयिक परिस्थितियों को हास्य के माध्यम से न केवल जी० पी० ने प्रतिबिम्बित किया है, वरन् उन्होंने ज्वलन्त सामाजिक समस्याओं को पहचानकर उनके समाधान का भी प्रयत्न किया है। कुरीतियाँ और दोष ही हास्य के उपकरण होते हैं। और जब तक वैयक्तिक परिधि से बाहर निकल कर दोषों को सामाजिक, सामूहिक धरातल से नहीं देखा जाता तब तक साहित्य संकुचित और सीमित रहता है। व्यंग्य का लक्ष्य बनाने के लिए, जी० पी० अनेक सामाजिक रीति-रिवाजों और रूढ़ियों को लेकर, उनका समसामयिक चित्र उतार कर, एक सुधार की आवश्यकता की ओर संकेत कर देते हैं। हास्य को केवल बुराइयों का विषय मानने के कारण, जी० पी० का साहित्य समाज के कुत्सित व्यवहारों का कोष है। पर साथ ही हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि यह दोष इस युग के यथार्थ चित्रण हैं। वास्तविक जगत् में जी० पी० के युग का अनर्थकारी रूप एक सत्य है। हमारे बीच कुप्रथाओं ने इतना घर कर लिया है कि हम उनके उद्घाटन में हास्य का आनन्द लेते हैं। यदि गम्भीरता से सोचा जाय तो वास्तव में यह दृश्य हमारी लज्जाहीन कुवृत्तियों का जघन्य लेखा उपस्थित करता है। समाज को यह क्षोभ और क्रान्ति का आह्वान देता है। जी० पी० ने कदाचित समाज की किसी भी बुराई को अछूता नहीं छोड़ा और यदि साहित्य में 'समाजवादी साहित्य' के नाम की कोई वस्तु स्वीकार की जाती है तो जी० पी० का साहित्य पूर्णतः समाजवादी है।* इस दृष्टि से वह बहुत महत्त्वपूर्ण

---

* हिन्दी साहित्य में समाजवाद प्रगतिशील साहित्य का एक अंग माना जाता है। इतर साहित्य में इन समाजवादी साहित्यकारों का जो स्थान होता है वही हास्य में समाज की एकता को नष्ट करने वाली कुरीतियों का उपहास करने वाले व्यंग्य-प्रेमियों का। अंग्रेजी का अधिकांश 'Satire' ऐसे ही समाज में प्रचलित घृणित व्यापारों के प्रति आक्षेपों से पूर्ण रहता था। फलतः यह आलोचना आँग्ल 'Satire' का अनिवार्य गुण मान ली गई थी। इसी कारण अनेक हास्य के पाश्चात्य अध्ययनों में 'Satire' के लेखकों को आदर्शवादी (Moralist) माना गया है। इन लेखकों के मस्तिष्क में समाज में एक आदर्श और मान्य आचरण की कल्पना कही जाती थी। इस प्रकार के कवियों

है । वास्तविकता यह है कि समाज के इसी दोषांकन के कारण आज जी० पी० को हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। उनकी कृतियों में किन्हीं साहित्यिक गुणों का अभाव प्राचुर्य हो सकता है, पर संस्कृति और समाज के एक अन्धकार पूर्ण पक्ष और उनकी कुप्रथाओं का चित्रण जो समाज की सुरक्षा की जड़ में घुन की भाँति लगा हुआ है, अवश्य उपस्थित किया गया है । इनके प्रति विद्रोह के द्वारा इनका सुधार-परिष्कार मानवता का कर्त्तव्य है, धर्म है । कुछ तत्कालीन कुप्रथाओं से जी० पी० बहुत क्षुब्ध जान पड़ते हैं । इनका उल्लेख यहाँ अभीष्ट होगा ।

विवाह सम्बन्धी विचार

विवाह से पूर्व भावी वर-वधू, हिन्दू परिवारों में, एक दूसरे को जानते तक नहीं थे । नाऊ और बारी आदि वर अथवा वधू की खोज में भेजे जाते थे । यह धन के लोभ से युवक और बालाओं के झूठे-सच्चे गुण बतलाकर किनारा काट जाते थे और दम्पति का भावी जीवन क्लेशमय बन जाता था । इस प्रकार की प्रथा का जी० पी० ने अनेक स्थानों पर विरोध किया है और पाश्चात्य सभ्यता के अनुरूप पुर्वानुराग (Courtship) का पोषण । परन्तु जी० पी० सदा पाश्चात्य और भारतीय संस्कृति के सामंजस्य से एक मध्यम-मार्गी समाज का सपना देखते हैं । न पुरानी लकीरों का पीटना ठीक है और न विदेशी फैशन में मदान्ध होना । 'सड़कों पर प्रेम' करने वाले प्रगल्भ विदेशी युगलों का उपहास किया गया है । विवाह से पूर्व वर और कन्या का परिचय एवं मिलन बिना स्थूल ऐन्द्रिय सम्बन्ध के वांछनीय है । साथ ही गुरुजनों और स्वजनों से परामर्श भी आवश्यक कहा गया है, क्योंकि युवकों का प्रेम बहुधा नेत्रहीन हो जाता है; वे 'ऐब' देख ही नहीं पाते हैं। इसी प्रकार उबटन आदि के निरन्तर छः सात दिन प्रयोग और ठीक से नहाने तक न देने की प्रथा का विरोध किया गया है । दहेज के अभिशाप से अनेक दुष्परिणाम समाज भुगत चुका है । इसकी ओर भी जी० पी० ने संकेत किया है । बारात में अनगिनत व्यक्तियों को ले जाना और उनकी किसी सुविधा का प्रबन्ध न कर पाना दूसरी समस्या है । जी० पी० के मत से आज के युग में कम से कम बाराती भी कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न कर सकते हैं क्योंकि प्राचीन युग की भाँति न

की परम्परा आँग्ल-साहित्य में पर्याप्त पुरानी है। सोलहवीं शताब्दी के 'Thomas Nashe' (१५६७-१६०१ ई०) अपने युग के समाज की धूर्त्तताओं का चित्र (Sketch) उतारने में विख्यात थे ।

अब बारातें पैदल अथवा बैलगाड़ी से यात्राएँ करती हैं और न डाके आदि का उतना भय रहता है। इन लम्बी चौड़ी बारातों में समय का दुरुपयोग करने के लिए स्वभावत: परिवार के ठलुए निकम्मे और झंझटी सदस्यों को भेज दिया जाता है। इनके कारण एक न एक उपद्रव होता ही रहता है। ऐसे अवसरों पर स्त्रियों द्वारा अशिष्ट गालियों के गाए जाने का विरोध किया गया है। विदाई आदि के समय रोना-धोना व्यर्थ बताया गया है। स्त्रियों के गाहे-बगाहे रोते रहने के कारण जब वे कभी विपत्ति में रोती हैं, तब भी कोई ध्यान नहीं देता। वर और वधू के गुणों की जी० पी० की अपनी धारणा है। अनेक रचनाओं में वृद्धों के तरुण किशोरियों से अनमेल विवाहों के दुष्परिणाम दिखाये गये हैं। परिवारों का आर्थिक स्तर और वर-वधू की आयु में समता आवश्यक है। धन सम्पत्ति का एक वर के लिए उतना महत्त्व नहीं जितना उसकी **"सूरत, शकल, इल्म, हुनर, दिल और नौजवानी"** का है।*

सबसे अधिक बल देकर जी० पी० ने विधवा विवाह का प्रचार किया है। 'प्राणनाथ' में 'ढाढ़स' के अन्तर्गत शरत् की माँ और ब्रह्मचारी जी की वार्ता में विधवा-विवाह को शास्त्रोचित और वेदसम्मत कहा गया है। जी० पी० निजी पारिवारिक क्षेत्र में इस विधवा-विवाह का अनुमोदन अपनी बहिन के पुनर्विवाह के द्वारा कर चुके थे। बिधवाओं के महादु:खपूर्ण दयनीय जीवन का अंकन करके विवाह द्वारा उसका परिहार 'प्राणनाथ' तथा 'भूलचूक' आदि रचनाओं ने दिखाया गया है।

नारी की सत्ता : वेश्यावृत्ति

इससे सम्बन्धित हम 'जी० पी० की नारी भावना' के प्रसंग में पर्याप्त विवेचना कर चुके हैं। यहाँ इतना ही कहना उचित होगा कि जी० पी० ने अपने साहित्य में नारी की सत्ता के प्रति पुरुष के भावों का बहुत विश्लेषण किया है। पुरुष उन्हें पर्दे में रखना चाहते हैं। परन्तु जी०पी० वाह्य पर्दा-प्रथा को निरर्थक समझते हैं। नारी का आंतरिक सतीत्व ही वास्तविक लज्जा का आगार होता है। उन्होंने अनेक स्थलों पर कहा है कि यदि स्त्री का हृदय पवित्र है तो वाह्य आवरणकी कोई आवश्यकता नहीं। हमें नारी के उस आत्मप्रेरित आचरण पर विश्वास रखना चाहिए जो वाह्य अवगुण्ठनों से कहीं दृढ़तर प्राचीर बनाता है। पर्दा प्रथा के कारण नारी और पुरुष के पृथक समुदायों ने हमको एक दूसरे से शिष्टतापूर्वक बात चीत और व्यवहार करने के ढंग से पूर्णत: अनभिज्ञ रक्खा

* देखिए 'मार मार कर हकीम' पृष्ठ २८।

है। नारी के दुष्चरित्र का वास्तविक कारण उसके प्रति पुरुष का भाव है। पुरुष ने नारी को केवल भोग की वस्तु समझ लिया है। वह उसके स्थूल शरीर पर अपना एकाधिकार चाहता है। नारी की समाज में स्वतंत्र कोई सत्ता नहीं। यदि कोई स्त्री स्वतंत्र जीवन-यापन करना चाहती है तो समाज में वेश्यावृत्ति के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं। **'वे केवल जुल्म सहना जानती हैं, रोकना नहीं।'** पुरुष का स्वभाव इतना पाशविक है कि औरतों के दूकान पर बैठने से पानों का विक्रय अधिक होता है। वह वासना के सन्मुख इस प्रकार आत्म-विस्मृत हो चुका है कि 'गड़बड़ झाला' में वृद्ध मनहूस बुद्धू को अपनी पीठ पर सवारी कराता है।* नारी छल कपट से 'हँस हँस कर फँसाई जाती है।' 'प्रेम के नाम पर धोखेबाजी' का व्यवहार होता है।

जी० पी० नारी के भारतीय सतीत्व और संयत आचरण का बड़ा आदर करते हैं। पाश्चात्य फैशन में भ्रमित युवतियों का पतित चाल-चलन दिखाया गया है। 'नकदम' में मैडम लीला इसका उदाहरण है। जी० पी० ने किसी उत्सव अथवा सज्जा के आयोजन का आमूल निषेध नहीं किया है वरन् इनके समुचित प्रयोग का मार्ग दिखाया है। मेलों और तीर्थों में व्यभिचार का साम्राज्य रहता है इसका यह अर्थ नहीं कि वे सारहीन हैं। देशाटन और जलवायु के परिवर्तन के वे अद्वितीय साधन हैं। परन्तु उनकी ओट में फैला भ्रष्टाचार अवश्य निन्दनीय है। मेलों में तरुणियों पर धक्का-मुक्की और तीर्थों में पण्डों का पाशविक बलात्कार रोकना ठीक होगा पर मेलों और तीर्थों का नाश नहीं। जी० पी० ने आश्चर्य प्रकट किया है कि हिन्दू इस भ्रष्टाचार के प्रति चूं तक नहीं करते। इसी प्रकार गहने गाढ़े समय पर काम आते हैं परन्तु उनका थान का थान हर समय पहिनना ठीक नहीं।

समाज में कतिपय धनी राजा-महराजा और नवाब आदि वेश्याओं को प्रश्रय देते हैं। इनके कारण समस्त समाज का वातावरण दूषित हो जाता है। वेश्यावृत्ति पर जी० पी० ने अनेक स्थलों पर व्यंग्य किया है पर कहीं-कहीं उसका समर्थन करते भी जान पड़ते हैं। 'लतखोरी लाल' में इनकी अटारियों को बोलचाल का शिक्षालय कहा गया है और इसी प्रकार 'भय्या अकिल बहादुर' में एक तर्क-वितर्क में वे कहते हैं—

"......आखिर ये लोग जायेंगी कहाँ? समाज में इनका भी तो रहना जरूरी है। जिस मकान में नाली न हो वह कितने दिन खड़ा रह सकता है?

* देखिए 'दुमदार आदमी' पृष्ठ ५५।

सारा मकान गन्दा होकर बैठ जायेगा।" (पृष्ठ ११२)*
साथ ही वेश्यावृत्ति का बड़ा ही वीभत्स दुष्परिणाम भी जी० पी० ने दिखाया है। कई जगह बाप और बेटे एक ही स्त्री से प्रेम करते दिखाए गए हैं। वेश्याएँ उनका हर प्रकार से अपमान करती हैं : उनकी तो अर्थ लोलुपतापूर्ण क्षणिक प्रीति है।

वेश्यावृत्ति और नारी के स्वतंत्र जीवन की सत्ता आदि का जो चित्र जी० पी० ने प्रस्तुत किया था वह अब पर्याप्त सुधार पा चुका है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में इस प्रकार का वातावरण समाज का सच्चा रूप था। परन्तु आज नारी अपने अधिकारों को पहिचान सकी है और पुरुष के एकाधिकार का उलंघन कर चुकी है। अब अनेक स्त्रियाँ स्वतंत्र जीवन यापन करने लगी हैं और वारविलासिनियों के भी वह ठाठ नहीं रहे जो सामन्त-शाही और अंग्रेजी शासन में थे। इस नारी के क्रान्तिकारी बढ़ते अधिकार ने ही प्रगतिवादी काव्य में सेक्स के द्वन्द्व को सम्बल दिया है।† आज का समाज विवश नारी के प्रति बलात्कार के विरुद्ध अनेक निषेधात्मक उपायों और नियमों का नियंत्रण स्वीकार करने को उत्सुक है।

धर्माडम्बर

धूर्त धर्माचार्य और अनेक धर्माडम्बर जी० पी० के उपहास के विषय हैं। जी० पी० ने हिन्दू, मुसलमान और अंग्रेज तीनों ही के ढोंगी कार्य-कलाप की खिल्ली उड़ाई है। 'कुर्सी मैन' में धोती प्रसाद भंगी के बदले उसकी झाड़ू से छू जाने में गनीमत समझते हैं। छुआछूत के आडम्बर पर जी० पी० ने कई रचनाओं में व्यंग्य किया है। इसी रचना में 'मंगलामुखी' हिन्दू वेश्याओं से सम्भोग में पंडित भी धर्म पर आँच नहीं मानते। 'लतखोरी लाल' में ताड़वाली गणिका के यहाँ छेदी मियाँ हिन्दुओं को छत से पान डोरे से लटका कर देते हैं। 'भड़ाम सिंह शर्मा' में पानी वाले महराज के प्रसंग में भी इस समस्या को उठाया गया है परन्तु उसका पर्यवसान हास्यास्पद अन्त में ही होता है। जाति प्रथा और उसके प्रतिबन्धों पर भी संकेत किया गया है। 'प्राणनाथ' में कायस्थ अपने हाथ से हल नहीं चलाते और निर्धनता का स्वागत करते जाते हैं। 'लम्बी दाढ़ी' में मौलवी साहब कुत्ते से लिपट-चिपट कर भी केवल 'वजू' से 'पाक'

* यहाँ जी० पी० समाज की मूल भूत समस्या की ओर संकेत करते हैं।

† देखिए पूर्व चर्चा पृष्ठ, ६१-६३।

हो गए। अंग्रेज एक ही रूमाल से मुँह और जूता दोनों पोंछते हैं। पर, उनके धर्म में उदारता तथा अन्य धर्मावलम्बियों को अपने अन्तर्गत आत्मसात् करने की अद्वितीय क्षमता है। अनेक अछूत हिन्दू जातिप्रथा और साम्प्रदायिकता की यातना से बचने के हेतु ईसाई धर्म ग्रहण करते हैं। यज्ञोपवीत आदि का धारण करना लकीर के फकीर होना है। हमें अपने प्राचीन संस्कारों को भूलना न चाहिए परन्तु साथ ही उनका समय के अनुरूप विकास करते रहना चाहिए, न कि अन्धानुकरण। शिवालयों आदि की जी० पी० ने आवश्यकता स्वीकार की है, क्योंकि यह यात्रियों के विराम हेतु स्थान और एक घड़ी हरि-भजन का अवसर देते हैं। धर्माडम्बर के प्रचारक उपदेशकों और जाति बिरादरी के कर्णधारों की जी० पी० ने अच्छी खबर ली है। बिरादरी के अगुआ बनने वाले स्वार्थी किस प्रकार भली बहू-बेटियों पर कलंक लगाते हैं इसका उदाहरण 'गड़बड़ झाला' का मनहूस प्रस्तुत करता है। अपनी स्वार्थी वासना से प्रेरित मैडम लीला पर आसक्ति को गोबर चन्द धर्म का कार्य बताता है।* मठों के साधू सन्त और महन्तों का जीवन विलासी और क्रूर है। 'प्राणनाथ' में मठ का रहस्य पन्डे और पुजारियों के नारकीय जीवन का लेखा देता है। धर्म के उपदेशक बन कर स्वार्थी लोग अन्य धर्मों का खण्डन करते हैं न कि अपने धर्म का मण्डन। अपने स्वार्थ के लिए वे धर्म के सभी नियमों को तोड़-मरोड़ लेते हैं। जी० पी० की धारणा में उपदेशक का सच्चा कार्य 'भड़ाम सिंह शर्मा,' के मजिस्ट्रेट ने बताया है—

"………उपदेशकों का सच पूछो तो काम यह है कि लोगों के दिलों में ईश्वर की भक्ति पैदा करें। मरते हुए को बचाएँ। गिरते हुए को सम्हालें। भूले-भटकों को सीधा रास्ता बताएँ। घबड़ाए हुए को तसल्ली दें। मगर ईश्वर की तरफ लगे हुए ख्यालात को कभी डाँवाडोल नहीं करना चाहिए।" (पृ० १०६)

जी० पी० ने धर्म के ढोंगी प्रचारकों का विरोध अवश्य किया है, परन्तु किसी धर्म विशेष का नहीं। उनकी दृढ़ आस्तिकता अनेक अवसरों पर लक्षित होती है। हाँ, मुसलमानी परिवारों का घरेलू चित्रण करने में वे थोड़े अनुदार अवश्य कहे जा सकते हैं। मुसलमानों की गृहस्थी लगभग हर स्थान पर झगड़े-झंझट, मार-पीट, भोग-विलास और गाली-गलौज से पूर्ण निम्न स्तर की दिखाई गई है। बहुत सम्भव है जी० पी० की इसी रुचि ने 'साहब बहादुर' के नायक को मुसलमान बनाया हो।

---

* देखिए 'नकदम' पृष्ठ ३७।

शासन

जी० पी० के साहित्यिक जीवन का अधिकांश भाग अंग्रेजों के शासन में व्यतीत हुआ है 'सन्ध्याकाल' में लिखी कुछ रचनाओं में जनतंत्र की सरकार पर कुछ व्यंग्य मिलते हैं।* यथा, 'बौछार' में रविवार का अवकाश और गाँव पंचायतों का प्रसंग है। अपने जीवन भर जी० पी० 'अफसर-परस्त' और जो भी संस्था सत्तारूढ़ हुई उसके अवसरानुकूल अनुगामी रहे। फिर भी यथार्थ के अनुरोध से उन्होंने अंग्रेजी शासन की अनेक कुरीतियों पर, अधिकारी साहबों पर व्यंग्य के द्वारा, कटाक्ष किये हैं। अधिकारी वर्ग अंग्रेजों से पक्षपातपूर्ण प्रश्रय पाकर प्रभुता से मदान्ध दिखाया गया है। पुलिस **अपने बाप की भी सगी** नहीं। उसके किसी सदस्य के घर आने से व्यक्ति विशेष की 'आबरू' चली जाती है। वास्तव में पुलिस का ऐसी संस्था के रूप में अंकन हुआ है जो किसी की भी 'आबरू' तो मिट्टी में मिला सकती है पर सम्मान किसी को नहीं दे सकती। दरोगा अनेक अवसरों पर कायर और भीरु दिखाए गए हैं। इनका सारा पौरुष छल-छन्द की अभिवृद्धि में लगा रहता है। घूसखोरी का स्वच्छन्द रूप से प्रचलन है। अपना धन्धा चमकाने को वकील जजों को मुफ्त अपने मकान में ठहराते हैं। छोटे-छोटे सरकारी कर्मचारी छल कपट में निपुण हैं। रेल के टिकट बेचने वाले बाबू तक गाड़ी के आ जाने पर शीघ्रता से 'रेजकारी' न होने का बहाना कर मनमाना मूल्य ले लेते हैं। विशेषकर न्यायालयों का कार्य-कलाप पूर्णत: भ्रष्ट है। पटवारी सफेद को स्याह और स्याह को सफेद कर सकते हैं। राय साहबी, अवैतनिक मजिस्ट्रेटी और असेसरी दे देकर अनेक अशिक्षित उद्दण्ड व्यक्तियों को अंग्रेजों ने गद्दार बना रक्खा था। 'उलट फेर' में इसका दिग्दर्शन कराया गया है। पक्षपात से भरे अधिकारी केवल छोटे-छोटे कर्मचारियों के बहकाने मात्र से हस्ताक्षर करते हैं। यह अधिकारी अपनी मानवता और सामाजिकता का त्याग कर हेकड़ी में चूर रहते हैं। अपने सगे सम्बन्धियों से मिलने में भी इन्हें संकोच होता है। जनता बेचारी की कौन समाई ! उसके सदस्य तो घण्टों प्रतीक्षा के लिए **'मुर्गी खाने के पिछवाड़े'** बिठाले जाते हैं।

वास्तविक जीवन में अफसरों को प्रसन्न रखते हुए भी साहित्यिक कृतियों में उनका उपहास करना जी० पी० के उस दोहरे व्यक्तित्व की सूचना देता है जिसमें जीवन की व्यावहारिकता ने उन्हें यथार्थ स्वीकार करने को बाध्य

---

* देखिए 'जीवन परिचय' पृष्ठ ६२।

किया परन्तु उनका अतंस्थ आदर्श के लिए तब तक मचलता ही रहा जब तक वह उनकी रचनाओं के व्यंग्य के माध्यम से प्रस्फुटित न हो गया।

आर्थिक व्यवस्था

देश की आर्थिक व्यवस्था पर भी जी० पी० ने कम चोटें नहीं की हैं। डाक के बढ़े मूल्य पर, यातायात सम्बन्धी नियंत्रणों पर, चोर बाजारी और मँहगी पर व्यंग्य किया गया है। 'लतखोरी लाल' में जाड़े से बचने के लिए केवल 'दुई' का उपाय बताया गया है क्योंकि रुई अमूल्य होने के कारण एक साधारण व्यक्ति के लिए दुर्लभ है।* मध्यम वर्ग के प्राणी कार्यालयों में बड़े बाबुओं से सताए जाते हैं और घर पर इनाम, आयकर तथा चन्दे वाले दम नहीं लेने देते। बेकारी और ऋण समाज के अभिशाप हैं। महीनों लोगों को अवैतनिक 'उम्मेदवारी' करनी पड़ती है। रचनात्मक योजनाओं में लोग कम हाथ डालते हैं जब कि वकीलों की भीड़ लगी रहती है। जी० पी० ने केवल इन दुर्व्यवस्थाओं का संकेत ही नहीं किया है वरन् इनका उपचार भी सुझाया है। महाजनों के निर्दय शोषण का अन्त करने के लिए 'लक्कड़ बघ्घा' में सह-कारी समितियों का प्रचार किया गया है। 'उलट फेर' में आजिज़ अली औद्योगिक क्षेत्र में प्रवेश कर निजी, जनता का और देश का कल्याण करता है। धन का वितरण भी जी० पी० को कुछ खटका है। अधाधुन्ध अपने आमोद-प्रमोद में लीन मदिरा और वेश्यासेवी राजा रईसों से जी० पी० सन्तुष्ट नहीं हैं।

पारिवारिक संस्था

सामान्य मध्यम वर्ग का कोई परिवार जी० पी० ने सुखी नहीं दिखाया है। परिवार के सदस्यों के परस्पर विरोध (Contravention) हर घर में कलह और फूट कर देते हैं। बाप बेटे, स्त्री-पुरुष और सास-बहू का मन कभी नहीं मिलता। दामाद अपनी उद्दण्डता के कारण 'सनीचर' ग्रह की समता करते हैं। जी० पी० ने इस कलह से छुटकारा पाने के लिए परिवार की एकता को नष्ट करना कभी नहीं चाहा। हिन्दुओं की संयुक्त परिवार प्रथा (Joint-family-system) का उन्होंने अनुमोदन किया है।†

---

* देखिए 'लतखोरी लाल' पृष्ठ ३४।

† देखिए 'प्राणनाथ' पृष्ठ ५७।

शिक्षा प्रणाली

अधिकांश भारतीय जनता निरक्षर है जिसकी मान्यताएँ अद्‌भुत हैं। 'अँगूठा' ही उनकी समस्त विद्या का भण्डार है। इसके प्रयोग से वे अनेक प्रपंचों में फंस जाते हैं। 'करिया अच्छर भैंस बराबर' में जी० पी० ने इस समस्या को उठाया है। बच्चों का प्रारम्भिक पालन ही जी० पी० ने दोषपूर्ण बताया है। वे अस्त्र-शस्त्र के कृत्रिम खिलौनों से भी नहीं खेलते और आजन्म कायर बने रहते हैं। 'लम्बी दाढ़ी' के पंडित जी सदृश गुरु स्वयं संस्कृत का गला घोंट रहे हैं। छात्रावासों में विद्यार्थियों को समुचित सुविधाएँ नहीं मिल पातीं। अधिकतर एक-एक कमरे में कई-कई विद्यार्थी रहते हैं। केवल कुछ ऊँची कक्षाओं के शिक्षार्थी अध्ययन के लिए एकान्त पाते हैं। अधिकांश छात्र अपने स्वास्थ्य की सुरक्षा नहीं कर पाते और उनका यौवन बस 'एन्ट्रेंस' तक अवशिष्ट रहता है। कोक शास्त्रों का स्वतंत्र विक्रय शिक्षार्थियों में भ्रष्टाचार बढ़ाता है। ग्रेजुएट अपनी शान में किसी का आदर सम्मान नहीं करते। वे अपनी धुन में 'भोली नादान और सकुचीली' स्त्री को 'मूर्ख, फूहड़, गँवार और गावदी' समझते हैं। वे कोई गलती कर ही नहीं सकते क्योंकि 'ग्रेजुएट' हैं! देश की शिक्षा प्रणाली पर व्यंग्य किया गया है। 'बौछार' में फूल बहँगी पर पुस्तकें लाद कर शिक्षालय जाता है। अपने एक भाषण में जी० पी० ने इस दिशा में सुधार भी सुझाए थे।*

साहित्यिक क्षेत्र

अर्वाचीन साहित्य-समाज के प्रति जी० पी० की दृष्टि कुछ सत्य और अधिकतर अपनी प्रारम्भिक असफलता के कारण क्षोभ से पूर्ण है। हिन्दी-साहित्य क्षेत्र में सम्पादक, प्रकाशक और समीक्षक किसी की बुद्धि और योग्यता पर जी० पी० का विश्वास नहीं। केवल कपट और प्रचार के द्वारा यह सभी अपना आदर और आतंक फैला देते हैं। लेखकों पर भी जी० पी० ने व्यंग्य किया है। अनेक कवि और उपन्यासकार यथार्थ से दूर कल्पना के स्वर्णिम देशों में भटकते रहते हैं। 'झूठमूठ' में वास्तविक प्रेयसि और कल्पना जगत की कामिनी नायिका का विरोध चित्रित किया गया है। इसी प्रकार 'लम्बी दाढ़ी' में मास्टर साहब जो उपन्यास पढ़ते हैं और वास्तविक जीवन में जो देखते हैं उसमें आकाश-पाताल का अन्तर है। लेखकों का यौवन भुक्त

---

* देखिए वार्त्ताओं का परिचय, पृष्ठ १३०।

भोगी शृंगारी भावों की अभिव्यक्ति कराता है। भाषा की कठोरता से भावों का सौन्दर्य दब जाता है। इस सम्बन्ध में जी० पी० ने एक स्थान पर परिवृत्ति द्वारा उपहास का भी प्रयत्न किया है। 'साहित्य का सपूत' (दूसरा अंक, तीसरा दृश्य) में साहित्यानन्द की कविता इसी प्रकार का उपहास करती है—

"प्रेम सुन्दरी।
प्रेम-सुमन की माला पहने—
स्नेह-सुरभि के माते,
अलि चंचल गुंजार रहे।
मत्त तरंगिणि !
वृंतहीन दिक्काल विक्रीड़ित
तरलित तुंग तमाल विचुंबित
नभ-वन-शिखर-विहारिणि !
कब आओगी ?"

रहस्यवाद और छायावाद की तत्सम-शब्द-प्रधान शैली पर यह व्यंग्य है।

भौतिकता

मनुष्य का जीवन आध्यात्मिक सुख और शांति की कामना से दूर लौकिक सुख-भोग में इतना लिप्त हो गया है कि उसकी दृष्टि आत्मकेन्द्रित और लोभी हो गई है।* जी० पी० ने मनुष्य की इस भौतिकता पर बड़े कटु व्यंग्य किये है। समाज के अधिकांश सदस्यों की लोभी प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराया है। चिकित्सक धन के लोभ में रोगी के प्राणों की भी चिंता नहीं करते। वकील अपने मुवक्किलों से फाँसी हो जाने पर भी 'शुकराना' चाहते हैं। धर्म और समाज के नेता जनता के चन्दे से गुलछर्रे उड़ाते हैं। साधू, संत, पण्डे और महन्त भोग में रत हैं। ज्योतिषी ब्राह्मण विद्याहीन लुटेरे हैं। दर्जी अधाधुन्ध कपड़ा चुराते हैं। कोई दूसरे की सहायता नहीं करता। किसी वस्तुके माँगे जाने पर लोग झूठे बहाने करते हैं। रेलमें कुछ यात्री टाँग पसारे सोते रहते हैं और कुछ सिकुड़े खड़े। स्वार्थ की पराकाष्ठा यह है कि 'लाल बुझक्कड' का (पृष्ठ ४३) गोबरधन कहता है कि दौलत को उसकी पुत्री का विवाह संपन्न हो जाने पर मरना चाहिए था। मनुष्य की प्राय: तीन कोटियाँ की जाती हैं—सात्विक, राजसी और तामसी। सात्विक जीव परमार्थ में रत रहते हैं। राजसी स्वार्थ

---

* देखिए 'जी० पी० के समकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ' पृष्ठ ६९ पर।

भी चाहते हैं और दूसरों का कल्याण भी। निकृष्ट कोटि के तामसी जीव चाहे अपनी हानि हो जावे, दूसरों को कष्ट देने में ही सुख पाते हैं। आजकल ऐसे ही व्यक्तियों की अधिकता है। इसका अच्छा चित्र जी० पी० ने 'कुरसी मैन' में खींचा है। नगर-पालिका के चुनाव में अपना भला न होते हुए भी लोग दूसरे के विनाश पर तुले रहते हैं। दूसरे की हानि से इनको सुख होता है। संसार में छल कपट का बोल बाला है। **'दुनिया उसी को पूजती है जो दुनिया को उल्लू बनाता है।'** लूटमार ही सबसे उत्तम उद्योग है।

साम्यवादी धारणा

जी० पी० ने व्यक्तिगत बुराइयों के लिए अनेक स्थलों पर समाज को दोषी ठहराया है।* उपयुक्त सुरक्षा और जीवन के साधन न उपलब्ध होने से ही व्यक्ति चोरी और जाल में हाथ डालता है। 'बौछार' में फूल कहता है—

"चोरी ! इसके सिवाय बेकारों के लिए कोई काम ही नहीं।"(पृ०४६)
इसी प्रकार 'उलट फेर' में आजिज़ अली कहता है—

"अजी जनाब मजबूरियाँ ही लोगों को चोर और डाकू बनाती हैं।..." (पृष्ठ १३६)

निजी विचार

निजी जीवन में अनेक दिशाओं से असफलता के कारण जी० पी० की समस्त समाज के प्रति एक क्षोभ और विद्रोह की भावना दिखाई पड़ती है। उसका ढाँचा स्वार्थ पूर्ण है। मनुष्य अपने बेगाने नहीं पहिचान पाता है। जी० पी० ने आधुनिक समाज का जहाँ वर्णन किया है वह हमें तुलसी के कलियुग वर्णन का स्मरण कराता है—

"साधू कौन ? जो निकम्मा है। ब्रह्मचारी कौन ? जिसके पास टका न हो। देवता का मानने वाला कौन ? जो रोगी है। और पतिवर्त्ता कौन ? वृद्धा नारी।" ('नकदम' पृष्ठ ६६)।

जी० पी० के अनेक विचार संसार के प्रति घृणा और जुगुप्सा का भाव जाग्रत करते हैं। आज के संसार में समाजनिरपेक्ष ऐकान्तिक सदाचारपूर्ण जीवन यापन करने वाले व्यक्ति का प्राप्य, जी० पी० के अनुसार, दुःख,

---

* देखिए 'जी० पी० के समकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ' पृष्ठ ७७ पर।

नैराश्य, विक्षोभ और कुण्ठा ही है। इसे पलायनवादी प्रवृत्ति की छाया ही कहा जायेगा। परन्तु यदा कदा व्यक्तिगत दृढ़ता और नवीन संस्कारों को जन्म देने वाले रूपों का भी चित्रण जी० पी० ने किया है। केवल बुराइयों का लेखा देने के कारण जी० पी० का साहित्य समाज की बड़ी काली तस्वीर उतारता है। तथापि, स्वयं व्याख्या तथा एकाध आदर्श चरित्र के रूप में, बीच-बीच में, सुधार की एक न एक आशापूर्ण किरण भी अपना प्रकाश देती चलती है। 'उलट फेर' में हँसमुख और आजिज़ के जीवन इसके प्रमाण हैं। गृहस्थी के झंझटों से ऊबा हुआ निवृत्तिपरायण ऐकान्तिक सन्यासी जीवन, अभीष्ट आदर्श नहीं, वरन् विस्फोट की हलचल के द्वारा उसमें सुधार और परिष्कार करने वाला एक विद्रोही जीवन अनुकरणीय है। इसको जी० पी० ने उमा के प्रसंग में 'प्राणनाथ' में दिखाया है।

अस्तु, जी० पी० का साहित्य जितना समाज से पलायन है उतना ही उसमें परिष्कार का प्रयत्न भी।

३

उपसंहार

जी० पी० की कला का मूल्यांकन करते समय समीक्षक की दृष्टि उनके साहित्य की प्रगल्भता की ओर स्वत: आकृष्ट हो जाती है। अनेक आलोचकों ने उनकी कृतियाँ अश्लील कही हैं। स्वयं वर्तमान हिन्दी के निर्माता पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने आपकी 'नोक झोंक' की रचनाओं को प्रकाशित करने में आपत्ति की थी। अस्तु, सर्व प्रथम अश्लीलता पर ही विचार कर लेना अधिक उपयुक्त होगा।

जी० पी० ने स्वयं अपने प्रति किए गए आक्षेपों का उत्तर देने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार किसी साहित्य में अश्लीलता पाठक के मनोविकारों के कारण दिखाई पड़ती है। **'जाकी रही भावना जैसी'** के न्याय से यह साहित्य का दूषण न होकर पाठक की ग्राहक इन्द्रियों का विकार है (देखिए 'भड़ाम सिंह शर्मा' पृष्ठ ७-८)। वासनात्मक साहित्य के निषेध से वे समस्त पुरुष जाति के शिखण्डी हो जाने की आशंका करते हैं—

"वासना पर संसार की स्थिति निर्भर है। वासना के बल पर साहस, पराक्रम, पौरुष और पुरुषार्थ है, वर्ना सब ठन-ठन गोपाल है। और, उसी वासना से इतनी भड़क! दुर्भाग्य ने तो भारतवासियों को नामर्द बना ही रक्खा है। अब प्रकृति भी इन्हें एक सिरे से एकदम शिखण्डी ही बना दे, तब हमारे साहित्यिकों को संतोष होगा ?" (हास्य रस, पृष्ठ ३६)

वासनात्मक उद्‌गारों को वे हृदय की सच्ची यथार्थवादी अनुभूति मानते हैं। सुश्री कमला देवी पाण्डेय ने जब इस दिशा में जी० पी० का ध्यान आकृष्ट किया तब उनका सहज उत्तर था—**'क्या करूँ बच्ची, मैं ढोंग नहीं कर पाता।'** (बौछार, पृष्ठ ६)।

क्या श्लील है और क्या अश्लील इसका निर्णय करना भी सरल नहीं। हम नग्न स्त्री-पुरुष के चित्र देख कर उन्हें कभी श्लील कहते हैं और कभी अश्लील। उदाहरण के लिए प्राचीन हिन्दू मंदिरों की मूर्तकला के नमूने तथा आधुनिकतम फ्रांसीसी नग्न (Nude) चित्रों को ले सकते हैं। वास्तव में इन दोनों का भेद है भी बहुत कुछ मानसिक स्थिति से संबंधित। परन्तु इतना निश्चित है कि कथन की अभीष्टता एक वर्ग, समय, और स्थिति विशेष की अपेक्षा करती है। एक वर्ग विशेष के सन्मुख कही गई बातें अपना स्वभाव भी भिन्न रखती हैं। रुचि और आयु आदि का भी अपना स्थान है। चिकित्सा-शास्त्र की पुस्तकों में सभी कुछ मिलता है परन्तु वह कामुकता नहीं है। अत: जी० पी० के साहित्य की समीक्षा करते समय उसमें प्रयुक्त उद्दाम वासनामय नग्न चित्रों की परीक्षा करनी ही होगी।

सुख और आनन्द की आधारशिला होने के कारण श्रृंगार की भावना को जी० पी० ने अपने साहित्य का मूल आधार बनाया है। परन्तु श्रृंगारी भावों के भी भिन्न स्तर होते हैं। अवसर और समाज कवि की श्रृंगारात्मक रुचि को नियंत्रित करते हैं। ये भाव केवल स्मितकारी सिहरन भी दे सकते हैं और मांसल शरीरजन्य विकृत आनन्द भी। जी० पी० की रुचि इस दृष्टि से परिष्कृत नहीं कही जा सकती। अनेक अवसरों पर प्रेमियों के प्रेयसी के साथ-साथ अनुगमन के लिए कुछ अश्लील उपमानों का उपयोग किया गया है उदाहरणार्थ 'जैसे कुतियों के पीछे कातिक में कुत्ते लगे रहते हैं।' यह सुसंस्कृत अप्रस्तुत विधान तो नहीं ही है, अशिष्ट और असंयत भी है। रीति कालीन कवियों के एतद्विषयक वर्णन लाक्षणिक और व्यंग्यात्मक होने के कारण बहुत कुछ संकेत मात्र होते थे परन्तु जी० पी० के नाटकों में चुम्बन आदि का प्रत्यक्ष विधान है। उनके गीतों का तो कहना ही क्या—

"रसिक०—छलकी घतियाँ करो न जनियाँ,
लागो छतियाँ मोरी।
मोहनी—हाय दइया, मसकी चोलिया, छाड़ो
बइयाँ टूटी चुड़ियाँ।" (नोक-झोंक पृष्ठ ५०)

'मरदानी औरत' के (पृष्ठ १२) साहित्यकार को जी० पी० ने व्यभिचारी नहीं माना है। वह केवल अनुभव के लिए सभी प्रकार के वातावरण का प्रत्यक्ष साहचर्य प्राप्त करता है। परन्तु कभी व्यभिचार में नहीं पड़ता। स्वयं व्यभिचार से पृथक् रहकर लेखक कामातुर नग्न चित्र उतार सकता है इसमें निस्सन्देह उसकी सराहना होनी चाहिए, परन्तु क्या इन चित्रों का

प्रभाव जन साधारण और समाज के लिए मंगलकारी होगा ? इसमें सन्देह है। जी० पी० के चरित्र पर हम किसी प्रकार का कलंक लगाना नहीं चाहते, परन्तु उनका वासनाग्रस्त साहित्य प्रगल्भ भावों के प्रचार के कारण अवश्य दूषित है।*

'घर का न घाट का' में जी० पी० ने सन्तान निरोध सम्बन्धी, 'चाँद' में प्रकाशित, लेख की प्रशंसा की है। सन्तान-निरोध जनता के लिए कल्याण-कारी है इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु उसकी विधि का जन साधारण में इस प्रकार का विज्ञापन क्या भ्रष्टाचार नहीं बढ़ाता ? और फिर, क्या यह पत्रिका केवल किसी वर्ग विशेष के लिए छपी थी। 'चाँद' का 'शिशु अंक' क्या केवल विवाहितों के ही लिए प्रकाशित हुआ था ? यदि नहीं, तो फिर जी० पी० के सभी प्रतिवाद भी निरर्थक हैं। एक ओर वे कोक-शास्त्रों के अबाधित विक्रय की भर्त्सना करते हैं और दूसरी ओर ऐसे लेखों का अनुमोदन करने के लिए पक्षपातपूर्ण व्यंग्य और कटाक्ष भी। यह उनके चरित्र की दुर्बलता ही मानी जायगी। उक्त पत्रिका के प्रति जी० पी० की अनेक कारणों से ममता है, और ममता पक्षपात की जननी है। अत: इस निर्बलता का भी इस रूप में किंचित परिहार हो जाता है।

वास्तव में जी० पी० के इन अश्लील वर्णनों में साहित्य के यथार्थवादी दृष्टिकोण, प्रगतिवाद की यौन-भावना तथा फ्रायड के मैथुनवाद का मिला-जुला प्रभाव है, यह विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है। परन्तु, उसमें इन तीनों दृष्टिकोणों के अपेक्षाकृत प्रभाव की मात्रा निर्दिष्ट कर सकना थोड़ा कठिन होगा।†

मनोवैज्ञानिक अध्ययन आधुनिक युग के साहित्य की विशेषता है। जी० पी० ने भी कहीं-कहीं पर बड़े सजीव चित्र किसी पात्र के भावों के स्वाभाविक आरोह-अवरोह के खींचे हैं। मानव की सहजात प्रकृति और स्वभाव का अनेक स्थलों पर अच्छा दिग्दर्शन कराया है। माता-पिता अपनी संतान को सदैव अबोध शिशु ही समझते हैं इसका मार्मिक संकेत 'आखों में धूल' की गोबर-

---

* इस प्रसंग में जी० पी० की समता पाश्चात्य लेखक चाउसर से की जा सकती है। अश्लील कथाओं के सृजन में वे भी बहुत दत्त-चित्त रहते थे। अनेक आँग्ल विद्वानों ने इनकी कहानियों को 'Dirty Stories' कहा है।

† जी० पी० के इन अश्लील वर्णनों का एक कारण मोलियर का अन्धानुकरण भी है। प्रसंग के लिए देखिए परिशिष्ट में मोलियर का परिचय।

चन्द की वार्त्ता में मिलता है। यौवन की माँगों की पूर्त्ति के अभावों से उदास केतकी को वह बाल-सुलभ चित्ताकर्षक और मनोविनोदप्रद वस्तुओं से प्रसन्न करना चाहता है—

"गोबर०—कापियाँ कहो तो मँगा दूँ। पेन्सिल न हो तो पेन्सिल ला दूँ। मगर कुछ मुँह से बोलो भी तो। क्या तस्वीरों-वाली किताब चाहिये ?" ('मार मार कर हकीम' पृष्ठ ८२)

एक व्यक्ति को यदि सभी पागल कहने लगें तो वह स्वयं चकरा जाता है और अपनी बुद्धि पर सन्देह करने लगता है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का संकेत इसी रचना में हमें गोबरचन्द के चरित्र में मिलता है। (देखिए पृष्ठ १३६)।

जब किसी भावातिरेक के कारण मानव की वाणी किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर चुप रह जाती है तब किस प्रकार उसके मौन संकेत परस्पर भावों का आदान प्रदान करते हैं इसका दर्शन 'लम्बी दाढ़ी' के 'कालेज-मैच' में मिलता है—

'......उसके कोमल ओठों पर एक हल्की सी मुस्की आ गई। आंखों ही आँखों में क्षमा की प्रार्थना की और क्षमा भी मिल गई।" (देखिए पृ० ६३)

ज्ञात हास्य श्रेष्ठ माना गया है। आत्म कथा के क्षेत्र में जब यह परिहास का रूप लेता है तब इसकी उत्कृष्टता चरम सीमा को पहुंचती है। (देखिए 'हास्य के प्रकार' पृष्ठ ४३-४४)। जी० पी० ने उपन्यास की शैली पर 'विलायती उल्लू' और 'लतखोरी लाल' लिखे। इनका विन्यास आत्मकथा के सदृश है। परन्तु इस क्षेत्र में जी० पी० बहुत सफल नहीं कहे जायेंगे। यह हास्य यदि 'ज्ञात हास्य' होता तो कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता। परन्तु इसके नायक स्वयं अपने कृत्यों पर दूसरे के हँसने से चिढ़ते रहते हैं तथा उन्हें यह विश्वास कभी नहीं होता कि उनका आचरण हास्यास्पद है। वासना उनका प्रमुख गुण होने के कारण परिष्कृत रुचि के पाठक का हृदय साधारणीकरण से विमुख हो जाता है। अतिरंजना से दूर जब वाचक मीठे हास्य को लेकर आत्मकथाओं में चलता है तब उससे हमारा हृदय अनायास तादात्म्य का अनुभव करता है :* अन्नपूर्णानन्द जी की 'मेरी हजामत' की कहानियाँ इसका उत्तम उदाहरण हैं।

---

* अतिरंजना साहित्य के प्राचीनतम काल से कथाओं की एक प्रणाली थी। हमारी पौराणिक और महा-भारत युग की अनेक कथाओं में इसका साम्राज्य दीखता है। १९वीं शताब्दी में यद्यपि अमरीका के अधिकांश हास्य पर इसका अधिकार नहीं था फिर भी अतिरंजना ने इतना महत्त्वपूर्ण स्थान

जी० पी० का उपहास सदैव कोमल और मधुर नहीं है। विशेष रूप से साहित्य-जगत के पात्रों के प्रति हास्य में उनकी अंतस्थ घृणा भावना की गंध मिलती है। श्रेष्ठ हास्य वही होता है जिसमें हास्य-पात्र के प्रति हमारी सदय भावनाएँ प्रवाहित रहती हैं। उपहास में व्यंग्य और कटाक्ष का लक्ष्य बनाते हुए भी किसी के प्रति अपनी सहानुभूति कम न होने देना बड़े कौशल का कार्य है। परन्तु हास्य इसी प्रकार का अच्छा कहा गया है।† जी० पी० का उपहास ऐसा नहीं। वह जहाँ भी आया है, हास्यास्पद के प्रति हमारी विद्रोही भावनाओं को जगाकर आया है। इस प्रकार का क्रूर, कर्कश और असहिष्णु उपहास, हास्य की निचली कोटि का ही कहा जायेगा।

जी० पी० को प्रहसन प्रणाली का हास्य बहुत प्रिय है। इसमें 'भ्रान्त' की भरमार रहती है। इनका स्वरूप बहुत कुछ उसी प्रकार का होता है जैसे प्राचीन संस्कृत साहित्य के मूर्खतापूर्ण कल्पना पर आश्रित 'भाँण' हुआ करते थे। इनमें कल्पित निन्दनीय पुरुषों की चर्चा द्वारा हास्योत्पत्ति की जाती है। भ्रान्त हास्य कलापूर्ण और सुरुचि-संपन्न नहीं होता, और जी० पी० का अधिकांश साहित्य इसी कोटि में आता है।*

हास्य चिरस्थायी तभी होता है जब उसमें हृदय तत्त्व का, अप्रत्यक्ष ही सही, समावेश हो। हास्य को पुष्ट और स्थायी करने के लिए उसके मूल को सामाजिक दुर्व्यवस्था अथवा सामयिक विडम्बना के प्रति करुणा की अदृश्य सरस्वती धारा से रससिक्त करना आवश्यक है। करुणा की इस अदृश्य सरस्वती के लक्षण हमें जी० पी० की 'गंगा जमुनी' में मिलते हैं। और इसी

प्राप्त कर लिया था कि इसे 'American Humour' का लक्षण मान लिया गया था। प्रसिद्ध हास्य लेखक मार्क ट्वेन की 'Innocents Abroad' ऐसी विख्यात रचना है।

† इस प्रसंग में George Meredith की पंक्तियाँ दृष्टव्य होंगीं—

"You may estimate your Capacity for comic perception by being able to detect the redicule of them you love without being loving them less."

* यदि पाश्चात्य दृष्टि से देखा जाय तो फाउलर के वर्गीकरण के आधार पर जी० पी० का अधिकांश साहित्य 'Sarcasm' और 'Satire' के अन्तर्गत आवेगा। फीबिलमन के अनुसार इसे हम 'Sociological' हास्य कहेंगे, और, उसके उपभेदों में यह पुनः 'Satire' और 'Sarcasm' ही ठहरता है। देखिए 'हास्य के प्रकार' पृष्ठ ३५-३६।

से उसका साहित्यिक हास्य के क्षेत्र में एक पवित्र स्थान है। अन्य ग्रन्थों में उनका हास्य करुणामूलक न होने के कारण स्थायित्व प्राप्त कर सकेगा इसमें सन्देह है।

कटाक्ष और व्यंग्य में वाग्वैदग्ध का जी० पी० ने प्रचुर प्रयोग किया है परन्तु यह भी अपनी कठोरता के कारण उग्र होकर अपना प्रभाव खो देता है।

साम्यवादी आर्थिकता को लेकर जी० पी० ने अपने विचारों में राष्ट्रीयता की झलक दी है। अन्नपूर्णानन्द जी की कतिपय रचनाएं भी निर्धनों के शोषण और उत्पीड़न की समस्या को लेकर चली थीं। इन रचनाओं में वर्मा जी केवल हास्य में न उलझ कर निरन्तर आर्थिक दारिद्र्य के विराट वीभत्स रूप का स्मरण दिलाकर अपनी कृतियों के पीछे एक वेदना और टीस की भाव-भूमि भी बनाते चलते हैं, जिससे यह आभास अवश्य मिलता है कि उनकी यह रचनाएं राष्ट्रवादी हैं। परन्तु जी० पी० राष्ट्रीय विचारों की भावधारा में सम्यक उतर भी नहीं पाते कि तुरन्त हास्य के प्रगल्भ क्षेत्र, सेक्स के साहित्य, में प्रविष्ट हो जाते हैं। 'भारत माता की जय' और 'हजामत' उनकी अपवाद स्वरूप रचनाएँ हैं। यह द्विवेदी युग की सामाजिक, जातीय और राष्ट्रीय उद्बोधन की प्रेरणा का परिणाम है। पर, इनमें भी वे वासनात्मक भाव और छद्म वेश के प्रयोग से अपनी वास्तविकता छिपा नहीं सके हैं। आज के साहित्य और समाज की रुचि की यह विकटतम समस्या है। अब सोने के आभूषणों से लेकर मिट्टी के प्याले-प्याली तक के विज्ञापन नारी के सौन्दर्य और उसकी भाव भंगिमा के चित्रों के साथ होते हैं। सामाजिक विचारधारा में इस प्रकार वासना की विजय प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई पड़ती है। जी० पी० भी इसकी माया से पूर्णतया आक्रान्त हैं जो कहीं भी इन्हें अपने मोह-जाल से निकल कर अन्यान्य सुरुचिपूर्ण भावन नहीं करने देती।

नीतिकार और साहित्यकार में एक बड़ा अन्तर यह है कि नीतिकार पहले अपने लक्ष्य को देखता है और साहित्यकार अपने साधन को। एक चमत्कार से प्रभाव डालता है दूसरा हृदय को द्रवीभूत करके, रससिक्त करके। जी० पी० की दृष्टि जीवन और जगत् की आलोचना में प्रायः साधनों की अपेक्षा लक्ष्य पर अधिक रही है। साहित्य की प्रचलित छायावादी और रहस्यवादी शैलियों का उपहास परिवृत्ति के माध्यम से जब वे करते हैं तो

उनके साधनों की सराहना अवश्य की जायगी।[5] परन्तु अधिकांश आलोचनाओं और जीवन के कटु सत्यों के उद्घाटन में जी० पी० कठोरता को क्रूरता की सीमा तक ले गये हैं।

जी० पी० का वह साहित्य जो किसी आग्रह पर, किसी मत अथवा रचनात्मक योजना के पक्ष में लिखा गया है, बहुत कुछ प्रचारवादी है। 'करिया अच्छर भैंस बराबर' और 'लक्कड़ बग्धा' साक्षरता और सहकारी समितियों के विज्ञापन हैं। समाज के कल्याण के लिए इन योजनाओं का प्रचार इस साहित्य का मुख्य ध्येय है। यह जी० पी० के साहित्य का 'शिव' रूप है।

जी० पी० का साहित्य एक अन्य दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है, और यह उनके साहित्य का ऐतिहासिक महत्त्व है। नाटक, उपन्यास, और कहानी सभी क्षेत्रों में आप हास्य के प्रारम्भिक लेखकों में हैं। परिष्कार भले न कर सके हों पर आपने एक मार्ग अवश्य दिखाया है। वास्तव में 'आगामी लेखकों की जग-जयकार जी० पी० का साहित्य गाता है।' हिन्दी में हास्य को रस की प्रतिष्ठा देने में आपका प्रयत्न श्लाघनीय है।

गल्पों का आनन्द मौखिक रूप से कहने में अधिक होता है। लिपिबद्ध साहित्य में इसका वह सौन्दर्य नहीं रह जाता। जी० पी० की आकाशवाणी से प्रसारित वार्त्ताएं रोचक अवश्य हैं परन्तु पुस्तक रूप में उनका प्रकाशन स्थायी प्रभविष्णुता प्राप्त कर सकेगा इसमें सन्देह है।

जी० पी० ने आधुनिक साहित्य में हास्य के नवीन उपादान ही प्रस्तुत किये हैं, केवल इतना कहना उनकी साहित्यिक गुरुता को कम करना होगा।

*** जब परिवृत्ति किसी रचना विशेष से हटकर एक शैली अथवा** काव्य-प्रणाली का उपहास करती है तब वह एक व्यक्तिवाचक वस्तु के क्षेत्र से हटकर जातिवाचक वर्ग की खिल्ली उड़ाती है। इस प्रकार किसी वर्गीय शैली के उपहास को आँग्ल विद्वानों ने 'Burlesque' के नाम से अभिहित किया है। अमरीका में जार्ज एड (George Ade) और बाब् बैन्क्ले (Bob Benchley), विलायत में हार्बर्ट (A. P. Herbert) और चार्ल्स ग्रेव्स (Charles Graves) तथा अपने देश में अन्नपूर्णानन्द एवं पं० वंशीधर शुक्ल ऐसे साहित्य के सिद्धहस्त लेखक हैं। देखिए प्रसंग के लिए अन्नपूर्णानन्द जी का उद्धरण पृष्ठ ६२ पर और वंशीधर जी का उल्लेख पृष्ठ ६६ पर।

प्राचीनतम साहित्य की छाया से अछूता कदाचित् कोई कलाकार नहीं रह सकता। 'नकदम' में भकभकानन्द (पृष्ठ ४९) प्राचीनतम विदूषकों का चित्र प्रस्तुत करता है। अनेक पात्र उसी प्रकार से पेटू हैं जैसे संस्कृत के विदूषक। 'उलट-फेर' में वन्दना संस्कृत के नाटकों के नान्दी पाठ का स्मरण दिलाती है। जी० पी० के नाटकों में कुछ पुरातन बातों की अधिकता खटकती बहुत है। प्राचीन परम्परा के अंकमुख, प्रवेशक और चूलिका आदि का प्रयोग अधिक स्थान पर नहीं हुआ है, पर, आधुनिक युग में कृत्रिम माने गये नियति-श्राव्य का बहुत सहारा लिया गया है। इसमें जनान्तिक की उपेक्षा कर, अधिकतर अपवारिक रीति का ही आश्रय लिया गया है।

हास्य का एक भाषा से दूसरी, एक समय से दूसरे, और एक विचार से दूसरे में अनुवाद बहुत दुष्कर होता है। वचनावली, युग और भावों का प्रभाव ही अनुवाद में नष्ट हो जाता है। हास्य का रूपान्तर करते समय एक विदेशी विचार धारा का प्रवाह जीवित रखने में जी० पी० की कला अवश्य सराहना-योग्य है। इस दृष्टि से उनके द्वारा प्रस्तुत रूपान्तर उनकी मौलिक कृतियों से कहीं उत्तम हैं।

जी० पी० का हास्य एक वर्ग विशेष का हास्य है। जिस प्रकार उनकी भाषा निम्न मध्यम वर्ग के कायस्थ-परिवारों की बोल चाल की बोली है उसी प्रकार उनका हास्य भी निम्न मध्यम वर्ग के युवक छात्रों की वस्तु है। उसमें यदि हम गुलेरी जी वाली साहित्यकता और बहुज्ञता खोजें तो निराश ही होना पड़ेगा। यों तो आपकी रचनाओं में व्याप्त वासना के कारण सभी हंस देंगे पर यह कुछ उसी प्रकार की हंसी होगी जैसी गुदगुदाने से उपजती है। कालेज और स्कूलों में पढ़ने वाले मनचले विद्यार्थियों को कदाचित् इसमें सबसे अधिक आनन्द आवेगा।

आपके साहित्य का इस प्रकार सीमाबद्ध होने का मुख्य कारण है कि आपकी कला नैसर्गिक और सहज है। आपकी रुचि कुछ शृंगारी भावों में अधिक रमती है और स्वभाव से विनोद-प्रिय होने के कारण आप निर्बाध रूप से हास्य रचनाएं प्रस्तुत करते रहे। लिखने का अभ्यास अवश्य रहा पर साथ ही अर्जित अथवा व्युत्पत्तिलब्ध-प्रतिभा का अभाव भी।

यदि प्रयोजन की दृष्टि से देखें तो जी० पी० का साहित्य उसमें छिपे उपदेशों के कारण कुछ अंश में गुरु, और वासना पर अधिक केन्द्रित होने के कारण, अधिक अंशों में कान्ता स्वरूप है। इससे प्राप्त आनन्द ब्रह्मानन्द का

सहोदर अलौकिक आनन्द नहीं वरन् यह काम प्रधान लौकिक, पार्थिव रस का आस्वादन कराता है।

सरसता, प्रभावात्मकता, रमणीयता और मधुरता आदि ही साहित्य को स्थायित्व प्रदान करती हैं। इस कसौटी पर हम उन्हे अधिक से अधिक सामान्य सामयिक साहित्य की श्रेणी में ही रख सकेंगे। इसका प्रमाण उनकी वे प्रारम्भिक रचनाएं हैं जो आज केवल चालीस वर्षों के ही अन्तर से अन्धकार के गर्त में पड़ती जा रही हैं, और पूर्णत: विस्मृत होती जाती हैं।

सत्रहवीं शताब्दी में किसी का अपकर्ष, १६वीं में असम्बद्धता अथवा असंगति और २० वीं के पूर्वार्ध में विपर्यय, आवृत्ति तथा यान्त्रिकता से सहृदय हंसते थे और अब धीरे-धीरे करुणार्द्र और संयत हास्य प्रतिष्ठा पा रहा है। यह हास्य हास्यास्पद मात्र न रह कर जीवन और जगत की विशद व्याख्या और विडम्बना के उद्घाटन से अलौकिक आनन्द का विधान करता है। आज कुरूपता, शारीरिक विकृति, और दारिद्र्य आदि हास्य के नहीं, दया के पात्र हैं। उनके भागी पात्र हास्यास्पद तभी हो सकते हैं जब वे किसी मानसिक रोग के शिकार न होकर मानसिक विकार को ग्रहण करते हैं। ऐसे सहृदय हास्य का जी० पी० के साहित्य में अभाव है अस्तु भविष्य में इनके साहित्य की मान्यता संदिग्ध ही है।

हाँ, यदि साहित्य का प्रयोजन केवल मनोरन्जन मान लिया जाय, तो इस संघर्षपूर्ण जीवन के उदासीन अवकाश को, दो क्षण हंसी-खुशी में काटकर, अप्रिय जीवन के भार को हल्का करने के लिए जी० पी० का साहित्य अवश्य सबल और समर्थ है। साथ ही, सामयिक समाज के अध्येताओं के लिए, युग के काले पर्दे का उद्घाटन कर, वह सदैव एक पुष्ट ऐतिहासिक सत्य प्रस्तुत करता रहेगा।

परिशिष्ट

१—मोलियर, संक्षिप्त परिचय,

२—पुनश्च,

३—जी० पी० की रचनाओं की सारिणी,

४—जी० पी० के अभिनन्दन, तथा

५—सहायक पुस्तकों की सूची।

१

मोलियर

(संक्षिप्त परिचय)

सत्रहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध फ्रांसीसी नाटककार मोलियर के जीवन सम्बन्धी अनेक तथ्य विवादग्रस्त और संदिग्ध हैं। H. W. Fowler की 'The Concise Oxford Dictionary of English Literature' के आधार पर 'Moliere' उपनाम से विख्यात Jean Baptiste Poquelin का जन्म सन् १६२२ ई० और मृत्यु काल सन् १६७३ ई० निश्चित किया जाता है।

मोलियर के पिता पेरिस के एक मध्यम वर्ग के व्यवसायी थे। बाद में फ्रांसीसी राजघराने की कृपा से यह राजकीय-भण्डार-गृह के निरीक्षक बना दिये गये। मोलियर की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा 'क्लेमौंट कालेज' में हुई। वहाँ के उच्च कुलीन सहपाठियों के संसर्ग से मोलियर को बड़ा लाभ हुआ। ग्रीक और लैटिन आदि प्राचीन भाषाओं का उसने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। तत्कालीन प्रसिद्ध दर्शन शास्त्री गैसेंडी प्रभृति गुरुओं से उसे पथ प्रदर्शन प्राप्त हुआ।

अपने पिता की अभिलाषाओं (एक वकील या व्यवसायी बनना) के विपरीत माँ की मृत्यु से प्राप्त धन द्वारा मोलियर ने एक नाटक कम्पनी खोली और पेरिस में अभिनय प्रारम्भ किये। इनका सम्मान न हो सका और आर्थिक संकट के कारण मोलियर को अनेक बार कारावास के दण्ड भी भुगतने पड़े।

पेरिस में असफलता देख कर मोलियर ने पर्यटन आरम्भ किया और अनेक प्रान्तों में अपनी नाटक कम्पनी की धाक जमा दी। प्रसिद्ध हो जाने पर वह पुन: पेरिस लौट आया और वहाँ सम्राट् लुई का आश्रय प्राप्त किया।

मोलियर एक कर्मठ व्यक्ति था इसका प्रमाण यही है कि अपने अन्तिम दिनों में भी स्वयं अभिनय करता था और मंच पर ही मूर्छित होकर उसका अवसान हुआ।

मोलियर का सम्बन्ध वहाँ के एक वेश्या-परिवार से बहुत घनिष्ठ था। इस परिवार की एक दुश्चरित्रा युवती से मोलियर के सम्बन्ध के संकेत मिलते हैं। उस युवती की छोटी बहिन से मोलियर ने विवाह किया था। यह भी चरित्र की चंचल थी और कहते हैं कि इसी से वह आजन्म नारी की ओर से त्रस्त रहा। उसकी रचनाओं में सम्पूर्ण नारी वर्ग के प्रति एक क्षोभ है, जिस संघर्ष की स्पष्ट छाया जी० पी० की कृतियों पर है। जी० पी० के साहित्य गुरु की अर्धांगिनी वास्तव में 'मरदानी' थीं !

आश्रय के प्रतिकार स्वरूप मोलियर को सम्राट् लुई के अनुरोध पर अनेक प्रहसन लिखने पड़ते थे। जिस प्रकार रीतिकालीन दरबारी कवि अपने आश्रयदाताओं को शृंगार-चषक पिलाते रहते थे उसी भाँति सम्राट् की हीन वासनाओं की तुष्टि के लिए मोलियर बहुत कुछ अश्लील लिखते थे; जो प्रणाली जी० पी० को उत्तराधिकार रूप में मिली।

मोलियर ने प्राय: दो प्रकार के नाटक लिखे। एक गंभीर और दूसरे प्रहसन। प्रहसन बहुधा लुई की तुष्टि के लिए लिखे गए। गम्भीर नाटकों से आज मोलियर की समकक्षता शेक्सपियर और कालिदास से की जाती है।

मोलियर के गम्भीर नाटकों में मानव-चरित्र का यथार्थ अंकन हुआ है। उसके प्रहसनों में प्रायः अनीति, अन्याय, लोभ और मूर्खता आदि दुर्गुणों के कारण दार्शनिक, डाक्टर, वकील, पादरी और विलासी स्त्री-पुरुष तथा, विवाह, शिक्षा और धर्म सम्बन्धी समाज की अन्यान्य कुरीतियों का उपहास है।

'Les Pr'ecieuses ridicules'; 'L' Ecole des Femnies'; 'Tartuffe'; 'Le Misanthrope'; 'Georges Dandin'; 'L' Avare' और 'Le Malade in aginaire' मोलियर की विख्यात रचनाएं हैं।

२

'पुनश्च'

प्रस्तुत निबन्ध लखनऊ विश्वविद्यालय की १९५६ ई० की एम० ए० (हिन्दी) परीक्षा के लिए उपस्थित किया गया था। ७ वर्ष की इस अवधि में हिन्दी साहित्य की प्रगति अनेक दिशाओं में हुई है। युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियों के अनुरूप हास्य का प्रवाह-परिवर्तन भी सहज स्वाभाविक है। आधुनिक साहित्यक पात्रिकाओं में जो सामग्री प्रकाशित हो रही है, इस तथ्य की साक्षी है कि समसामयिक सामाजिक राजनीतिक एवं व्यवस्थात्मक संगठनों के प्रति हास्य व्यंग्य (Satire) प्रधान होता जा रहा है। जगत और जीवन के शास्वत सत्यों की आभा में प्रस्फुटित सकरुण हास्य हिन्दी में आज भी उपेक्षित ज्ञात होता है।

आर्थिक संघर्ष से अभिभूत युग में पाठक, और लेखक भी, साहित्योपासना में अधिक समय देना नहीं चाहता। परिणाम स्वरूप, छोटे-छोटे चित्रांकन, नये-नये चुटकुले एवं लघु कथाएं ही हास्य का उपकरण बन गए हैं। 'संक्षिप्त' सामग्री की माँग बढ़ गई है। इस संक्रामक संक्षिप्तीकरण की माँग के फलस्वरूप उत्कृष्ट चरित्रांकन से पूर्ण हास्य-सामग्री का सृजन भी गौण हो गया है।

जी० पी० की साधना बास्तव में **'मन इकला चलो रे'** का आदर्श उपस्थित करती है। उन्होंने जब लिखना प्रारम्भ किया था; हास्य हिन्दी में पूर्णत: उपेक्षित था। मार्च सन् १९५७ ई० में अकस्मात् लकवे के प्रकोप से जी० पी० लगभग अपंग हो गए थे। महीनों उपचार के बाद चलना-फिरना आरम्भ किया। इस रुग्णावस्था में भी प्रायः बोल-बोल कर रचनाएं प्रस्तुत करते रहे। आज भी जो श्रम वे अपने आतमवृत्त के निर्माण में वहन कर रहे हैं वह उनकी शिथिल काया की क्षमता के सर्वथा बाहर है। गत जून में लेखक को 'आकाशवाणी' के लखनऊ केन्द्र पर जी० पी० की वार्त्ता की 'रिकार्डिंग' के समय उपस्थिति का अवसर मिला। तपती दुपहरी में वयोवृद्ध जी० पी० के ढले-थके शरीर से हाँफते-काँपते शब्द सुनकर हृदय

हिल गया। फिर भी, जिस लगन एवं दृढ़ता से जी० पी० ने, सम्भाषण के स्वरों के आरोह-अवरोह के साथ, अपनी वार्त्ता पूर्ण की वह वास्तव मे श्लाघ्य है। हमारी दृष्टि में जी० पी० की लेखनी से निःसृत साहित्य का अब भले ही वह उत्कृष्ट मूल्य न रह गया हो, उनकी एकाग्र साधना का महत्व किसी प्रकार कम नहीं किया जा सकता।

गत ७ वर्षों में जी० पी० की निम्नोद्धत कृतियाँ प्रकाश में आई हैं—

(१) भक्तिन (सन १९५६ ई०)
(२) आकाश पाताल (वार्त्ताएँ।)
(३) चुटकियाँ (पत्र संग्रह।)
(४) तोप सिंह (स० १९६१ ई०), तथा
(५) एकलौता जूता (स० १९६१ ई०)।

प्रहसन संग्रह 'भक्तिन', वार्त्ता संग्रह 'आकाश पाताल', एवं पत्र संग्रह 'चुटकियाँ' के संकेत मुख्य निबन्ध में ही बढ़ा दिये गये हैं। यहाँ 'तोपसिंह' तथा 'एकलौता जूता' पर ही दो शब्द कहना अपेक्षित है।

तोपसिंह

'तोपसिंह' (रचनाकाल सन १९५५ ई०) प्रहसन के अतिरिक्त इसमें निम्न कहानियां भी सम्मिलित हैं। कोष्टकों में रचनाकाल प्रदर्शित हैं—

(१) जान बची लाखों पाए (स० १९५३ ई०),
(२) बड़े बाबू (स० १९५२ ई०),
(३) गया जायें कि मक्का (स० १९५० ई०),
(४) जूते मार (स० १९५४ ई०),
(५) अपनी भूल (स० १९५५ ई०), तथा
(६) हँसी की तूफान (स० १९५४ ई०)।

इसका प्रकाशन स० १९६१ ई० में हुआ।

एकलौता जूता

यह निम्नलिखित रचनाओं का संग्रह है—

(१) **एकलौता जूता**—बहुत कुछ लम्बी दाढ़ी में संग्रहीत कहानियों की शैली पर एक कहानी है। 'सोशलिस्ट' 'कम्युनिस्ट' तथा 'स्वतंत्र' राजनीतिक दलों पर भी व्यंग्य सम्मिलित कर लिया गया है। कथा-शिल्प की दृष्टि से इसमें कोई नवीनता नहीं है।

(२) **किस्मत की आठखेलियां**—जी० पी० की प्राचीन रचनाओं में उपलब्ध सामग्री के समानान्तर कथानक को लघु कथा के रूप में बांधने का प्रयत्न हुआ है।

(३) **मेरी मोटर की भड़क**—'विलायती उल्लू' तथा 'लतखोरी लाल' में लजीले नायक और मोटर तथा मोटर साइकिल के प्रसंग को ही काट छांट कर यहाँ एक नवीन कहानी के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(४) **चन्द्रलोक की परियाँ**—हास्यास्पद कल्पनाओं पर आधारित लघु गल्प है। चन्द्रमा तक पहुंचने के आधुनिक वैज्ञानिकों के प्रयत्न इसकी मूल प्रेरणा ज्ञात होते हैं।

(५) **दिल की लगी है दिल्लगी**—जी० पी० की, पुरानी, रूढ़ छद्मवेश की ओछी तकनीक पर आधारित कहानी।

(६) **संजीवनी बूटी**—हास्यास्पद ढंग से 'हास्य' की महत्ता को एक लघु घटना के आधार पर स्पष्ट किया है। बहुत कुछ प्रचारात्मक झलक लिए हैं।

(७) **सेठें के कलम से लिखी तकदीर**—विनोदपूर्ण संस्मरण को कहानी के छोटे आकार में प्रस्तुत किया गया है।

(८) **परलोक में वकालत**—परलोक में काल्पानिक न्यायालय के व्याज से सामाजिक व्यंग्य किए गए हैं।

(९) **बड़ा करबे मजा**—'कुरसी मैन' के चौथे दृष्य को ही काट-छांट कर रख दिया गया है।

(१०) **अदालत के कटघरे में**—छोटे-छोटे चुटकुलों को एक में गूँथ कर हास्य का महत्त्व न्यायालय के क्षेत्र एवं वातावरण में दिखाया है। इसका अन्त बड़े मार्मिक तथ्य के साथ हुआ है—

" हंसी में जहाँ सब बातें अच्छी हैं वहां एक बुराई भी है। वह यह कि अन्धेरे में परछाँई की तरह यह भी दुख में साथ नहीं देती।"—

(एकलौता जूता, पृष्ट ८४)

निस्सन्देह सामाजिक की मानसिक अवस्था का हास्य के परिपाक में अपना महत्त्व होता है।

(११) **न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी**—नायक 'शर्तउद्दीन' अपने चातुर्य एवं प्रतिउत्पन्न बुद्धि से विषम परिस्थितियों में भी शर्त जीतता है। हास्यपूर्ण छोटी कथा है।

(१२) **कुछ अपनी कुछ पराई**—जी० पी० ने स्वयं अपनी जीवन गाथा रोचक शैली में प्रस्तुत की है। साथ ही, आधुनिक साहित्य-समाज पर व्यंग्य है।

(१३) **प्रेम की गली में**—पूर्णतः पुरानी रचनाओं के अनुरूप मोलियर पर आधारित एकांकी प्रहसन। इसमें गीतों का पर्याप्त उपयोग किया गया है। यह गीत परिष्कार तो दूर, वासना के अनर्गल प्रलाप ही अधिक ज्ञात होते हैं।

एकलौते जूते की 'किस्मत की अठखेलियाँ', 'सञ्जीवनी बूटी', 'सेठें के कलम से लिखी तकदीर' विशेषकर, तथा अन्य सभी रचनाएँ सामान्यतया यह संकेत करती हैं कि कहानियों को भी लघुतम संस्करणात्मक रूप में प्रकट करने की रुचि आज के साहित्य का अनुग्रह है। संक्षिप्त सामग्री प्रस्तुत करने के जी० पी० के सन्मुख दो मार्ग हो सकते थे। एक, नवीन कथानकों एवं अभिनव समस्याओं को आज के शिष्ट एवं जागरूक पाठक की मनोवृत्तियों एवं अभिरुचियों के अनुकूल स्तर पर प्रकट किया जाता। इस दिशा में जी० पी० पूर्णतः असफल हैं। अपने ही प्राचीन साहित्य की घिसी-पिटी रूढ़ परम्पराओं पर ही वे आज भी आश्रित ज्ञात होते हैं। 'मेरी मोटर की भड़क' तथा 'बड़ा करबे मजा' में तो जैसे जी० पी० 'नई बोतलों में पुरानी शराब' भरना चाहते हों। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं जी० पी० को अपने साहित्य के चिरस्थायित्व में सन्देह होने लगा है। वे अनेक रचनाओं में पुनः अपने प्राचीन कथानकों एवं कल्पनाओं को पुनर्जीवन देना चाहते हैं। आज से ३-४ दशक पूर्ण तक के साहित्य से पूर्णतः अनभिज्ञ, युगीन पाठक, भले इन कृतियों से आनन्दित हो सके; जी० पी० के पूर्व साहित्य से किंचित परिचित सामाजिक तो इन 'अभिनव' रचनाओं में नवीन उद्भावनाओं एवं विचारों के दारिद्र्य का ही अनुभव करेगा।

साहित्य और हास्य की तकनीक की कसौटी पर भी जी० पी० की इन रचनाओं का अधिक मूल्य एवं सम्मान नहीं हो सकता। कथानक का मूलाधार आकस्मिक घटनाएँ हैं। सभी रचनाओं के नायक अथवा उपनायक स्थूल वासना से आक्रान्त हैं। 'दिल की लगी है दिल्लगी' में जी० पी० पुनः छद्मवेश के दलदल में धँस गए हैं। 'प्रेम की गली में', का विन्यास देखकर किसी भी प्रकार उसे जी० पी० के आरम्भिक प्रहसनों से पृथक नहीं किया जा सकता। हाँ, इसके गीतों में कहीं अधिक वासनावेग, पारसी नाटक एवं नौटंकियों की हल्की भंगिमा एवं भावगत तथा भाषागत शिथिलता व्याप्त है। तीन शतक पूर्व 'दारू-दारा' से लिप्त फ्रांस में इस प्रकार के भावों एवं निम्नस्तरीय संवेगों का सम्भव है कुछ अपना महत्त्व रहा हो। आज एक शिष्ट एवं संयत पाठक इन गीतों को सुनकर निराश ही अधिक होगा—

"औरत की जात, है बद जात !
इनसे न दिल को लगाना जी ।
फन्दे में इनके पड़े, वही उल्लू बने,
आलिमोफाजिल दाना जी ।
होती है नार, पूरी मक्कार !" आदि (एकलौता जूता, पृ० १०९-१०)

इसमें कुछ जाने माने साहित्यकारों के उद्धरण भी डाल दिए गए हैं, जिनकी आलोचना हमारे विषय से इतर होगी ।

उपरोक्त रचनाओं को देख-परख कर हमारे पूर्वकथनों का पुष्टीकरण एवं समर्थन होता है । वास्तव में यह जी० पी० का संध्याकाल है जिसमें एक रचनाकार का 'उतार' ही अधिक परिलक्षित होता है । पुरानी लीकों में ज्यों-त्यों हास्य की गाड़ी ठेली जा रही है । जी० पी० की वार्ता 'सेकेण्ड-हैण्ड-हज़बैण्ड' में भी वे जैसे हास्योत्पत्ति के साधनों और उपायों के लिए आज से ५० वर्ष पूर्व के उपादानों में ही भटक रहे हैं । यह 'सेकेण्ड-हैण्ड' साहित्य अनु-दिन प्रगतिशील वातावरण में अपना स्थान बनाने में कितना समर्थ होगा, कुछ नहीं कहा जा सकता ।

हास्य एवं जी० पी० के विषय में, इस निबन्ध के मुद्रण-काल में, दो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाश में आए हैं—डा० बरसाने लाल चतुर्वेदी का शोध प्रबन्ध तथा डा० राम चरण महेन्द्र की 'झलकियाँ ।'

डा० चतुर्वेदी जी ने हास्य की विद्वतापूर्ण विवेचना में आँग्ल पद्धति एवं दृष्टिकोण को अछूता छोड़ दिया है । अपने साहित्य की विवेचना एवं विश्लेषण के लिए हम विदेशों के मुखापेक्षी न हों यह एक स्वस्थ प्रवृत्ति है, तथापि पाश्चात्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म सारगर्भित पूर्व विवेचनों की पूर्ण उपेक्षा भी नहीं की जा सकती । केवल 'विदेशी' की मुहर से कोई मत एवं विचार सर्वमान्य नहीं हो सकता, साथ ही केवल विदेशी होने के नाते उसकी अवहेलना भी नहीं होनी चाहिए । जी० पी० एक विदेशी साहित्यकार से प्रेरणा लेकर बढ़े थे; अस्तु उनकी कृतियों के मूल्यांकन हेतु पश्चात्य सिद्धान्तों की अवहेलना करना अनुचित होगा ।

फिर, चतुर्वेदी जी ने स्पष्टत: पद्य-साहित्य का अधिक सम्यक अध्ययन प्रस्तुत किया है । प्रबन्ध के संतुलन में गद्य-साहित्य कुछ गौण पड़ जाता है । इसमें भी जी० पी० पर कुछ अधिक न कहकर बहुत कुछ उनके प्रति एवं प्रबन्ध के प्रति एक अन्याय हुआ है । यहाँ हमारा उद्देश्य चतुर्वेदी जी की कृति

की आलोचना नहीं है । जी० पी० से सम्बन्धित संकेतों का उल्लेख मात्र ही उपयुक्त है ।

डा० महेन्द्र की 'झलकियाँ' अपने प्रस्तुतीकरण की रोचकता रखते हुए भी अनुसन्धानात्मक अथवा आलोचनात्मक नहीं कही जायेगी । जैसा ग्रंथ के नाम से ही प्रकट है, इसमें जी० पी० के जीवन और साहित्य की कतिपय झलकियों से ही सन्तोष किया गया है । इसमें जी० पी० के साहित्य से विविध उद्धरणों को संग्रहीत कर दिया गया है । यदि डा० महेन्द्र ने इन उद्धरणों के चयन में किसी विशेष दृष्टि अथवा तर्क का आधार लेकर सर्वोत्तम उद्धरण संकलित किए होते तो बात कुछ विचारणीय होती । केवल संवेग अथवा आवेशात्मक बुद्धि से किसी साहित्य के अंशों को पूंजीभूत करना साहित्यकार की एकांगी 'झलक' देना ही कहा जायगा । 'झलकियाँ' का मूल्य साहित्यिक दृष्टि से कहीं बढ़ जाता, यदि भाव, भाषा, साहित्य-कला आदि साहित्यकार के सभी साधनों को दृष्टि में रखकर जी० पी० के साहित्य से उपयुक्त ही नहीं प्रत्युत सर्वोत्तम उद्धरण चुन लिए जाते ।

डा० महेन्द्र ने जहाँ अपने निजी विचार व्यक्त किए हैं, उनके विषय में अधिक कुछ कहना समय, शक्ति और कागज का दुरुपयोग ही होगा । केवल कुछ संकेत साहित्यान्वेषकों के विनोदार्थ पर्याप्त होंगे । पुस्तक के आरम्भ में ही **'तो क्या श्रीवास्तव जी जीवित हैं ?'** का प्रसंग उठाकर डा० महेन्द्र ने अपनी साहित्यिक जानकारी एवं अभिरुचि का स्वयं ही भण्डाफोड़ कर दिया है । वास्तव में इन पृष्ठों को देखकर ऐसा भास होता है कि डाक्टर साहब ने जी० पी० के साहित्य के विषय में कुछ नहीं, स्वयं जी० पी० को खोज निकाला है ! *

जी० पी० की नाट्य-कला के प्रसंग में डा० महेन्द्र कहते हैं—

'आधुनिक हिन्दी नाटक के जन्मदाता होने के कारण श्रीवास्तव जी के नाटक सारे भारत में लोकप्रिय हुए हैं ।" झलकियाँ, पृ० २०२ ।

पता नहीं डाक्टर साहब 'आधुनिक' एवं 'जन्मदाता' शब्दों से क्या अर्थ निकालते हैं । डाक्टर साहब के अतिरिक्त जिस पाठक को भारतेन्दु के सम-सामयिक नाटकों, एवं पूर्व नाटिकाओं के उल्लेख देखने का अवसर प्राप्त हुआ है, वह इस कथन से विस्मित अवश्य हो जावेगा ।

अन्त में जी० पी० के साहित्य के विषय में प्रो० मोहन लाल 'जिज्ञासु' की सम्मति पर दो शब्द अनुपयुक्त न होंगे—

---

* जिज्ञासु पाठक विनोदार्थ, 'झलकियाँ' के पृ० १९-२० देख सकते हैं ।

"......उन्होंने अपने सम्मुख लोक रुचि को अधिक रखा है। साहित्यिकता तो उसके बाद की चीज है।" झलकियाँ, पृ० २२।
वस्तुत: जी० पी० लोक-प्रचार के लोभ से साहित्यिक परिष्कार का निष्कासन ही अधिक करते रहे। लोक रुचि में भी जी० पी० प्राय: निम्नस्तरीय साधनों का सहारा अपेक्षाकृत अधिक लेते रहे। सात्विक प्रेम की अपेक्षा प्रजनन सम्बन्धी मूल वासनाओं (Basic Instincts) पर ही जी० पी० का साहित्य अधिक केन्द्रित रहा। 'प्रेम की गली' में लेखनी चलाते समय भी वासना की वीथिका में ही विरमते रहे। हम कह सकते हैं कि साहित्यिक अधिकारियों की उपेक्षा से मर्माहत जी० पी० लोकप्रियता हेतु जन सामान्य की बहकती वासनाओं का शोषण (Exploitation) करने में ही सन्तुष्ट रहे। समर्थ साहित्यकार के रूप में लोक रुचि को परिष्कृत दिशा देने में जी० पी० कृतकार्य नहीं हो सके।

साहित्य के माध्यम एवं हास्य के नाना साधनों के उपयोग में भी जी० पी० ने आत्मकथात्मक हास्य वर्णनों में विशेष रुचि दिखाई है किन्तु यहाँ भी अधिकतर, वे अज्ञात हास्य की सीमाओं में ही बंधे दिखाई पड़ते हैं। 'बस के चक्कर में' के अन्तर्गत लघु संस्मरणात्मक कथा में वे अवश्य कुछ ज्ञात हास्य के निकट आ पाए हैं। वस्तुत: परिमार्जित श्रेष्ठ ज्ञात हास्य के क्षेत्र में जी० पी० कभी पूर्ण सफल नहीं हो पाए। केवल घटनाओं के अटाटोप से आक्रांत साहित्य का क्या स्थायित्व होगा यह प्रो० जगन्नाथ 'नलिन' के शब्दों से प्रकट है—

"इनका हास्य घटना-प्रधान है। ऐसी स्थिति की यह कल्पना करते हैं कि हंसी तो बहुत आती है, पर उसका स्थायी भाव नहीं रहता।"—हिन्दी नाट्यकार, पृ० २५२।

जिस हास्य का स्थायी भाव क्षणिक होता है उस पर अवलम्बित साहित्य का स्थायित्व क्या होगा, यह भविष्य ही बतायेगा।

३
जी० पी० की कृतियाँ

(१)
नाटक
(क)
मोलियर पर आधारित
मार मार कर हकीम
नकदम
साहब बहादुर
चाल बेढ़ब
लाल बुझक्कड़
मिट्टी का शेर
(ख)
मौलिक
उलट फेर
मरदानी औरत
दुमदार आदमी
मोहनी या झड़ूले नन्द
साहित्य का सपूत
लोक परलोक
लक्कड़ बग्घा
बौछार
भक्तिन
(२)
उपन्यास
(क)
अनूदित
प्राणनाथ
विलायती उल्लू
(ख)
मौलिक
भड़ाम सिंह शर्मा
गंगा जमुनी
लतखोरी लाल
स्वामी चौखटानन्द
भय्या अकिल बहादुर
(३)
कहानियाँ
लम्बी दाढ़ी
रंग बिरंगी दुनिया
(अप्रकाशित)

(४)
वार्त्ताएँ
भाषण
हास्य रस
आकाशवाणी की वार्त्ताएँ
आकाश पाताल
(५)
हास्येतर शिक्षा-संबन्धी रचनाएँ
कागजी करतब
हवाई लीला
Survey and Demarcation
उड़न खटोला
(६)
विविध रचनाएँ
कोमल भावनाओं का अध्ययन
नोक-झोंक
हास्य के बिखरे लेख
मीठी हँसी
करुण-रस-प्रधान
दिल की आग
पत्र
चुटकियाँ
चुटकुले
गुदगुदी

(७)

अन्यान्य

तोप सिंह
एकलौता जूता, तथा
विभिन्न पत्रिकाओं आदि में प्रकाशित और कुछ अप्रकाशित सामग्री
उदाहरणार्थ—
प्रिय सम्पादक जी, (नोक झोंक होलिकांक)
समझने की बात, (प्रतिन्यास)
झलकियां, (नोक-झोंक)
दिल ही तो है, (कहानी, नोक-झोंक)
न रहेगा बाँस न बाजेगी बाँसुरी, (कहानी, 'आज' तथा 'हँसोड़')
अपना पराया, (कहानी, 'आज' तथा 'हँसोड़')
हर लगे न फिटकरी (कहानी, 'आदर्श' तथा 'हँसोड़')
जिसकी लाठी उसकी भैंस (कहानी 'आज')
पतलून की ताक में लगोंटी भी गई (कहानी 'आज')
सेकेन्ड हैण्ड हसबैण्ड,
सेकेन्ड हैण्ड पत्नी,
पतिशाला,
आँख खुल गई,
बिल्ली बने कैसे पिया,
किसकी हार किसकी जीत, तथा
बस के चक्कर में (साप्ताहिक-हिन्दुस्तान), आदि ।

जी० पी० की कृतियाँ, संस्करण अथवा प्रकाशन-वर्ष (ईसवी में) सहित, जिनका विवेचन में यत्र तत्र उल्लेख किया गया है—

लोक परलोक (प्रथम संस्करण) *	११२
विलायती उल्लू (१९५१)	११९
स्वामी चौखटानन्द (द्वितीय संस्करण)	१२४
साहब बहादुर (१९५१)	१०२
साहित्य का सपूत (द्वितीय संस्करण) *	११२
हवाई लीला (प्रथम संस्करण) *	१३४
हास्य रस (१९५४)	१३०

---

* अन्यत्र अप्राप्य तथा कतिपय अप्रकाशित पुस्तकों और रचनाओं के अंश व्यक्तिगत रूप से ही उपलब्ध हो सके। लेखक जी० पी० का कृतज्ञ है।

४

जी० पी० के अभिनन्दन

विभिन्न आयोजनों में नाना संस्थाओं द्वारा जी० पी० को अभिनन्दन प्राप्त होते रहे हैं। इनके कुछ अंशों का उद्धरण यहाँ उपादेय होगा—

(क)

"......आप हमारी दीन मातृभाषा के गौरव-मणि हैं। आपने अपनी प्रतिभा के बल से हिन्दी में हास्य और करुणा की जो धारा बहाई है, उसने हिन्दी साहित्य में युगान्तर उपस्थित कर दिया है। हिन्दी संसार के कोने-कोने प्रत्येक बाल-वृद्ध-बनिता के हृदय में आपकी लेखिनी के चमत्कार ने गुदगुदी पैदा कर दी है। किन्तु जहाँ विनोद से मानस निर्मल हो जाता है, वहाँ करुणा की कसक से कलेजे में कशिश पैदा हो जाती है। आपकी रचनायें, असफल जीवन, हसरत और दर्द की जीती जागती तसवीर हैं। हम उनमें अपनी ही नहीं, मानवात्मा के हर्ष-विमर्ष, सुख-दुःख, आशा-निराशा और मुस्कान-आँसू की झलक पाते हैं।..."

बिहार हितैषी पुस्तकालय के कार्यकर्त्ता
और सदस्यगण।
(२१-११-१९३२)

(ख)

"......आपने मातृमन्दिर के निर्माण में जो श्रम किया है वह महान है; जो कला या सौन्दर्य प्रस्फुटित किया है वह अद्भुत है; और जो सफलता पाई है वह अपूर्व और सुन्दर है।

आप हास्य रस हैं। त्रयम्बक के हास्य से जगत समुज्ज्वल होता है, आपके हास्य से माता का मन्दिर जगमगा उठता है।

……हमें आपकी कृतियों का गर्व है। इन्हें पाकर हम सौभाग्यवान हुए हैं। इन्हीं के बल पर आज हम संसार के हास्य साहित्य में स्थान पाने का अधिकार प्राप्त कर सके हैं।……"

महेश्वर पुस्तकालय, पटना, के सदस्यगण।
(२१-११-१९३२)

(ग)

"……आपके नाटकों का अभिनय कलकत्ते के साहित्य कला प्रेमियों के सन्मुख उपस्थित कर हिन्दी नाट्य परिषद ने आपका तथा साथ ही साथ अपना भी नाम अमर कर दिया है, आपकी सरपट चलती हुई बामहावरा भाषा, आपका स्मित हास्य कारक विनोद तथा साहित्य पटुता आप ही के समान भारती के वर पुत्र के उपयुक्त है।…"

हिन्दी नाट्य परिषद, कलकत्ता, के सदस्यगण।
(११-१०-१९३३)

(घ)

"……हास्यरस नवरसों में एक विशेष स्थान रखता है। मनुष्य मात्र के लिए हास्य एक नैसर्गिक गुण है। इस रस की न्यूनाधिक मात्रा मानव-मात्र में मौजूद रहती है। कहना न होगा कि हिन्दी-संसार को इस रस के अभाव का अनुभव बहुत दिनों से हो रहा था। कतिपय लेखक एवं कवियों ने इस अभाव की पूर्ति करने की भी चेष्टा की और बहुतों को बहुत कुछ सफलता भी मिली, परन्तु अभाव की पूर्ति सदियों में न हो सकी थी उसे आपने कुछ वर्षों में ही कर दिखाया।

हिन्दी-संसार के लिए आपने हास्य रस के जिस अथाह सागर का निर्माण कर दिया है वह सदा एक रूप में परिप्लावित रहेगा और रसिक साहित्यिज्ञ उसका सानन्द अवगाहन करते रहेंगे। यों तो आपने हास्य रस के प्रधान नाट्य लेखक मोलियर के कतिपय नाटकों का अनुवाद भी किया है और वे साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं तिसपर भी यदि आप इन अनुवादों को हिन्दी संसार के सामने न रखते तब भी आप मोलियर कहे जा सकते।…"

नवयुवक साहित्य मण्डल (परिहास सम्मेलन,
कलकत्ता) के सदस्यगण।
(११-१०-१९३३)

(ङ)

"……आपने अपनी प्रतिभा के बल से हिन्दी साहित्य में हास्य रस की जो धारा बहाई है, उसने हिन्दी संसार में युगान्तर उपस्थित कर दिया है। अपनी हास्य रसस्रावी कोमल लेखनी द्वारा बालक, युवा एवं वृद्ध मनुष्यों के हृदय में समुचित गुदगुदी उत्पन्न करना आप जैसे सुयोग्य पुरुषों का ही काम है। आपकी लेखनी ने बहुतेरों के हृदय पटल को शुद्ध कर दिया है और वे अपनी त्रुटियों से मुक्त होकर समाज में सभ्य कहलाने योग्य हुए हैं। आपकी रचनाएँ मुर्दादिल को जिन्दादिल बनाने में समर्थ हुई हैं; क्योंकि यह सजीव हैं। आपके हास्य विनोद ने हमारे देश के शिक्षित समाज पर अपूर्व अधिकार स्थापित किया है। इसी हेतु हिन्दी भाषा भाषियों ने आपको हास्य रस का सम्राट माना है। आपकी सजीव लेखनी ने हिन्दी भाषा के उस अंग की पूर्ति की है, जिससे हमारी मृतप्राय भाषा सजीव हो उठी है। सचमुच आपकी रचनाएँ हमारी राष्ट्रभाषा की अमर विभूति हैं।……"

कीट गंज-बैरहाना डेलीगेसी (प्रयाग
विश्वविद्यालय) के विद्यार्थी।
(३१-१०-१९५४)

अभिनन्दन पत्रों की मूल प्रतियाँ दिखाकर जी० पी० ने प्रतिलिपि करने की अनुमति दी : अस्तु लेखक कृतज्ञ है।

५

सहायक पुस्तकों की सूची

१ काव्य प्रकाश ।

२ दशरूपक ।

३ परशुराम चतुर्वेदी, रस गंगाधर [अनुवाद]

४ लल्ली प्रसाद पाण्डेय, राव बहादुर [११२४ ई०]

५ साहित्य दर्पण ।

६ त्रिलोकी नारायण दीक्षित और अनुज, हास्य के सिद्धान्त ।

1. Allardyce Nicoll, The Theory of Drama.
2. A. M. Ludovici, The Secret of Laughter.
3. Burt, The Psychology of Laughter.
4. Cazamian, Development of English Humour.
5. Hannay, Preface to 'Satire and Satirist'.
6. H. Bergson, Laughter, An Essay on the Meaning of the Comic.
7. James Sully, Essay on Laughter.
8. J. B. Priestley, English Humour.
9. J. C. Flugal, Humour and Laughter.
10. J. C. Gregory, The Nature of Laughter.
11. John Aye, Humour Among the Lawyers (Humour Series.)
12. J. Y. T. Grieg, The Psychology of Laughter and Comedy.
13. Kimnis, The Springs of Laughter.
14. Kris, Laughter as an Expressive Process (International Journal of Psycho-analysis, Vol. II pp. 314)

15. L. W. Kline, The Psychology of Humour.
16. Mary Katherine Reely, On the Possession of A Sense of Humour. (Introduction to 'Toasters' Hand-book', compiled by Peggy Edmund and H. W. Williams.)
17. M. Eastman, Enjoyment of Laughter.
18. Monro, Argument of Laughter.
19. Norman Furlong, English Satire.
20. Radha Kamal Mukerjee, The Social Structure of Values, (chapt. vi, Laughter as the Social Gesture of Valuation.)
21. Sigmund freud, Wit and Its Relation to the Unconscious.
22. Stephen Leacock, Humour and Humanity.
23. Stephen Leacock, Humour, Its Theory and Technique.
24. Stephen Potter, Sense of Humour.
25. V. K. Krishna Menon, A Theory of Laughter.
26. William Mc Dougall, The Theory of Laughter.
27. W. S. Lilly, The Theory of The Ludicrous.